मध्यकालीन भारत में सुलतानपुर क्षेत्र का इतिहास
(1206 ई० से 1707 ई० तक)

शीर्षक पर

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के

मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग के अन्तर्गत

डी०फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

पर्यवेक्षक

डॉ० हेरम्ब चतुर्वेदी

रीडर

मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलहाबाद

प्रस्तुतकर्त्ता

राजेश कुमार शुक्ल

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

2002

विषयानुक्रमणिका

आभार

आभार

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम के ज्येष्ठ पुत्र **कुश** की राजधानी कुशभानुपुर या कुशपुर दीर्घ काल तक उत्तर भारत का आदरणीय एवं अनुकरणीय क्षेत्र था। अलाउद्दीन खिलजी के द्वारा आक्रमणके बाद यह नगरी सुलतानपुर के नाम से अस्तित्व मे आई। वर्तमान समय में भी यह राजनीति का प्रमुख केन्द्र बना हुआ है। क्षेत्रीय इतिहास लेखन की परम्परा से प्रभावित होकर मैंने इसी भू-भाग का चयन . शोध शीर्षक **''मध्यकालीन भारत में सुलतानपुर क्षेत्र का इतिहास (1206 ई० से 1707 ई० तक)''** के रूप में किया है।

मैं अपने जनक **स्व० महेश नारायण शुक्ल** के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करने में शब्ददारिद्रय का अनुभव कर रहा हूँ, जिस प्रकार भयंकर झंझावत में भी दीपक की लौ जलते रहकर संसार को जागृत व कर्मशील बने रहने की प्रेरणा देता है, उसी प्रकार मेरे जनक कष्टप्रद क्षणों में भी निरन्तर प्रोत्साहित एवं कर्मशील बने रहकर मुझे झंझावतों से लड़ने की अतुलनीय शक्ति व प्रेरणा देते रहे और अपने वात्सल्यमय स्नेह से सदैव अभिषिक्त करते रहे। लेकिन दुर्भाग्य एवं दैवयोग से इस शोध-प्रबन्ध की पूर्णता के पहले ही वे इस संसार को छोड़कर पंचतत्व में विलीन हो गये। मैं अश्रुपूरित नेत्रों से उस महान आत्मा के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

इस शोध-प्रबन्ध के प्रणयन में जिन लोगों का सतत् सहयोग, स्नेह व शुभ कामनाएँ मिलती रहीं, उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित कर मैं स्वयं को सौभाग्यशाली समझता हूँ।

सरस्वती के जिन वरद पुत्रों की सुकृतियों से मुझे समय-समय पर जो वाक्-निर्देश प्राप्त हुआ है, मेरा हृदय उनके प्रति सर्वदा श्रद्धावनत एवं कृतज्ञता से आपूरित है।

विज्ञ गुरुजनों के प्रति शिष्य का श्रद्धाज्ञापन हृदयगता याचना की भाँति अन्तर्गत होते हुए भी सर्वदा अन्तिकस्थ रहा है। मैं अपने पूज्यपाद गुरुवर्य **डॉ० हेरम्ब चतुर्वेदी** के

प्रति हृदयेन श्रद्धावनत हूँ, जिनके वात्सल्य एवं पाण्डित्य पूर्ण संरक्षण में मुझे प्रस्तुत विषय पर शोध कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। मैं पौन्य: पुन्येन अपने आरदणीय गुरु एवं ममतामयी भाभी **श्रीमती आभा चतुर्वेदी** के प्रति आजीवन कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अति व्यस्त एवं उत्तरदायित्व पूर्ण दिनचर्या में भी मेरे लिए यावच्छक्य समय निकालकर अपने गवेषणापूर्ण निर्देशन से इस कृति को पूर्ण होने में अपना अभूतपूर्व सहयोग व आशीर्वाद प्रदान किया।

मैं अपने विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष **डॉ० रेखा जोशी** के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिनके बहुमूल्य सुझावों ने इस शोध की पूर्णता में परोक्ष रूप से माध्यम का कार्य किया।

मैं अपने विभाग के विभागाध्यक्ष **डॉ० एन०आर० फारुकी** के प्रति सादर कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, जिनकी सदाशयता, उदारता, मनस्विता एवं निरन्तर उत्साहवर्धन के लिए हृदय से आभारी हूँ।

एतदतिरिक्त मैं **डॉ० राजेन्द्र देव मिश्र**, विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास, इन्दिरा गाँधी महाविद्यालय, गौरीगंज के प्रति सादर आभार व्यक्त करता हूँ, जिनका आशीर्वाद व सत्प्रेरणा सर्वदा मिलती रही है।

मैं अपने पूज्य गुरु **डॉ० विनय कुमार त्रिपाठी**, अध्यक्ष, मध्यकालीन इतिहास विभाग, का०सु० साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फैजाबाद के प्रति श्रद्धावनत हूँ, जिनके अमूल्य सुझावो एवं शुभकामनाएँ मुझे प्रेरणा के रूप में अहर्निश प्राप्त होती रही है, जिसका सुफल यह शोध प्रबन्ध है।

कुंवर अक्षय प्रताप सिंह 'गोपालजी' एवं अनन्य शिक्षा प्रेमी, कुंवरानी मधुरिमा सिंह, राजभवन जामों को विस्मृत करना मुझे अपराध से भर देगा, उनकी शुभकामना एवं आशीर्वचन मेरी सफलता के पथ के पाथेय बने, उनके प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

शोध-सामग्री के संग्रह हेतु मैं आर्क लाइज इलाहाबाद, जिला पुस्तकालय,

सुलतानपुर, जिला पुस्तकालय फैजाबाद, चकबस्त पुस्तकालय फैजाबाद, रणवीर रणञ्जय स्नाकोत्तर महाविद्यालय, अमेठी एवं इन्दिरा गाँधी महाविद्यालय, गौरीगंज के पुस्तकालयाध्यक्षों के प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने समय-समय पर पुस्तकीय सहायता प्रदान कर मेरे कार्य को बढ़ाने में प्रगति प्रदान की है।

मैं आदर्श पुस्तक भण्डार के संचालक **श्री अखिलेश चन्द्र शुक्ल** के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना कर्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने समय-समय पर अमूल्य कृतियाँ मुझे निःशुल्क उपलब्ध करायी, जिससे यह शोध-कार्य सम्भव हो सका।

मैं **श्री अयोध्या प्रसाद मिश्रा**-सदस्य रानी गणेश कुंवरि महाविद्यालय जामों, सुलतानपुर व पण्डित श्री बैजनाथ मिश्र जी के प्रति कोटिशः आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने इस शोध-प्रबन्ध को यथाशीघ्र पूर्ण करने में मेरा सतत् उत्साहवर्धन किया है।

मैं **डॉ० राजनारायण उपाध्याय, श्री राम तीरथ पाण्डेय, धीरेन्द्र सिंह, सुशील तिवारी, रीता मौर्या, विनोद द्विवेदी, श्रीमती गायत्री सिंह**, रानी गणेश कुंवरि महाविद्यालय जामों सुलतानपुर के समस्त अन्य सहयोगी प्राध्यापकों के प्रति कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मनसा-वाचा-कर्मणा मुझे अनवरत इस शोध-कार्य में सहयोग प्रदान किया है।

मैं अपनी बन्दनीय जननी **श्रीमती राम पियारी** के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना श्रेयस्कर समझता हूँ। अनेकशः मानसिक तनावों के कारण शिथिलता आना स्वाभाविक है। अतः शारीरिक अस्वस्थता से प्रस्तुत शोध-कार्य में विघ्न आने पर माँ द्वारा उत्साहवर्धक वचनों से जो संजीवनी औषधि प्राप्त होती रही और जिस प्रकार से वे मुझे सम्बल, स्नेह, प्रेरणा व शुभाशीष देती रही उसी के फलस्वरूप यह शोध-प्रबन्ध पूर्ण हो सका।

इस शोध-प्रबन्ध की पूर्णता का श्रेय मेरी आदरणीया भातृजाया व भातृवरेण्य **(श्रीमती सुमन लता व श्री शिव किशोर शुक्ल)** को प्राप्त है, जिनके समुल्लसित

व्यवहार एवं उत्साहवर्धक प्रेरकों ने मुझे कार्य करने की ऊर्जा प्रदान की। मैं इनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

संकुल मैं अपनी स्नेहमयी धर्म पत्नी **श्रीमती गायत्री शुक्ला** को कैसे विस्मृत कर सकता हूँ, जिन्होंने कष्टप्रद क्षणों में प्रतिपल सशक्त सम्बल के रूप में प्रस्तुत होकर मुझे अपने सहयोग व स्नेह से सिंचित किया है। इनके द्वारा प्रदान किये गये असीम स्नेह व प्रेरणा का प्रतिफल यह शोध-प्रबन्ध है।

मैं अपनी **गायत्री दीदी** व **माधुरी दीदी** के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना औपचारिकता समझूँगा। वस्तुतः उकन सदिच्छा एवं मंगलकामना पाकर ही यह कार्य पूर्ण हो सका।

मैं अपनी दोनों प्यारी बेटियों **स्वप्निल शुक्ला** एवं **शालिनी शुक्ला** को कैसे विस्मृत कर सकता हूँ। शोध-प्रबन्ध के लेखन में व्यस्त होने के कारण मैं इन्हें समुचित समय न दे सका। मैं इन दोंनो के द्वारा धारण किये गये धैर्य के लिए कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

मैं अपने प्रिय प्रसूनों **कामद, प्रखर, अतुल, शैलेन्द्र** को कैसे विस्मृत करूँ, जिन्होंने अपनी मधुर तोतली वाणी से मेरे मन को उल्लासित किया। अतः उनको शुभ स्नेह।

मैं अपने अभीष्ट मित्रों **प्रकाश, सियाराम, भूपेन्द्र शुक्ल, विजय प्रकाश मिश्र** के प्रति विशेष रूपेण कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने यथोचित समय पर अपने विचारों व अमूल्य सुझावों के द्वारा मुझे लाभान्वित किया।

अन्ततः मैं उन सभी सुधीजनों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने अल्पमात्र भी इस ग्रन्थ की पूर्णता में अपना योगदान दिया है। मैं उन सभी प्राचीन एवं अर्वाचीन लेखकों का आजीवन आभारी हूँ, जिनकी कृतियाँ इस शोध-प्रबन्ध के प्रणयन में उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

शोध–प्रबन्ध के टंकण मे कम्प्यूटर टंकण कला के सिद्धहस्त **श्री राकेश श्रीवास्तव** ने जिस उत्साह एवं मनोयोग से शोध–प्रबन्ध को वर्तमान रूप प्रदान किया है, वह अवर्णनीय है। मैं उन्हें एवं उनके कम्प्यूटर सेन्टर, **आर के कम्प्यूटर्स** के उज्ज्वल भविष्य की कामना ईश्वर से करता हूँ। वे सदैव ऊर्जावान बने रहें।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध अपने उद्देश्य की सम्पूर्ति में सर्वथा सफल सिद्ध हो यही सर्वव्यापी ईश्वर से अभ्यर्थना है।

विनयावनत

राजेश कुमार शुक्ल

दिनांक : 21-12-02

(राजेश कुमार शुक्ल)

भूमिका

भूमिका

इतिहास यदि मानव विकास का क्रमबद्ध अध्ययन है तो इस अध्ययन को सबसे छोटी इकाई तक विश्लेषित कर अध्ययन करना अब इतिहासकारों के लिए अपरिहार्य होता जा रहा है। अतः माइक्रो स्तर पर ऐतिहासिक शोध व अध्ययन के आधार पर व्यापक अध्ययन के बारीक विश्लेषण सुलभ हो जाते हैं। स्वतन्त्रयोत्तर काल में राष्ट्रीय इतिहास को सविस्तार एवं वैज्ञानिक ढंग से निरूपित करने हेतु 'माइक्रो' अध्ययन इसी क्रम का एक प्रयास है। दिल्ली केन्द्रित इतिहास लेखन व अध्ययन से जमीनी वास्तविकताओं का अध्ययन पृष्ठभूमि में चला जाता है। आधुनिक इतिहास की धारा के अनुसार सामान्य जन का वास्तविक चित्रण ही वैज्ञानिक इतिहास का विषय है, अतः वैज्ञानिक एवं वस्तुपरक इतिहास के दृष्टिकोण से वर्तमान शोध–प्रबन्ध **"मध्यकालीन भारत में सुलतानपुर क्षेत्र का इतिहास (1206 ई० से 1707 ई० तक)"** ऐतिहासिक शोध की इस कमी को पूरा करने के प्रयास का एक कदम है।

प्राचीन कुशभवनपुर को वर्तमान सुलतानपुर से समीकृत किया गया है। वायुपुराण में वर्णित कुशस्थली का समीकरण कुशभवन पुर से करना समीचीन प्रतीत होता है। कुशभवनपुर या कुशस्थली, अयोध्या के राजा एवं जननायक मर्यादापुरुषोत्तम भगवान श्रीराम के ज्येष्ठ पुत्र कुश की राजधानी थी। कुशस्थली तीन तरफ से गोमती नदी से घिर हुयी थी। एक अन्य परम्परा के अनुसार – "श्रीराम के दो पुत्र कुश और लव थे। लव को उत्तरी कोशल एवं कुश को दक्षिणी कोशल का राज्य मिला। कुश ने गोमती नदी के किनारे भौगोलिक रूप से सुरक्षित स्थल पर अपनी राजधानी का निर्माण कराया। यही नगर कुशभवनपुर या कुशपुर कहलाया। यहाँ पर आज भी इस नगर के अवशेष विद्यमान हैं।

डॉ. आर सी. मजूमदार एवं पुसालकर ने लिखा है कि – "महाभारत काल में भीम ने रघुवंशी राजा दीर्धजय को इसी भूमि पर पराजित कर अपने आधिपत्य

में कर लिया।

महात्माबुद्ध का समकालीन शासक प्रसेनजित कोशल का शासक था। कुशपुर या केसिपुत्र, कलाम क्षत्रियों के आधिपत्य में था। सुलतानपुर जनपद में बौद्धकालीन पुरासम्पदा कई स्थलों पर विद्यमान है। ह्वेगसांग ने इस नगर को क्रियाशोपोलों कहा है। वह इसी नगर से होकर साकेत गया था।

कनिष्क के शासन में यह जनपद बौद्धों का प्रमुख केन्द्र था। कनिष्क के सिक्के 1907 ई. में ग्राम मुइली जिला-सुलतानपुर (सदर तहसील) से प्राप्त हुए थे। इसी जनपद की लम्भुआ तहसील का ग्राम भदैयां एवं बुधापुर क्रमशः बुद्धयान तथा बुद्धापुर था। चन्द्रगुप्त ने अयोध्या के उद्धार के साथ यहाँ का भी उद्धार किया था। ह्वेगसांग ने केशिपुत्र के विहारों का उल्लेख किया है। हर्ष के उपरान्त भरों का अधिपत्य इस भू-भाग पर हो गया। भर राजा ईश ने इसौली, कूढ़ ने कुड़ेभार तथा अल्दे ने अल्देमऊ को बसाया। ये सभी कन्नौज के गुर्जर प्रतिहारों के अधीनस्थ शासक थे। जयचन्द्र की पराजय के साथ ही भर शासक स्वतन्त्र हो गये।

राय बखण्ड ने सत्थिन का राज्य भर राजा राय साथन से ले लिया था, जिस पर पुनः राय बिड़ार ने अधिकार किया था। राय साथन के अधिकार में उस समय इसौली, तिलोहटी, गाजनपुर, साथिनी और किशनी में 5 किले थे। उसकी राजधानी साथिनी थी। यहाँ का किला बड़ा था। राजपरिवार के लोग इसी किले मे रहते थे। किले की हद के अन्तर सात कुएँ थे। यह किला बहुत मजबूत था। इसमे नदी तक सुरंग बनी थी। 600 वर्ष बाद भी आज उसके खण्डहर की मिट्टी के टीले से उसकी विशालता का पता चलता है। यहाँ का भर राजा 100 गांवों का मालिक था। उसकी सेना में सभी लोग भर जाति के थे। ये सैनिक बहुत ही बहादुर थे। उसके दो भर सरदारों को; जो गाजनपुर और तिलोहटी दुर्ग के किलेदार थे; जो उससे असन्तुष्ट भी रहते थे, यही दोंनो सरदार अन्त में उसके पतन के कारण बने।

भर कौन थे? अब कहां चले गये यह एक प्रश्न है जिनका अन्वेषणोपरान्त

विवरण निम्नलिखित है- किसी समय यहां अवध के शासक जाति के लोग शासन करते थे; जिनकी राजधानी पाटलिपुत्र में थी। जब उनका शासन समाप्त हुआ तो वे अपने देश को लौट गये। राजपरिवार के लोग तो चले गये किन्तु बहुत से 'भर' यहीं बसे रहे। जो लोग सामन्त थे वे भी यहीं रह गये। यही सामन्त आगे चलकर मदिरा का सेवन करने लगे और नशे में पड़कर अपनी पुरानी जन्मभूमि से दूर मुस्लिमकाल तक यहीं रह गये।

भारत में जब राजपूत संगठन बना तो मदिरा का सेवन करने के कारण ये लोग उस संगठन से अलग हो गये। यह लोग दक्षिण भारत के ब्राह्मण थे। यहाँ मगध में आकर मंत्री बने और मंत्री से राजा बन गये थे। अवध में राजा, तालुकेदार और जमींदार भर थे। कुछ मजदूर और किसान भी थे, ये एक जाति के थे। राजपूत लोग इन्हें मदिरा सेवन करने के कारण भ्रष्ट कहते थे। यही भ्रष्ट शब्द आगे चलकर भर बन गया। इस प्रकार भर की एक जाति का निर्माण हुआ। भर लोग शिवजी की पूजा करते थे। यही कारण है कि यहाँ प्राचीन काल में शिव मन्दिर बहुत थे। इन मन्दिरों के खर्च के लिए गाँव लगे थे। इनके गुरु गोस्वामी होते थे। इनका धर्म शैव था। भर जाति का विनाश कुछ इस प्रकार हुआ कि अब अवध में भर कहीं भी नहीं दिखायी पड़ते जिनकी कहानियाँ हीं अब शेष हैं।

भर जाति के लोग लड़ाकू एवं अच्छे शासक थे और अच्छा संगठन भी था, लेकिन इनके शासक सुरा और सुन्दरी में आसक्त रहते थे। यही आगे चलकर इनके विनाश का कारण बना। रामायण महाकाव्य में वर्तमान सुलतानपुर के भू-भाग को अत्यन्त उपजाऊ भू-भाग कहा गया है। मुस्लिम आक्रमण के पूर्व सुलतानपुर भू-भाग "भरो" के आधिपत्य में था। महमूद गजनवी के आक्रमण के बाद उसके भाँजे ने भारत पर आक्रमण किया तथा अयोध्या तक आ धमका। वर्तमान सुलतानपुर पर भी उसका आक्रमण हुआ था।

मुस्लिम आक्रमण के पूर्व भरों के समकालीन भाले सुलतानपुर भी थे, इन्हें

भी पर्याप्त मुस्लिम आक्रमण झेलना पड़ा। जनपद सुलतानपुर के परगना जगदीशपुर, मुसाफिरखाना और इसौली में तथा फैजाबाद जनपद परगना पश्चिम राठ के कुछ भाग में तिलोकचन्दी वैस जाति के राजपूत हैं; जिन्हें भाले सुल्तान के नाम से जाना जाता है। इन्हीं भाले सुलतान राजपूतों के नाम पर क्षेत्र को भाले सुलतानी कहते हैं। इस क्षेत्र के पश्चिम में परगना इन्हौना है। पश्चिमोत्तर सरहद पर कुछ दूर गोमती नदी बहती है। सरहद के पार गुदारा के वैसों का क्षेत्र है जो बाहर गाँवों में बसे हैं। उत्तर में कोई प्राकृतिक सरहद नहीं है, सरहद पर विश्वेनों एवं चौहानों की बस्ती है। पूरब में भी कोई प्राकृतिक सरहद नहीं है, सरहद पर बछगोती राजपूतों का क्षेत्र है और कुछ क्षेत्र में किस्थुनी के बारह गांव मे वैस राजपूत हैं। दक्षिण में कादू नाले के पार परगना गौर जासों में कनुपरियों की बस्ती है।

भाले सुलतानों के पूर्वज बैसवाड़ा से यहाँ आये थे। इनसे पहले यहां भरों का राज्य था। भर विजय के बाद राजा तिलोक चन्द के पुत्र बिड़ार देव ने इसे अपनी जागीद बनाया और उने पुत्र राय बिड़ार यहाँ के राजा बने। इन्हीं राय बिड़ार के वंशज आज भाले सुलतान कहलाते हैं। इस समय भाले सुलतान दो भागों मे बंट गये हैं- हिन्दू और मुसलमान। हिन्दू भाले सुलतान प्रायः जमींदार हैं, तिरहुत एक राज्य भी है। मुसलमान भाले सुलतानों में महोना, देवगांव व ऊचगाँव तीन राज्य हैं। साथ ही इन्हीं रियासतों के मुसलमान भाले सुलतान काश्तकार भी हैं।

यद्यपि मुस्लिम इतिहास में सैय्यद सालार मसूद (महमूद का भाँजा) का नामोल्लेख नहीं हुआ है, जबकि काबुल से कन्नौज-अयोध्या तक उसके आक्रमण के चिन्ह प्राप्त होते है। यह उल्लेखनीय है कि भरो का एवं वैसवाड़ा के राय विराड़ का राज्य प्राचीन सुलतानपुर परिक्षेत्र भूभागों पर था। दोनों की सम्मिलित सेनाओं ने सैय्यद सालार मसूद को, बाराबंकी जिले के सत्रिख (सतरिख) नामक स्थान पर पराजित किया। सम्भवतः मसूद इस युद्ध में मारा गया।

ध्यातव्य है कि - 1033 ई. के बाद भारत पर कोई भी मुस्लिम आक्रमण नहीं

हुआ, अब प्रश्न यह उठता है कि पाँचों पीरन की मजार, सैय्यद सालार मसूद के साथ गोमती के किनारे किसने बनवायी?

यह भी उल्लेखनीय है कि इस काल का कोई इतिहास हिन्दू परम्परा में प्राप्य नहीं है, मुस्लिम शासकों ने लिखा भी है तो तत्कालीन कुशभानपुर अपनी पराजय का उल्लेख नहीं किया है, क्योंकि पराजय का उल्लेख आम जनता को मुस्लिमों के विरूद्ध उकसा सकता था।

सैय्यद सालार मसूद एवं पाँचों पीरन की मजार सुलतानपुर से प्राप्त हुयी है उसका संभावित निर्माता मुहम्मद गोरी या कोई परवर्ती मुस्लिम रहा होगा, जिसने इन लोगों की मजार का निर्माण गोमती नदी के किनारे सुलतानपुर करवाया। पाँचों पीरन सम्भवतः सैय्यद सालार मसूद के सेनापति या प्रमुख सहयोगी थे। दूसरे शब्दों में 1192 ई. तक सुलतानपुर (कुशपुर) के कुछ भाग पर तुर्कों का अधिकार हो चुका था।

मुहम्मद गोरी के आक्रमण के पूर्व कुशभानपुर का क्षेत्र भरों के आधिपत्य में था। मुहम्मद गोरी की भारत विजय के साथ ही इस क्षेत्र पर मुस्लिम प्रभाव बढ़ा, अलाउद्दीन खिलजी ने कुशभानपुर के भर राजा नंद कुंवर पर आक्रमण कर उन्हें पराजित किया, और इस स्थल का नाम कुशभानपुर से बदलकर सुलतानपुर कर दिया।

मुस्लिम आक्रमण के पूर्व अवध क्षेत्र भरों के अधीन था। मुहम्मद गोरी के शासन में इस क्षेत्र पर उसका अधिकार स्थापित हुआ। आइने अकबरी के अनुसार– "अकबर कालीन अवध सूबा वर्तमान अवध प्रदेश से बड़ा था। इसमें जहाँ एक तरफ गोरखपुर, वस्ती, देवरिया जनपद सम्मलित था वही दूसरी तरफ अवध प्रदेश के परगना अकबरपुर, मझौटा, टाण्डा का कुछ भाग विलहर सुरहुरपुर (फैजाबाद/ अम्बेडकरनगर), अल्देमऊ, चाँदा (सुल्तानपुर जनपद) सरकार जौनपुर सूबा इलाहाबाद में तथा अमेठी, गौराजामों एवं कयोत (सुल्तानपुर जनपद), सम्पूर्ण प्रतापगढ़ जनपद एवं परगना बछरावां, रायबरेली का पूर्वी भाग, सलौन, परसदेपुर, रोखा

जायस, मोहनगंज सेमरौला का कुछ भाग (रायबरेली जनपद), परगना हैदरगढ़ (बाराबंकी जनपद) सरकार मानिकपुर सूबा इलाहाबाद में सम्मिलित था।

अर्थात् उपर्युक्त क्षेत्र परगनावार जनपद में तथा इलाहाबाद आदि सरकारों सहित गोरखपुर, देविरया, बस्ती जनपद मुगलकाल में अवध क्षेत्र का अंग था। सम्पूर्ण कुशभानपुर (सुलतानपुर) अवध में सम्मिलित था। स्वतन्त्र प्रान्त के रूप में अवध सूबा, सआदत अली खाँ के काल में अस्तित्व में आया।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के नियोजन में विशुद्धानन्द पाठक कृत हिस्ट्री आफ कोशल, अवधवासी भूप, लाला सीताराम कृत अयोध्या का इतिहास, डॉ० राधे श्याम तिवारी कृत गढ़ अमेठी का इतिहास, हवलदार रन बहादुर सिंह कृत भाले सुलतानपुर इतिहास एवं सजरा, हंस बेकर कृत अयोध्या आदि शोध परक ग्रन्थों का अमूल्य सहयोग रहा है। इसके अतिरिक्त वायु पुराण, विष्णु पुराण, रामायण, महाभारत एवं तुलसीदास कृत रामचरित मानस प्रभृति मूल ग्रन्थों का भी उपयोग शोध-प्रबन्ध के नियोजन में किया गया है।

अबुल फजल कृत आइने-ए-अकबरी एवं अकबरनामा, मिनहाज उस सिराज कृत तबकाते नासरी, इब्नबतूता के यात्रा वृतान्त आदि ग्रन्थों का भी यत्र तत्र उपयोग किया गया है। इसी क्रम में युसूफ हुसैन कृत मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति, जगदीश सहाय कृत अवध में नवाबी शासन, हरफूल आर्य कृत मध्यकालीन समाज एवं संस्कृति, स्टैनले लेनपूल कृत औरंगजेब एवं मध्यकालीन भारत का इतिहास, मेजर रावर्टी कृत ए जनरल हिस्ट्री दि गुलाम डायनेस्टीज आफ एशिया इन्क्लूडिंग हिन्दुस्तान आदि का भी शोध प्रबन्ध के प्रणयन में अमूल्य सहयोग रहा है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध निम्नलिखित योजना के अन्तर्गत नियोजित है:-

शोध-प्रबन्ध का प्रथम अध्याय- **सुलतानपुर का राजनीतिक इतिहास (1206 ई० से 1707 ई० तक)** है। यह अध्याय सुलतानपुर की भौगोलिक स्थिति, सुलतानपुर का मानचित्र पर अवस्थापन, सुलतानपुर का नामाधार, सुलतानपुर पर

प्रथम मुस्लिम आक्रमण, सुलतानपुर का अवध से सम्बन्ध, गुलाम वंश के शासनकाल में सुलतानपुर मुगलकालीन शासकों के शासनकाल में सुलतानपुर की राजनीतिक स्थिति, मुगलकालीन प्रान्तीय शासन व्यवस्था, अकबर के पूर्व राजनीतिक महल या परगने, अकबर के काल में महल एवं परगने नामक बिन्दुओं में नियोजित है।

शोध-प्रबन्ध का द्वितीय अध्याय- **सुलतानपुर का सामाजिक इतिहास (1206 ई० से 1707 ई० तक)** है। जो सल्तनत कालीन समाज- शासक वर्ग, उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग एवं निम्न वर्ग, भारतीय मुसलमान, दास, हिन्दू जाति व्यवस्था, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं अन्य अस्पृश्य जातियाँ, विवाह प्रथा, स्त्रियों की स्थिति, खान-पान, वेषभूषा, आभूषण, आमोद-प्रमोद तथा मुगलकालीन समाज- हिन्दू समाज, मुगलकाल में सामाजिक स्थिति, वेषभूषा, आभूषण, स्त्रियों की स्थिति, सतीप्रथा, बाल विवाह, विधवा की स्थिति, मुगलकाल में हिन्दुओं की स्थिति आदि बिन्दुओं में नियोजित है।

शोध-प्रबन्ध का तृतीय अध्याय- **सुलतानपुर का आर्थिक इतिहास (1206 ई० से 1707 ई० तक)** है। यह अध्याय आर्थिक सर्वेक्षण, वस्त्र उद्योग, ग्रामीण जीवन, कृषि से सम्बन्धित ग्राम्य उद्योग, मूल्य, अकाल, मुद्रा एवं बैंकिंग, कर व्यवस्था, खम्स, जजिया, खिराज, जकात, अकबर के शासन काल में सुलतानपुर से प्राप्त राजस्व, सुलतानपुर का उच्चावचन एवं प्रमुख व्यवसाय, प्राकृतिक वनस्पति, कृषि, सिंचाई के साधन एवं व्यवसाय नामक मुख्य बिन्दुओं में नियोजित है।

शोध-प्रबन्ध का चतुर्थ अध्याय- **सुलतानपुर की धार्मिक स्थिति (1206 ई० से 1707 ई० तक)** है, जो ब्राह्मण धर्म, वैष्णव धर्म, विभिन्न धर्मो एवं सम्प्रदायों के उपासना स्थल, त्योहार, नामक बिन्दुओं में नियोजित है। इसी अध्याय में विभिन्न हिन्दू एवं मुस्लिम तीज, त्योहारों एवं पर्वों का विहंगम अन्वेषण किया गया है।

उपर्युक्त अध्यायों से प्राप्त मूल्य एवं मानक उपसंहार नामक बिन्दु के अन्तर्गत

शोध–प्रबन्ध में नियोजित है। शोध–प्रबन्ध के अन्त में उन मूल ग्रन्थों, आधुनिक ग्रन्थों, पत्र–पत्रिकाओं की सूची दी गयी है, जिसका उपयोग शोध–प्रबन्ध के प्रणयन में किया गया है।

शोध–प्रबन्ध में कतिपय मानचित्र भी संलग्न है, जो सुलतानपुर की प्राचीनता, अर्वाचीनता आदि से सम्बन्धित है।

प्रथम अध्याय

सुलतानपुर का राजनीतिक इतिहास

(1206 ई0 से 1707 ई0 तक)

सुलतानपुर का राजनीतिक इतिहास

(1206 ई० से 1707 ई० तक)

सुलतानपुर की भौगोलिक स्थित

गोमती नदी के दोनों पार्श्वों मे अवस्थित, फैजाबाद से इलाहबाद एवं वाराणसी से लखनऊ मार्ग पर सुलतानपुर शहर बसा हुआ है। सुलतानपुर जनपद के उत्तर में फैजाबाद एवं अम्बेडकरनगर, दक्षिण मे प्रतापगढ़, पूरब में जौनपुर एवं आजमगढ़ तथा पश्चिम में रायबरेली की सीमा स्पर्श करती है।[1]

सुलतानपुर को जनपद के रूप में मान्यता 1869 ई. में मिली थी।[2] 1869 ई. में सुलतानपुर जनपद में 12 परगने थे।[3] जिन्हें इन्हौना, जगदीशपुर, सुवेहा, राखासराय, सेमरौता, गौराजामों, मोहनगंज, अमेठी, इसौली, थापा असल, सुलतानपुर एवं चाँदा नाम से जाना जाता था।[4]

उपर्युक्त में से इन्हौना तहसील के अन्तर्गत इन्हौना, जगदीश एवं सुबेहा, मोह्नगंज तहसील के अन्तर्गत राखा जायस, सेमरौता. गौराजामों एवं मोह्नगंज, अमेठी तहसील के अन्तर्गत अमेठी, इसौली एवं थापाचाँदा के परगने आते थे।[5]

1878 ई. तक सुलतानपुर से पाँच परगने निकाले जा चुके थे।[6] इनमें से सुबेहा परगना बाराबंकी जिले में तथा इन्हौना, जायस, सेमरौता एवं मोहनगंज

---

1. गजेटियर आफ अवध; दिल्ली संस्करण, 1878 पृष्ट – 148
2. वही
3. वही
4. वही
5. वही
6. वही

रायबरेली जिले में नियोजित किये गये।[7] इस प्रकार 1878 ई. में सुलतानपुर में सात परगने थे।

सुलतानपुर का मानचित्र पर अवस्थापन –

सुलतानपुर जनपद भोगोलिक दृष्टि से 25°.59' से 26°40' उत्तरी अक्षांस एवं 81°32' तथा 81°41' पूर्वो देशान्तर के मध्य अवस्थित है।[8] सुलतानपुर की अधिकतम लम्बाई पूर्व से पश्चिम 80 मील एवं अधिकतम चौड़ाई 38 मील है।[9]

सुलतानपुर का नामाधार –

प्राचीन कुशभवनपुर को वर्तमान सुलतानपुर से समीकृत किया गया है।[10] वायुपुराण में वर्णित कुशस्थली[11] का समीकरण कुशभवन पुर से करना समीचीन प्रतीत होता है।

कुशभवनपुर या कुशस्थली, अयोध्या के राजा एवं जननायक मर्यादापुरुषोत्तम भगवान श्रीराम के ज्येष्ठ पुत्र कुश की राजधानी थी।[12] कुशस्थली तीन तरफ से गोमती नदी से घिर हुयी थी।[13]

एक अन्य परम्परा के अनुसार – "श्रीराम के दो पुत्र कुश और लव थे। लव को उत्तरी कोशल एवं कुश को दक्षिणी कोशल का राज्य मिला। कुश ने गोमती नदी के

---

7. *गजेटियर आफ अवध; दिल्ली संस्करण, 1878 पृष्ट – 148*
8. *इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया, खण्ड – 23, 1908, पृष्ट – 137*
9. *वही*
10 *अवध विश्वविद्यालय शोध पत्रिका, फैजाबाद, 1982, पृष्ट – 186*
11. *वायुपुराण, पृष्ट – 26*
12. *कनिंघम एं० ज्या० इं०, पृष्ट – 459*
13. *वही*

किनारे भौगोलिक रूप से सुरक्षित स्थल पर अपनी राजधानी का निर्माण किया। यही नगर कुशभवन पुर या कुशपुर[14] कहलाया। यहाँ पर आज भी इस नगर के अवशेष विद्यमान हैं।

डॉ. आर सी. मजूमदार एवं पुसालकर ने लिखा है कि – "महाभारत काल में भीम ने रघुवंशी राजा दीर्धजय को इसी भूमि पर पराजित कर अपने आधिपत्य में कर लिया।[15]

महात्माबुद्ध का समकालीन शासक प्रसेनजित कोशल का शासक था। कुशपुर या केसिपुत्र, कलाम क्षत्रियों के आधिपत्य में था।[16] जनपद में बौद्धकालीन पुरासम्पदा कई स्थलों पर विद्यमान है। ह्वेगसांग ने इस नगर को क्रियाशोपोलों [17] कहा है। वह इसी नगर से होकर साकेत गया था।[18]

कनिष्क के शासन में यह जनपद बौद्धों का प्रमुख केन्द्र था। कनिष्क के सिक्के 1907 ई. में ग्राम मुइली जिला–सुलतानपुर (सदर तहसील) से प्राप्त हुए थे।[19] इसी जनपद की लम्भुआ तहसील का ग्राम भदैयां एवं बुधापुर क्रमशः बुद्धयान तथा बुद्धापुर था। चन्द्रगुप्त ने अयोध्या के उद्धार के साथ यहाँ का भी उद्धार किया था। ह्वेगसांग ने केशिपुत्र के विहारों का उल्लेख किया है।

हर्ष के उपरान्त भरों का अधिपत्य इस भू–भाग पर हो गया। भर राजा ईश

---

14. *राजेश्वर सिंह, सुलतानपुर इतिहास के आइने में, दैनिक जनमोंचा, पृष्ट 7, 15/10/02*
15. *वही*
16. *अंगुत्तर निकाय, वही*
17. *राजेश्वर सिंह, वही*
18. *वही*
19. *डॉ. ए. के. श्रीवास्तव, कुषाण सिक्के, पृष्ट 38*

ने इसौली, कूढ़ ने कुड़ेभार तथा अल्दे ने अल्देमऊ को बसाया।[20] ये सभी कन्नौज कगुर्जर प्रतिहारों के अधीनस्थ शासक थे। जयचन्द्र की पराजय के साथ ही भर शासक स्वतन्त्र हो गये।[21]

सुलतानपुर पर प्रथम मुस्लिम आक्रमण–

रामायण महाकाव्य में इस भू–भाग को अत्यन्त उपजाऊ भू–भाग कहा गया है। मुस्लिम आक्रमण के पूर्व यह भू–भाग "भरो" के आधिपत्य में था।[22] महमूद गजनवी के आक्रमण के बाद उसके भाँजे ने भारत पर आक्रमण किया तथा अयोध्या तक आ धमका।[23]

यद्यपि मुस्लिम इतिहास में सैय्यद सालार मसूद (महमूद का भाँजा) का नामोल्लेख नहीं हुआ है, जबकि काबुल से कन्नौज–अयोध्या तक उसके आक्रमण के चिन्ह प्राप्त होते है।[24] यह उल्लेखनीय है कि भरो का एवं वैसवाड़ा के राय विराड़ का राज्य इन भूभागों पर था।[25] दोनों की सम्मिलित सेनाओं ने सैय्यद सालार मसूद को, बाराबंकी जिले के सत्रिख (सतरिख) नामक स्थान पर पराजित किया।[26] सम्भवतः मसूद इस युद्ध में मारा गया।

ध्यातव्य है कि – 1033 ई. के बाद भारत पर कोई भी मुस्लिम आक्रमण नहीं हुआ, अब प्रश्न यह उठता है कि पाँचों पीरन की मजार, सैय्यद सालार मसूद के

---

20. *राजेश्वर सिंह, वही*
21. *वही*
22. *गजेटियर आफ अवध, दिल्ली संस्करण, 1878 ई., पृष्ट – 470*
23. *यदुनाथ प्रसाद श्रीवास्तव, राष्ट्रीय साहित्य सदन, लखनऊ, 1974 ई.*
24. *वही*
25. *यदुनाथ प्रसाद श्रीवास्तव, राष्ट्रीय साहित्य सदन, लखनऊ, 1974, 1*
26. *वही*

साथ[27] गोमती के किनारे किसने बनवायी?

यह भी उल्लेखनीय है कि इस काल का कोई इतिहास हिन्दू परम्परा में प्राप्य नहीं है, मुस्लिम शासकों ने लिखा भी है तो अपनी पराजय का उल्लेख नहीं किया है, क्योंकि पराजय का उल्लेख आम जनता को मुस्लिमों के विरूद्ध उकसा सकता था।[28]

सैय्यद सालार मसूद एवं पाँचों पीरन की मजार सुलतानपुर से प्राप्त हुयी है उसका संभावित निर्माता मुहम्मद गोरी या कोई परवर्ती मुस्लिम रहा होगा, जिसने इन लोगों की मजार का निर्माण गोमती नदी के किनारे करवाया।[29] पाँचों पीरन[30] सम्भवतः सैय्यद सालार मसूद के सेनापति या प्रमुख सहयोगी थे। दूसरे शब्दों में 1192 ई. तक सुलतानपुर (कुशपुर) के कुछ भाग पर तुर्कों का अधिकार हो चुका था।[31]

सुलतानपुर नामकरण–

मुहम्मद गोरी के आक्रमण के पूर्व कुशभानपुर का क्षेत्र भरों के आधिपत्य में था। मुहम्मद गोरी की भारत विजय के साथ ही इस क्षेत्र पर मुस्लिम प्रभाव बढ़ा, अलाउद्दीन खिलजी ने भर राजा नंद कुंवर पर आक्रमण कर उन्हें पराजित किया, और इस स्थल का नाम कुशभानपुर से बदलकर सुलतानपुर कर दिया।[32]

27. *गजेटियर आफ अवध, दिल्ली संस्करण, 1878, पृष्ट – 470*
28. *यदुनाथ प्रसाद श्रीवास्तव, राष्ट्रीय साहित्य सदन, लखनऊ, 1974, 1*
29. *गजेटियर आफ अवध, दिल्ली संस्करण, 1878, पृष्ट – 470*
30. *वही*
31. *सैय्यद सालार मसूद एवं पाँचों पीरन की मजार का निर्माण इस तथ्य का प्रतिपादन करते हैं कि इसके निर्माण के समय यह भू–भाग निर्माता के अधीन रहा होगा।*
32. *कनिंघम, आर्क्या. सर्वे आफ इण्डिया, रिर्पोट–1, पृष्ट – 314*

सुलतानपुर का अवध से सम्बन्ध –

मुगल काल तक अवध क्षेत्र प्रान्त का रूप ले चुका था। अवध, "अ एवं वध" के योग से निष्पन्न है, जिसका शाब्दिक अर्थ है, वध न किया जाने योग्य।[33] पालि शब्द "अवज्झ" इसी का पर्याय प्रतीत होता है। संस्कृत भाषा के अनुसार – अजुद्ध शब्द अवध के निर्माण के उत्तरदायी है। अज ब्रह्मा का उपनाम है।[34] अज से सम्बन्धित करते हुए अजुद्ध को ब्रहमा का एक अविजित शहर, अवध माना गया है।[35]

अवध, अयोध्या के अर्थ में भी यत्र-तत्र ग्राह्य है। जिसका शाब्दिक अर्थ प्रतिज्ञा है।[36] अवध गजेटियर के अनुसार – "अयोध्या के राजा रामजी ने 14 वर्ष के वनवास के बाद अयोध्या लौट आने की प्रतिज्ञा की थीं जिसे उन्होंने पूरा किया तभी से यह क्षेत्र अवध कहलाता है।[37] इसी तथ्य का प्रतिपादन मुस्लिम इतिहासकार "रसीद अहमद" के फैजाबाद लेख से होता है।[38]

महाकवि गोस्वामी तुलसीदास की अमरकृति "रामचरितमानस" से भी अवध एवं अयोध्या में एका दर्शिता होती है। जहाँ अयोध्या को सरयू के दक्षिण अवस्थित बतलाया गया है।[39]

ध्यातव्य है कि अवध की सीमा समय-समय पर बदलती रही है। महाभारत युग तक अवध क्षेत्र को कोशल के नाम से जाना जाता था।[40] ई. की प्रथम शताब्दी

---

33. *वृहद् हिन्दी शब्दकोष, द्वितीय संस्करण, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, पृष्ट – 106*
34. *अवध गजेटियर, अध्याय-3, पृष्ट – 2*
35. *वही*
36. *वही*
37. *वही*
38. *आजकल, उर्दू संस्करण, फैजाबाद, 1965, पृष्ट – 3*
39. *अवधपुरी मम् पुरी सुहावनि; उत्तर दिस सरयू बहि पावन।।*
40. *राधे श्याम तिवारी, शोध प्रबन्ध गढ़ अमेठी का इतिहास, प्रथम संस्करण, 1991, पूनम प्रकाशन अमेठी सुलतानपुर*

में अवध अत्यन्त उपजाऊ क्षेत्र था।[41] गुप्तयुग में अयोध्या क्षेत्र समृद्ध था। गुप्तोत्तर काल में भी यही स्थिति थे। राजपूत युग में भारत पर मुस्लिम आक्रमण आरम्भ हो गया तथा कालान्तर में अवध क्षेत्र भी विजेताओं के हाथ में चला गया।

मुस्लिम आक्रमण के पूर्व अवध क्षेत्र भरो के अधीन था।[42] मुहम्मद गोरी के शासन में इस क्षेत्र पर उसका अधिकार स्थापित हुआ।[43] आइने अकबरी के अनुसार- "अकबर कालीन अवध सूबा वर्तमान अवध प्रदेश से बड़ा था। इसमें जहाँ एक तरफ गोरखपुर, वस्ती, देवरिया जनपद सम्मलित था वही दूसरी तरफ अवध प्रदेश के परगना अकबरपुर, मझौटा, टाण्डा का कुछ भाग विलहर सुरहुरपुर (फैजाबाद/अम्बेडकरनगर), अल्देमऊ, चाँदा (सुल्तानपुर जनपद) सरकार जौनपुर सूबा इलाहाबाद में तथा अमेठी, गौराजामों एवं कयोत (सुल्तानपुर जनपद), सम्पूर्ण प्रतापगढ़ जनपद एवं परगना बछरावां, रायबरेली का पूर्वी भाग, सलौन, परसदेपुर, रोखा जायस, मोहनगंज सेमरौला का कुछ भाग (रायबरेली जनपद), परगना हैदरगढ़ (बाराबंकी जनपद) सरकार मानिकपुर सूबा इलाहाबाद में सम्मिलित था।[44]

अर्थात् उपर्युक्त क्षेत्र परगनावार जनपद में तथा इलाहाबाद आदि सरकारों सहित गोरखपुर, देविरया, बस्ती जनपद मुगलकाल में अवध क्षेत्र का अंग था। सुलतानपुर सम्पूर्ण अवध में सम्मिलित था। स्वतन्त्र प्रान्त के रूप में अवध सूबा, सआदत अली खाँ के काल में अस्तित्व में आया।

---

41. *गजेटियर आफ अवध, दि. सं., 1878*
42. *पूर्वोल्लिखित है कि - मुहम्मद गोरी द्वारा सुलतानपुर विजय कर सैय्यद सालार मसूद एवं पाँचों पीरन की मजार का निर्माण करवाया।*
43. *जैरेट द्वारा अनुदित आइने अकबरी, भाग-2, कलकत्ता, 1949, पृष्ट - 181-90*
44. *स्टैनलैपूल, औरंगजेब, दिल्ली, 1978, पृष्ट - 169*

1206 ई. से 1707 ई. के मध्य सुलतानपुर की राजनीतिक स्थिति –

1206 ई. में गोरी की मृत्यु के बाद कुतुबुद्दीन ऐबक गद्दी पर बैठा उसी ने भारत में तुर्की साम्राज्य की नींव डाली। तत्पश्चात औरंगजेब के समय तक तुर्क/मुगलसत्ता का उत्तरोत्तर विकास होता रहा। ध्यातव्य है कि इस अवधि के इतिहास पर्याप्त मात्रा में हमें प्राप्य हैं, परन्तु सुलतानपुर का स्वतन्त्र इतिहास उपलब्ध नहीं होता है। अतः सुलतानपुर के इतिहास के स्रोत के रूप में अवध, अयोध्या, जौनपुर, इलाहाबाद की राजनीतिक परिस्थिति को स्वीकार करना पड़ेगा। उपर्युक्त सरकारों/सूबों के प्रति अपनायी गयी नीति ही मूलतः सुलतानपुर की राजनीतिक स्थिति की परिचायक है। इसलिए दिल्ली के सुल्तानों एवं मुगल शासकों की इन क्षेत्रों पर राजनीतिक गतिविधि के आधार पर सुलतानपुर की राजनीतिक स्थिति निम्नलिखित है –

(क) गुलामवंश के शासनकाल में सुलतानपुर –

भारत पर तुर्की साम्राज्य की नींव मुहम्मद सिहाबुद्दीन गोरी द्वारा पृथ्वीराज तृतीय पर विजय के साथ स्थापित हुयी। पृथ्वीराज को पराजित कर उसने अपने गुलामों पर विश्वास कर भारतीय भू–भाग का नेतृत्व उन्हें सौंपकर वापस गजनी चला गया। मुहम्मद गोरी के प्रत्यावर्तन के बाद कुतुबुद्दीन ऐबक को अनेक विद्रोहों का दमन करना पड़ा। अतः इसी बीच सुलतानपुर पर भी अनेक स्थानीय एवं तुर्की राजाओं में रस्साकसी चलती रही। जिसका विवरण निम्नलिखित है –

कुतुबुद्दीन ऐवक –

तराइन के युद्धों में कुतुबुद्दीन ऐबक मुहम्मद गोरी का प्रमुख सेनापति था। तराइन विजय के उपरान्त मुहम्मद गोरी ने ऐबक को तोमर राजकुमार पर नजर रखने के लिए एक सेना के साथ इन्द्रप्रस्थ में नियुक्त किया। तदन्तर मुहम्मद गोरी वापस गजनी चला गया।

ऐबक सिहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी का योग्य सेनापति था। उसने गोरी की अनुपस्थिति में बुलन्दशहर, मेरठ तथा दिल्ली पर हुए विद्रोहों को दबाकर अधिकार बनाये रखा। 1193 ई. में दिल्ली भारतीय राज्य की राजधानी बनायी गयी।

1194 ई. में ऐबक ने अजमेर पर अभियान किया, जहाँ पृथ्वीराज तृतीय का भाई हरिराज शासन कर रहा था। ऐबक ने यहाँ अधिकार स्थापित कर पुनः हरिराज को सामन्त नियुक्त किया। इसी वर्ष ऐबक ने कन्नौज अधिकार में गोरी को सहयोग दिया। यद्यपि गोरी विजयी रहा परन्तु अन्तिम रूप से कन्नौज अधिकार में असफल रहा। इस युद्ध में जयचन्द्र पराजित हुआ और मारा गया। शीघ्र ही ऐबक ने अजमेर के तीसरे विद्रोह का दमन किया तथा हरिराज को चिता में भस्म करने के लिए विवश कर दिया।

1195-96 ई. में ऐबक ने गोरी को ग्वालियर किले पर अधिकार करने में सहयोग दिया। 1197-98 ई. में ऐबक ने बदायूँ पर अधिकार प्राप्त किया तथा 1202-03 ई. में कालिजंर, महोला और खुजराहों पर अधिकार कर लिया।

पूर्वी भारत पर विजय अभियान एवं सुलतानपुर पर अधिकार –

जिस समय कुतुबुद्दीन ऐबक मध्य हिन्दुस्तान को जीतने में व्यस्त था। उसी समय उसके एक साधारण सेनापति इख्तियाऊद्दीन मुहम्मद विन बख्तियार खिलजी ने पूर्वी प्रान्तों को जीतने की योजना बनायी। यह अत्यन्त कुरूप एवं भद्दी आकृति वाला था। इसीलिए वह अपनी योग्यता एवं महत्वाकांक्षा के अनुरूप पद नहीं प्राप्त कर सका। उसकी वीभत्स आकृति के कारण ही गजनी और दिल्ली में नौकरी नहीं मिली।[45] इस समय तक अवध प्रान्त ऐबक के अधिकार में आ चुका था। यहाँ पर

---

45. *डब्ल्यू हेग, द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग-3, दिल्ली, 1958, पृष्ट - 42-43*

ऐबक का प्रतिनिधि गवर्नर/हाकिम[46] के रूप में **मलिक–हिसामुद्दीन–अबुल–वक** शासन कर रहा था। बख्तियार खिलजी ने अबुल–वक के यहाँ नौकरी कर लिया।[47] शीघ्र ही **बख्तियार** ने अयोध्या पर अधिकार कर लिया।[48] परिणाम स्परूप उसे भगवत और म्यूली के गाँव जागीर के रूप में मिलें।[49] ये दोनों गाँव सुलतानपुर जनपद में ही आते है। ध्यातव्य है कि यह घटनाएँ 1202–03 ई. के मध्य घटित हुयी। इस समय ऐबक गोरी का प्रतिनिधि एवं दास था।

1206 ई. में कुतुबुद्दीन ऐबक सिंहासन पर बैठा, चूँकि इस समय यह गुलाम था। अतः इसने मलिक उपाधि को धारण किया। इसे दासता से मुक्ति 1208 ई. में मिली, इस समय इसे सुलतान पद से नवाजा गया। अब ऐबक भारत का सुलतान हो गया। अतः अवध प्रान्त के साथ सुलतानपुर उसका सल्तनत का अंग बन गया।

राजा रतनसेन के कोई पुत्र नहीं था अतः उन्होंने अपना सम्पूर्ण राज्य अभयचन्द को दे दिया। इस प्रकार राजा रतनसेन की मृत्यु के बाद अभयचन्द राजा बने, जो आधुनिक बैसवारा के प्रवर्तक हुए।

राज अभयचन्द के राज्य में भरों की आबादी अधिक थी। भरों ने अभयचन्द के राजा बनने का विरोध किया, किन्तु राजा ने उन्हें युद्ध में पराजित कर राज्य के बाहर भगा दिया। राजा ने अपने राज्य की सीमा का विस्तारकिया और आजीवन स्वतंत्र राजा बने रहे। इनकी मृत्यु के पश्चात् राज्य के लिए भाईयों में युद्ध हुआ और एक भाई दिल्ली की सहायता से राजा बन गया। दूसरा भाई राज्य से बाहर चला गया, तभी से यह राज्य दिल्ली के आधीन हो गया। अभयचन्द का वंश बहुत बढ़ा

---

46. *आर. सी. मजूमदार एवं ए. डी. पुसालकर, हिस्ट्र एण्ड कल्चर आफ इण्डियन पिपुल, भाग –5, बाम्बे, 1951, पृष्ट – 54, 55, 122*
47. *फैजाबाद गजेटियर, 1905, पृष्ट–199*
48. *वही*
49. *फैजाबाद गजेटियर, पृष्ट – 199*

और अब तक पूरे राज्य में फैल गया। आगे चलकर इसी वंश से निकलकर घाटमदेव बाराबंकी में जा बसे। ये 12 गांवों के जमींदार थे। यहां इनकी सन्तान गुदारा के वैस कहे जाते हैं। रायशान्ता के पुत्र राजा तिलोकचन्द इस वंश के प्रसिद्ध राजा हुए, जिनके नाम पर ही तिलोकचन्दी वैस विख्यात हुए।[50]

यह भी उल्लेखनीय है कि कुतुबुद्दीन ऐबक के शासनकाल में अमेठी पर बछगोती शासक राज हरी सिंह का अधिकार था। इन्होंने मोहम्मद गोरी के द्वारा भारत की अतिशय पराजय का दृश्य देखा था।

सुलतान बनने के बाद प्रायः वह विद्रोहों के दमन में ही व्यस्त रहा। 1210 ई. में पोलो खेलते समय घोड़े से गिरकर उसकी मृत्यु हो गयी।

ऐबक युग में सुलतानपुर में सूबेदारी व्यवस्था –

मुहम्मद गोरी के शासनकाल में हिसामुद्दीन–अबुल–वक, ऐबक के द्वारा नियुक्त अवध/सुलतानपुर का प्रथम गर्वनर था। इसके बाद इस भू–भाग पर सूबेदारी व्यवस्था लागू की गयी।[51] **इख्तियारूद्दीन बख्तियार खिलजी** (1190), **मलिक हमसुद्दीन** (1193–1197), **मुहम्मद बख्तियार खिलजी** (1197–1225) ऐबक युग में सुलतानपुर परिक्षेत्र के सूबेदार थे।[52]

आरामशाह –

कुतुबुद्दीन की मृत्यु के बाद तुर्क साम्राज्य में अव्यवस्था फैल गयी। लाहौर में

---

50. *हवलदार रन बहादुर सिंह, भाले सुल्तानपुर इतिहास एवं सजरा, उमरा, सुल्तानपुर, शक सम्वत् 1902, पृष्ट 11*
51. *मेजर रावर्टी, तबकाते नासिरी, मिनहाज सिराज ए जनरल, हिस्ट्र आफ गुलाम डायनेस्टीज आफ एशिया इन्वल्यूडिग हिन्दुस्तान, कलकत्ता, 1981, पृष्ट – 146–158*
52. *डब्ल्यू हेग, वही, पृष्ट – 42–43*

उसके पुत्र आरामशाह को अफसरों ने सुलतान बनवा दिया। यह अयोग्य शासक था। दिल्ली के नागरिकों ने इल्तुतमिस को बदायूँ से बुलाकर सुलतान बनने के लिए आमंत्रित किया। आरामशाह भी गद्दी छोड़ने का तैयार नहीं था। जूद के मैद में इल्तुतमिश एवं आरामशाह का संघर्ष हुआ। आरामशाह पराजित हुआ इसका शासन सिर्फ आठ महीने तक ही रहा। इसके शासन काल में सर्वत्र विद्रोह ही होता रहा। इस समय **मुहम्मद बख्तियार खिलजी** (1197 से 1225 ई.) सुलतानपुर का सूबेदार था।

अमेठी भू–भाग इस समय राजा हरी सिंह के अधीन था तथा तिलोकचन्द के पूर्वज बाराबंकी को केन्द्र बनाकर सुलतानपुर के भू–भाग पर शासन कर रहे थे।

इल्तुतमिश –

इल्तुतमिश का पूरा नाम शम्स–उद–दीन इल्तुतमिश था। वह इल्वारी तुर्क एवं गुलाम था। अपनी योग्यता के बल पर "**अमीरे शिकार**" के पद पर नियुक्त हुआ। बाद में ग्वालियर का किलेदार एवं बुलन्दशहर का शासक नियुक्त हुआ। कुतुबुद्दीन ने अपनी पुत्री का विवाह इससे कर दिया। बाद में वह बदायूँ का सूबेदार नियुक्त हुआ तथा 1212 ई. को दिल्ली का सुलतान नियुक्त हुआ।

गद्दी पर बैठने के उपरान्त इसने एल्दौज कुबाचा एवं मंगोलों के प्रतिरोध का सामना किया। बंगाल एवं राजस्थान पर विजय प्राप्त किया। राजपूताना के विरूद्ध सैनिक कार्यवाहियाँ की तथा दोआबा पर विजय प्राप्त करने का पूर्ण प्रयास किंया।

इसी क्रम में इल्तुतमिश ने बहराइच को जीतने के लिए सेना भेजी। यहाँ पर भी इल्तुतमिश का अधिकार हो गया।[53] कमजोर शासन सत्ता का लाभ उठाकर अवध भी स्वतन्त्र हो गया था। उसे पुनः जीतना आवश्यक था। भयंकर युद्ध के

---

53. यह इल्तुतमिश का सबसे बड़ा पुत्र था।

पश्चात यहाँ दिल्ली की सत्ता स्थापित हो सकी। परन्तु अवध क्षेत्र के नये सूबेदार **नासिरूद्दीन महमूद** को स्थानीय जातियों का भयंकर प्रतिरोध सहना पड़ा।

स्थानीय सैनिकों का नेतृत्व वर्तू (पिर्थू) ने किया। वह अत्यन्त वीर एवं साहसी था। उसके बारम्बार तुर्कों को पराजित किया। 1,20,000 शत्रु सैनिक मारे गये। पिर्थू की मृत्यु के बाद ही यह क्षेत्र दिल्ली सल्तनत में सम्मिलित किया जा सका।[54]

मेजर रावर्ती ने अवध की सूबेदारी के सन्दर्भ में कहा है कि 1197 ई. से 1225 ई. तक **मुहम्मद खिलजी** यहाँ का सूबेदार था।[55] जबकि डब्ल्यू हेग एवं मजूमदार तथा पुसालकर महोदय ने हसन मुहम्मद को सुलतानपुर का गर्वनर बतलाया है। जबकि आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव ने इल्तुतमिश के सबसे बड़े पुत्र नासिरूद्दीन महमूद को यहाँ का सूबेदार कहा है।[56]

ऐसा प्रतीत होता है कि बख्तियार खिलजी कुतुबुद्दीन ऐबक के द्वारा नियुक्त सूबेदार था। इसकी तिथि का निर्धारण करने में मेजर रावर्ती भूल कर गये है।

मूलतः डब्ल्यू हेग महोदय का कथन सत्य प्रतीत होता है हसन मुहम्मद सुल्तानपुर का गर्वनर था। इसको राज्य की सीमा का विस्तार करते हुए 1400 गाँवों को इसमें समाहित कर दिया तथा जौनपुर तक विस्तृत कर दिया। आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव द्वारा नियुक्त सूबेदार (नासिरूद्दीन महमूद) सैन्य अभियान का मुखिया था। विजय के उपरान्त वह वापस चला गया होगा। तदन्तर **हसन मुहम्मद** ही गर्वनर

---

54. *मेजर रैवर्टी, तबकाते नासिरी – मिनहाज सिराज – ए जनरल हिस्ट्री आफ द गुलाम डायनेस्टीज आफ एशिया इन्क्ल्यूडिंग हिन्दुस्तान, कलकत्ता, पृष्ट – 146–58*
55. *डब्ल्यू हेग, वही, पृष्ट – 50–51, मजूमदार एवं पुसालकर, वही, पृष्ट – 131*
56. *एच. आर. नेविल, सल्तनत, ए गजेटियर, इलाहाबाद, 1903, पृष्ट – 130–235*

(सूबेदार) के रूप में यहाँ शासन करता रहा। इल्तुतमिश की मृत्यु 1236 ई. में हुयी।[57]अमेठी राज्य इस समय भी राजा हरी सिंह के अधीन था। इस समय तक वे स्थानीय स्तर पर सबसे शसक्त शासके के रूप में अभ्युदित हो रहे थे तथा कादूनाले के आस-पास भर जाति के लोग शासन कर रहे थे। इसी समय अभयचन्द जो आधुनिक बैसवारा के राजा थे, उनकी जमींदारी भी कुछ भू-भागों पर थी।

रुकुनुद्दीन फिरोजशाह –

इल्तुतमिश के उपरान्त रुकुनुद्दीन फिरोजशाह 1236 ई. में गद्दी पर बैठा।[58] यद्यपि इल्तुतमिश अपनी पुत्री को शासिका बनाना चाह रहा था उसने रजिया के नाम का खुतबा पढ़वाया था तथा सिक्कों पर उसका नाम उत्कीर्ण करवाया था। परन्तु उसकी मृत्यु के साथ ही इस निर्णय को उलट दिया गया तथा रुकुनुद्दीन फिरोजशाह को गद्दी पर बैठाया गया।

इसके शासनकाल में सम्पूर्ण सल्तनत में अव्यवस्था व्याप्त हो गयी। अधीनस्थ सूबेदारों ने स्वयं को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। स्वयं सुलतान के भाई ने (गियासुद्दीन) अवध क्षेत्र के सूबेदार[59] के रूप में विद्रोह कर दिया। मेजर रावर्ती ने **मलिक गियासुद्दीन** को (1237)[60] सुलतानपुर (अवध) के सूबेदार के रूप में उद्धृत किया है।

अमेठी का राज्य इस समय भी राजा हरी सिंह के पास था तथा अन्य भू-भागों पर विशेष रूप से जगदीशपुर, मुसाफिरखाना एवं इसौली के आस-पास भर जाति के लोग शासन कर रहे थे।

---

57. मजूमदार एवं पुसालकर, वही, पृष्ट – 131

58. वही, पृष्ट 131

59. मेजर रैवर्टी, वही

60. डॉ. ईश्वरी प्रसाद, मध्यकालीन भारत

रजिया सुलतान –

इल्तुतमिश की पुत्री रजिया 1236 ई. में दिल्ली की गद्दी पर सुलतान के रूप में स्थापित हुयी। इस समय अधिकांश सरदार इसके विरोधी थे। इसने उन सब पर फूट डाल कर विजय प्राप्त किया। वह ताज की सर्वोपरिता स्थापित करना चाहती थी। इसीलिए उसने सम्पूर्ण सूबों पर अपने विश्वासपात्र व्यक्तियों को स्थापित किया। उसका हब्सी याकूत से विशेष अनुराग था। साथ ही वह महिला शासिका थी। अतः शीघ्र ही सरदारों ने इसके विरूद्ध विद्रोह कर दिया। 1240 ई. को रजिया का वध कर दिया गया।[61]

रजिया ने अपने शासन को सुदृण करने के लिए सूबों में नये सूबेदारों को नियुक्त किया था। इसी क्रम में उसने अवध क्षेत्र का सूबेदार **नसिरूद्दीन तैयसी** (1237 ई. से 1240 ई.) को नियुक्त किया।[62] दूसरी तरफ **कमरूद्दीन कुरान**[63] (1240–45 ई.) को भी अवध के सूबेदार के रूप में वर्णित किया गया है।

लाल सीताराम ने भी 1236–1242 ई. के मध्य अयोध्या के सूबेदार के रूप में **नसिरूद्दीन तबासी और कमरूद्दीन कैरान** को अयोध्या के सूबेदार के रूप में बतलाते हैं।[64]

यह ध्यान देने योग्य है कि जहाँ रावर्ती ने नसीरूद्दीन तैयसी को अवध का सूबेदार बतलाया है वही सीताराम ने नसिरूद्दीन तबासी कहा है। मूलतः ये दोनों एक ही नाम थे, दोनो विद्वानों में भिन्नता पाठ्य भेद प्रतीत होता है।

श्री अवधवासी के अनुसार – "1236 ई. से 1242 ई. के मध्य नसीरूद्दीन

---

61. *मेजर रैवर्टी, वही*

62. *वही*

63. *अवधवासी भूष (लाला सीताराम), अयोध्या का इति०, पृष्ट – 147*

64. *अवधवासी भूप, अयोध्या का इतिहास, पृष्ट – 146*

तबासी और कमरूद्दीन कैरान अयोध्या के हाकिम रहे।''[65]

सुलतानपुर का क्षेत्रीय इतिहास इस काल में भी पूर्ववत था। सुलतानपुर का पूर्वी भाग, चाँदा, कादीपुर आदि पर अल्दे के बंशज ऐन केन प्रकारेण सत्ता में बने हुए थे। अमेठी का क्षेत्र राजा हरी सिंह के पास था। कादूनाला का समीपवर्ती भू-भाग भरों के अधीन था। बैसवारा केन्द्र के रूप में अभ्युदित होकर सुलतानपुर के कुछ भू-भागों पर शासन कर रहा था।

मुइजुद्दीन बहरामशाह एवं नासिरूद्दीन महमूद –

मुइजुद्दीन बहरामशाह (1240 से 1242 ई.)[66] एवं नासिरूद्दीन महमूद (1242-1265 ई.)[67] गद्दी पर बैठे इस अवधि में अधिकांश समय बादशाह निर्बल ही रहे। शासन की वास्तविक सत्ता **चालीस दल** के अगुवा बलबन में सीमित थी। इस अवधि में दिल्ली सुलतान के प्रतिनिधि के रूप में अवध क्षेत्र के सूबेदार के रूप में **कमरूद्दीन कुशन** (1240-45 ई.)[68], **तुगनखान** (1245-53 ई.)[69], **कुतलुग खान** (1225-55 ई.)[70] एवं **मलिक ताजुद्दीन** (1255 से 66)[71] के मध्य सूबेदार के रूप में कार्य किया।

---

65. *मेजर रावर्ती, तबकाते नासिरी मिनहाज सिराज ए जनरल हिस्ट्री आफ गुलाम डायनेस्टीज आफ एशिया इन्क्यूडिंग हिन्दुस्तान, कलकत्ता, 1981, पृष्ट – 146-58*
66. *वही*
67. *वही*
68. *वही*
69. *वही*
70. *वही*
71. *अवधवासी भूप, वही, पृष्ट, 147*

डॉ. अवधवासी भूप के अनुसार – "1255 ई. में दिल्ली के बादशाह की माँ ने कुतलुग खाँ के साथ विवाह कर लिया तथा अपने बेटे से लड़ बैठी, इस पर बादशाह ने उसे अयोध्या भेज दिया। यहाँ पर कतलग खाँ ने विद्रोह किया और बादशाह के वजीर बलबन ने उसे यहाँ से हटा दिया तथा **अर्सलां खाँ संजर** को हाकिम बनाया। परन्तु 1249 ई. में वह भी बिगड़ गया। परिणाम स्वरूप उसे भी हटा दिया गया तत्पश्चात् **अमीर खाँ या अलप्तगीन** (हाकिम) बनाया गया। यहाँ उसने 20 वर्ष तक शासन किया।

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि कमजोर केन्द्रीय सत्ता का लाभ अयोध्या के सूबेदारों ने भी उठाया। अन्ततः बलबन के सहयोग से उन पर अधिकार किया जा सका। यह उल्लेखनीय है कि – उक्त अवधि में सुलतानपुर अवध सूबा के अर्न्तगत शासित होता रहा।

नासिरूद्दीन महमूद 1246 ई. से 1265 ई. तक दिल्ली का सुलतान रहा इस अवधि में बलबन अधिकांश समय प्रधानमंत्री के रूप में स्वतन्त्र आचरण किया। इसी बीच बंगाल के सूबेदार तुगन खाँ ने दिल्ली सत्ता के विरूद्ध विद्रोह कर दिया। उसने अवध पर आक्रमण करने की योजना बनायी।[72]

अतः बादशाह ने अमीर खाँ या अलप्तगीन को (अवध/सुलतानपुर) के सूबेदार को तुगरल खाँ को पराजित करने का निर्देश दिया। परन्तु अलप्तगीन हार गया, और बलबन को आज्ञा से उसका सिर काट कर अयोध्या के फाटक पर लटका दिया गया।[73]

बाद में तैमूर ने **तुगन खाँ** को पराजित कर उससे बंगाल छीन लिया। बलबन ने उसे अवध की जागीर प्रदान किया गया। परन्तु 1246 ई. को उसकी मृत्यु हो गयी।[74] इसके बाद **फरहत खाँ** अयोध्या का हाकिम बना, नशे में उसने एक नीच को

---

72. *अवधवासी भूप, अयोध्या का इतिहास, पृष्ट – 148*

73. *वही*

74. *वही*

मार डाला। उसकी विधवा ने बलबन से फरियाद किया। उसने फरहत को 500 कोड़े की सजा दी, और उसे विधवा को सौंप दिया।

इस प्रकार अयोध्या/अवध/सुलतानपुर पर उपर्युक्त अवधि में कई हाकिम/सूबेदार नियुक्त हुए इनमें से सबसे योग्य इल्तुतमिश का पुत्र नासिरूद्दीन महमूद था।[75]

नासिरूद्दीन महमूद के शासन काल की एक घटना सुलतानपुर जनपद के सन्दर्भ में भी प्राप्त होती है। यथा – 1248 ई. में सुलतान नासिरूद्दीन के शासनकाल में बरियार सिंह (चौहान), जिसने सीधे चाहेर देव से अपना संबंध बतलाया, जो कि पृथ्वीराज चौहान का भाई था, अपने घर से भागकर पहले जमुआवाँ एवं बाद भदैयां में स्थापित हुआ।[76] ऐसा कहा जाता है कि – पृथ्वीराज की पराजय के बाद चौहान अकेले कर दिये गये और मुस्लिम शासकों ने चौहानों को समाप्त करने की योजना बना डाली।[77] बरियार सिंह का प्रवासी होना इस घटना का एक महत्वपूर्ण कारण माना जा सकता है।[78]

राजा हरी सिंह अभी भी अमेठी एवं आस-पास के भू-भाग पर शासन कर रहे थे।

परन्तु इसके बारे में एक और भी मजेदार कहानी ज्ञात होती है यथा – बरियार सिंह के पिता, जिनके 22 पुत्र पहले ही थे, वे एक नई नवेली पत्नी पर आशक्त हो गये, पत्नी ने शर्त रखी कि यदि उससे कोई सन्तति (पुरुष) होती है तो

---

75. *एच. आर. नेविल, वही, पृष्ट – 78-79*
76. *आर. सी. मजूमदार एवं ए. डी. पुसालकर – हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ द इण्डियन पीपुल्स, भाग-5, पृष्ट 122*
77. *एच. आर नेविल, वही, पृष्ट – 78-79*
78. *वही*

वही उनका उत्तराधिकारी होगा।[79] इसके बाद 22 भाई अलग-अलग क्षेत्रों में चल गये।[80] बरियार सिंह पूर्वी अवध में आया ऐसा कहा जाता है कि - वह अलाऊद्दीन मसूद की सेना में भरती हो गया। उसे भरो को खदेड़ने का काम मिला, जो सुलतानपुर पर स्थानीय शासक के रूप में शासन कर रहे थे।

उपर्युक्त से यही स्पष्ट होता है कि - दिल्ली सल्तनत युग के प्रथम चरण में अवध, पूर्वी उत्तर प्रदेश का केन्द्र था तथा प्रत्येक क्षेत्र अवध के अधीन स्थानीय स्वशासन के आधार पर संचालित हो रहे थे। यह भी स्पष्ट होता है कि उस समय सुलतानपुर (जनपद) पर अभी भर शक्तिशाली स्थिति में थे।

बलबन –

बलबन का मूल नाम बहाऊद्दीन था।[81] वह 1265 ई. पर सिंहासन पर बैठा तथा 1287 ई. तक शासन किया।[82] सुलतानपुर गजेटियर में बलबन की राज्यारोहड़ तिथि 1266 बतलायी गयी है।[83] शासक बनने के पूर्व यह सभी प्रमुख राजकीय पदों पर कार्य कर चुका था। सम्पूर्ण हिन्दुस्तान सहित अवध/ सुलतानपुर की स्थिति से पूरी तरह वाकिफ था।[84] सुलतान के रूप में बलबन ने सत्ता का केन्द्रीय करण किया, ताज की प्रतिष्ठा को स्थापित किया। सुलतान के अभिवादन हेतु **पैवोस** तथा **सिजदा** का प्रचलन कराया, दरबारी परम्परा को स्थापित किया, मधपान पर अंकुश लगाया, **चालीस मंडल** का, जिसका वह नेता था, विनाश कराया, सेना का पुर्नसंगठन कराया, उपहार में प्रदान जगीरे वापस ले ली गयीं।

79. एच. आर नेविल, वही, पृष्ट – 78–79

80. सुलतानपुर गजेटियर, पृष्ट – 26–27

81. वही

82. सुलतानपुर गजेटियर, पृष्ट – 26–27

83. पूर्वोद्धृत

84. डब्ल्यू हेग, वही, पृष्ट – 51–53

बलबन उच्चकोटि का राजनीतिज्ञ था। उसने अपने मित्रों की राज्य विस्तार नीति पर अमल ने करते हुए पूर्व स्थापित राज्य को पुनर्गठित करने का सम्यक् प्रयत्न किया। इस समय आन्तरिक उपद्रव आरम्भ हो गया था। तुर्की साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने की स्थिति में आ गया था। स्थानीय सरदार लूट खरोस पर उतर आये थे। सल्तनत को राजस्व मिलना बंद हो गया था। सम्पूर्ण भारत भर में यही स्थिति उत्पन्न हो गयी थी।[85]

बलबन ने अत्यन्त धौर्य के साथ चोर डाकुओं का दमन किया, इससे दिल्ली एवं निकटवर्ती भू-भाग सुरक्षित हो गया। दिल्ली के समीप ग्रामीण क्षेत्रों में किले की स्थापना करवायी। बंगाल को पुनर्विजित किया मंगोल आक्रमण का डटकर सामना किया। समस्त प्रान्तों में अपने योग्य सेनापतियों एवं व्यक्तियों को नियुक्त किया।

बलबन की सुलतानपुर के प्रति नीति –

दिल्ली की गद्दी पर बैठने के उपरान्त उसे यह अनुभव हुआ कि – अवध क्षेत्र पर उसकी पकड़ कमजोर हो रही है। खासकर सुलतानपुर क्षेत्र में,[86] अतः उसने इस क्षेत्र को सेना के हवाले कर दिया। सेना ने यहाँ पर एक बार पुनः दिल्ली की सत्ता को स्थापित किया।

यद्यपि सुलतान कठोर व्यक्ति था तथाकि न्यायप्रिय था।[87] इसके लिए उसने अपने राज्याधिकारियों को भी नहीं बक्सा,[88] यहाँ तक कि **हैवत खाँ** को जो यहाँ का रैयती था, उसे भी कठोर दंड दिया।[89]

---

85. मजूमदार एवं पुसालकर, वही, पृष्ट – 15

86. वही

87. वही

98. वही

99. हेग, वही, पृष्ट – 79-80

1280 ई. में **जेतगिन मुईद राज अमीरखान** अवध का सूबेदार नियुक्त हुआ।[90] यद्यपि ईश्वरी प्रसाद ने इसके नियुक्ति की तिथि 1279 ई. स्वीकारी है।[91] इसने बंगाल के विद्रोही तुगारिल खाँ को नियन्त्रित करने का प्रयास किया परन्तु असफल रहा।[92] अतः सुलतान को स्वयं बंगाल अभियान करना पड़ा। वह सुलतानपुर होते हुए अवध से गुजरा तथा बंगाल पर पुनर्प्रभाव स्थापित किया।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि बलबन कुशल राजनीतिज्ञ के साथ कुशल सैन्य संचालक एवं कुशल प्रशासक भी था। इसी क्रम में उसकी न्यायप्रियता भी अनुकरणीय है। उसने अवध क्षेत्र में ही इसका भी परिचय दिया तथा एक सामान्य स्तर के व्यक्ति के लिए अपने सूबेदार तक को भी दंडित किया। कुल मिलाकर उसके शासन काल में सुलतानपुर (अवध) दिल्ली सल्तनत का अंग बना रहा।

बलबन के उपरान्त बलबन के पुत्र एवं पौत्र में संघर्ष तक की नौबत आ गयी। दोनों का आमना-सामना घाघरा के सन्निकट **अयोध्या** के समीप हुआ।[93] यद्यपि यह युद्ध हुआ नही। शीघ्र ही कयूमर्स दिल्ली का सुलतान हुआ। यह खिलजी सरदार जलालुद्दीन से भयभीत था। अतः इसने जलालुद्दीन की हत्या की योजना बनायी। यह योजना अमल में न लायी जा सकी जलालुद्दीन ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया।[94] कालान्तर में कयूमर्स एवं कैकुवाद की हत्या करवा कर 1290 ई. में दिल्ली का सुलतान बन बैठा। इस प्रकार दिल्ली से गुलाम वंश का अवसान हो गया तथा एक नये राजवंश की नीव पड़ी जिसे खिलजी वंश के नाम से जाना जाता है। यह ध्यान देने योग्य है कि सुलतानपुर अभी दिल्ली सत्ता के अधीन ही थी।

---

90. ईश्वरी प्रसाद, ए शार्ट हिस्ट्री आफ मुस्लिम रुल्स इन इण्डिया, 1975, पृष्ट-70

91. मजूमदार एवं पुसालकर; वही, पृष्ट - 154

92. हेग, वही, पृष्ट -79-80

93. वही

94. जियाउद्दीन वरनी, तारीखे फिरोजशाही, 1980, पृष्ट 56

राजा हरी सिंह बलबल के शासन के आरम्भिक काल में अमेठी के शासक थे। इन्होंने 1274 ई० तक शासन किया, तद्न्तर राजा देवनशाह 1274 से 1334 तक शासन किया। सुलतानपुर के अन्य क्षेत्रों की स्थिति पूर्ववत थी।

(ख) खिलजी शासन एवं सुलतानपुर –

भारत में खिलजी साम्राज्य की स्थापना जलालुद्दीन खिलजी ने किया। वह खलजी कबीले का तुर्क था। इसके पूर्वज आकर दिल्ली में बस गये तथा तुर्की सुलतानों के यहाँ नौकरी करने लगे। सामान्यतयः इन्हें अफगानी पठान समझा जाता था। इस वंश के आरम्भिक शासक योग्य थे तथा परवर्ती शासक निर्बल एवं अयोग्य। परन्तु इनके शासन काल में सामान्य तौर पर सुलतानपुर पर इनका अधिकार बरकरार रहा जिसका विवरण सुलतानों के क्रम में निम्नालिखित है –

जलालुद्दीन फिरोज खिलजी –

यह दिल्ली की गद्दी पर 1290 ई. को बैठा तथा 1294 ई. तक शासन किया। सुलतान बनने के पूर्व यह राज्य के समस्त महत्वपूर्ण पदों पर कार्य कर चुका था। इससे कट्टर तुर्की अमीर ईर्ष्या रखते थे। वे फिरोज को शून्य की स्थिति में लाना चाहते थे। अतः उसने कुछ विरोधियों का दमन करके, अल्पवयस्क बालक/शासक के संरक्षण का दायित्व ग्रहण किया। बाद में कैकुबाद एवं कयूमर्स की हत्याकर – दिल्ली की गद्दी पर बैठा।

शासक बनने के बाद उसने मलिक छज्जू को कड़ा सूबेदार बना रहने दिया। शेष सभी को सामान्य तौर पर अपने पदों पर बना रहने दिया। शीघ्र ही मलिक छज्जू ने विद्रोह कर दिया। अवध का सूबेदार **हातिम खाँ** भी उसमें जा मिला। विद्रोह शीघ्र ही दबा दिया गया। छज्जू का माफ कर दिया गया। कड़ा–मनिक पुर की सूबेदारी सुलतान के भतीजे एवं दामाद अलाऊद्दीन को प्राप्त हुयी। शीघ्र **अलाऊद्दीन** को अवध की सूबेदारी भी प्राप्त हो गयी। परन्तु वह अयोध्या में निवास न करके

इलाहाबाद के निकट कड़ा में निवास करता था।[95] आते जाते वह सुलतानपुर पर भी निगाह रखता था।[96] शीघ्र ही उसने अपने चाचा एवं श्वसुर की हत्या कर दिल्ली के सुलतान का पद प्राप्त किया। अलाऊद्दीन कट्टर मुसलमान था, उसने मालवा, देवगिरी, गुजरात, रथथम्मौर, चित्तौड़, मारवाड़, जालौर, वारंगल, तैंलगाना, होयसल राज, पाण्ड्राज्य आदि पर आक्रमण किया तथा इन क्षेत्रों को पराजित कर, भयंकर रक्तपात किया, मन्दिरों को तोड़ा स्त्रियों के सतीत्व को नष्ट किया। इसके अतिरिक्त मंगोलों का भी सफल प्रतिरोध अलाऊद्दीन ने किया।

अलाऊद्दीन उपर्युक्त शासकीय दुगुणों युक्त होने के बाद भी प्रजारंजक शासक प्रतीत होता है। उसने प्रसानिक सुधार किया, गुप्तचर व्यवस्था को पुनर्सगंठित किया, बाजार पर नियन्त्रण कर वस्तुओं का मूल्य निर्धारित किया। सट्टेबाजी एवं जमा खोरी पर अंकुश लगाया। अलाऊद्दीन उलेमा एवं अमीर वर्ग की पकड़ से बाहर था, उसने स्वयं घोषणा कर रखी थी कि – **"मैं नहीं जानता कि क्या कानून की दृष्टि से क्या उचित होता है, मैं जो चाहता हूँ, करता हूँ, उसी को करने की आज्ञा देता हूँ; अन्तिम न्याय के दिन मेरा क्या होगा मैं नहीं जानता।"** इससे यही स्पष्ट होता है कि – अलाऊद्दीन निरंकुश राजसत्ता का समर्थक था, उसे बाहय हस्तक्षेप स्वीकार नहीं था।

अमेठी का शासन इस समय राजा देवनशाह के हाथ में था।

अलाऊद्दीन एवं सुलतानपुर –

अपनी विजय एवं वर्चस्व की नीति का अनुकरण अलाऊद्दीन ने सुलतानपुर (कुशभानपुर) के सन्दर्भ में किया। यथा – अलाऊद्दीन के शासनकाल (1296 से 1316 ई.)[97] में दो भाई (सैय्यद मुम्मद एवं सैय्यद अलाऊद्दीन) जो घोड़े के व्यापारी

---

95. *अवधवासी भूप, वही, पृष्ट – 148*

96. *वही*

97. *कनिंघम, वही, पृष्ट – 337*

थे, पूर्वी अवध आये तथा भर शासक नंद कुंअर[98] से (जो कुशभानपुर के राजा थे) घोड़े बेचने की पेशकश किया। नंद कुंवर ने घोड़ों को छीन लिया तथा दोनों भाइयों की हत्या कर दिया।[99]

नंद कुंवर के इस कृत्य को सुनकर अलाऊद्दीन खिलजी एक विशाल सेना के साथ कुशभवनपुर चल पड़ा।[100] अलाऊद्दीन ने सुलतानपुर के निकट "करौदी" के जंगल में घेरा डाल दिया।[101] यह स्थल गोमती नदी के दूसरे किनारे पर है।[102] अलाऊद्दीन लगभग एक वर्ष घेरा डाले रहा, मगर उसे कोई लाभ नहीं हुआ और न ही वह कुशभानपुर (सुल्तानपुर) पर आक्रमण करने का साहस जुटा पाया। परिणाम स्परूप उसने कूटनीति का आश्रय लिया। अलाऊद्दीन ने भर राजा नंद कुंवर के पास पालकियों में धन भरकर शान्ति प्रस्ताव के लिए भेजा।[103]

भर शासक लालच में आ गये। उन्होंने जैसे ही पालकियों को खोला उसमें से लड़ाकू सैनिक निकल पड़े।[104] एकाएक आक्रमण से भर अचम्भित रह गये। वे तैयार नहीं थे। अधिकांश भर सरदार मारे गये।[105] राजा नंद कुंवर को पदच्युत कर दिया गया।[106] विजयोत्सव पर वहाँ एक मस्जिद बनवायी गयी।[107] कुशभानपुर का नाम

---

98. *एच. आर नेविल, वही, पृष्ट - 204-205*
99. *कनिंघम, वही, पृष्ट - 337*
100. *वही*
101. *सुलतानपुर गजेटियर, पृष्ट - 26*
102. *एच. आर नेविल, वही, पृष्ट - 204-205*
103. *कनिंघम, वही, पृष्ट - 337*
104. *कनिंघम, वही*
105. *नेविल, वही, 204-205*
106. *दरोगा हाजी मस्तान अली, An gllustrated Historical Album of the Raja and taluqlars of outh, Allhabad, 1880, P-2*
107. *A. Fuhrer, the manumentel Antiquilties and gnseriptionl in the north western prokinces and outh, Allahabad, 1891, P-328*

बदल कर सुलतानपुर कर दिया गया।[108]

राजेश्वर सिंह ने अपने लेख में इसी घटना को दूसरी तरह वर्णित किया है। यथा – "दिल्ली के बादशाह ने बदले की भावना से कुशभानपुर अभियान किया तथा गोमती के दूसरे किनारे घेरा डाल दिया। होली के दिन उपहार देने के बहाने पालकियों में सेना को उतार दिया, युद्ध हुआ, इस युद्ध में भर पराजित हुए। इस प्रकार कुशभवनपुर पर मुस्लिमों का आधिपत्य हो गया। **तभी से कुशभवनपुर का नाम परिवर्तित करके सुलतानपुर कर दिया गया** जो आज तक चला आ रहा है।[109]

यहाँ पर इस तथ्य का उल्लेख करना समीचीन है कि –

1. अलाऊद्दीन ने प्रतिशोध से पशीभूत होकर इस क्षेत्र पर आक्रमण किया था।
2. अलाऊद्दीन के आक्रमण के समय कुशभानपुर (सुलतानपुर) में होली का त्यौहार परम्परागत ढंग से मनाया जाता था।
3. डब्ल्यू हेग ने हिसामुद्दीन को पहला पाक् मुसलमान माना है, जो यहाँ आया था।[110] इसके पहले के मुसलमान संभवता जजिया से बचने के लिए मुस्लिम धर्म स्वीकार करने वाले थे।

नेविल महोदय ने आगे यह भी उल्लेख किया है कि – "भरों का प्रधान केन्द्र इसौली था।[111] भरों का आधिपत्य समाप्त कराने के उद्देश्य से अलाऊद्दीन खिलजी ने बैस (ठाकुरों) को इकट्ठा किया, उन्हें **भाले सुलतानपुरी** की उपाधि प्रदान किया।[112] सुरक्षा की दृष्टि से अलाऊद्दीन खिलजी ने गोमती से दक्षिण एक क़िले का

---

108. *वही*
109. *राजेश्वर सिंह, दैनिक जनमोर्चा, पृष्ट 7, "सुलतानपुर इतिहास के आइने में"*
110. *डब्ल्यू हेग, कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग – 3, पृष्ट 42–43*
111. *नेविल, वही, पृष्ट – 183*
112. *वही*

निर्माण करवाया, इस स्थल का नाम मीरानपुर (कठोन) था।[113] इसके अवशेष अभी भी देखे जा सकते है। वर्तमान में इस गाँव का नाम जूड़ा पट्टी है।[114]

कुशभानपुर (सुलतानपुर) पर नियन्त्रण रखने के लिए एक अन्य किला मुसाफिरखाना इसौली मार्ग पर बनवाया तथा यहाँ पर अफगान सैनिकों को नियुक्त किया। इसके अग्नावशेष अब भी विद्यमान हैं। किला चतुर्दिक चाहरदीवारी युक्त था। दिवाल में स्थान-स्थान पर सुराख बने हुए हैं। सम्भवतः इन सुराखों का उपयोग अन्दर से तीर चलाने एवं वाहय गतिविधि पर नजर रखने के लिए किया जाता था।[115]

अलाऊद्दीन खिलजी ने एक अन्य किला कादीपुर (वर्तमान नाम) में स्थापित करवाया था। इस प्रकार यहाँ से कुल चार किलों[116] का परिज्ञान होता है - (1) कादीपुर का किला (2) मुसाफिरखाना से जगदीशपुर के मध्य दादरा गाँव (संभावित) का किला एवं (3) सुलतानपुर या कुड़वार (विवादित)[117] (4) अन्य किला मुसाफिरखाना इसौली मार्ग पर।

अलाऊद्दीन खिलजी अवध प्रान्त की व्यवस्था सूबेदारी व्यवस्था से करवाता था।[118] यहाँ की राजस्व व्यवस्था मुस्लिम व्यवस्था पर आधारित थी स्थानीय कर अलग से देय था।[119]

राजा देवनशाह के नेतृत्व में इस समय अमेठी फल-फूल रहा था। सुलतानपुर

---

113. *नेविल, वही, पृष्ट - 183*
114. *वही*
115. *वही*
116. *कनिंघम, आर्क्यालॉजी सर्वे आफ इण्डिया रिर्पोट, 1, पृष्ट - 314*
117. *वही*
118. *गजेटियर आफ अवध, भाग - 1, 147*
119. *हसन निजामी, दिल्ली सल्तनत, दिल्ली संस्करण, 1978, पृष्ट - 95*

अभियान के समय अमेठी राजवंश भी प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभावित हुआ, परन्तु नेतृत्वपरिवर्तन जैसी कोई भी ऐतिहासिक विषय वस्तु दृष्टिगत नहीं होती है।

तुगलक शासन एवं सुलतानपुर –

अलाऊद्दीन खिलजी के उपरान्त खिलजी वंश के उत्तराधिकारी अयोग्य सिद्ध हुए। अतः न केवल सीमाप्रान्तों में अपितु दिल्ली में भी उत्पात होने लगा। परन्तु इस अवधि में सुलतानपुर की स्थिति क्या रही यह स्पष्ट नहीं होती है।

गियासुद्दीन तुगलक –

दिल्ली सल्तनत की सत्ता पुनः गियासुद्दीन तुगलक (1320–25 ई.) के साथ स्थापित को प्राप्त हुयी। इसका पिता बलबन का एक तुर्की गुलाम तथा माँ पंजाब की जाट कन्या थी।[120] वह अलाऊद्दीन के वंशजों के अभाव में 1320 ई. को गियासुद्दीन तुगलकशाह "गाजी" के नाम से गद्दी पर बैठा।

सुलतान बनने के उपरान्त उसने खुशखशाह द्वारा बाँटी गयी रकम को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त किया। उसने सम्पूर्ण रियासत में इक्ता की रकम को 1/10–1/11 तक निर्धारित किया। डाक व्यवस्था को पूर्ण रूपेण सुव्यवस्थित करवाया। हिन्दुओं के प्रति नीति को उसने लगभग पूर्ववत ही रखा। मन्दिर एवं मूर्तियों का विध्वंस इसने भी जारी रखा।

अपने शासनकाल में इसने दक्षिण भारत के बारंगल पर विजय प्राप्त कर दिल्ली सल्तनत के सूबे के रूप में व्यवस्थित किया, उत्कल लूट किया बंगाल विद्रोह का दमन किया, अयोध्या सूबा (सुलतानपुर) पूर्ववत की भाँति दिल्ली सल्तनत का अंग बना रहा।

राजा देवनशाह इस काल में भी कुछ समय तक के लिए 1334 ई० तक

---

120. नीबिल, वही, पृष्ट – 183

जीवित थे। सम्प्रति अमेठी पर अधिकार भी कर रखे थे।

मुहम्मद बिन तुगलक (1325–1351 ई.) –

गियासुद्दीन की मृत्यु के बाद मुहम्मद तुगलक 1325 ई. में गद्दी पर बैठा।[121] तदन्तर इसने सल्तनत के सभी राज्यों से आय व्यय का लेखा जोखा माँगा। सुल्तान बनते ही सबसे पहले उसने दोआबा में कर वृद्धि करवा दिया, मकान कर, चारागाह आदि से भी कर वसूलने का प्रयास किया।[122] इसी समय दोआबा में आकाल पड़ गया।[123] लोग कृषि कार्य छोड़ कर लूटमार करना शुरू कर दिये।[124] नये करों से खिन्न होकर प्रजा ने सुल्तान के प्रति अप्रियता जाहिर किया।[125]

अवध में विद्रोह –

मुहम्मद तुगलक के शासन काल में सम्पूर्ण सल्तनत में अनेक विद्रोह हुए परन्तु अवध सूबे का विद्रोह सबसे भयानक था। यहाँ के विद्रोह का नेतृत्व **आईन–उल–मुल्क** ने किया।[126] यह सल्तनत के अमीरों एवं पदाधिकारियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थिति रखता था। 1340–41 ई. में राजधानी परिवर्तन के साथ ही उसे दौलताबाद परिवर्तित कर दिया गया। अईन–उल–मुल्क ने अपना अपमान समझा। इसलिए उसने विद्रोह कर दिया। विद्रोह के परिणाम स्परूप वह पराजित हुआ। **सल्तनत का अधिकार अवध पर कायम रहा।** 1351 ई. को मुहम्मद तुगलक का देहान्त हो गया। इसके उपरान्त फिरोजशाह शासक हुआ। सामान्य तौर पर अवध या सुलतानपुर से सम्बन्धित कोई भी साक्ष्य इसके काल में दृष्टिगत नहीं होते हैं।

---

121. नीबिल, वही, पृष्ट – 183

122. वही, पृष्ट – 142–143

123. वही, पृष्ट – 143

124. वही

125. वही

126. दैनिक जनमोर्चा, पृष्ट 7

ध्यातव्य है कि राजा देवनशाह 1334 ई० तक जीवित रहे। मुहम्मद बिन तुगलक का राज्य 1325 ई० से आरम्भ होता है अतः इस शासक के आरम्भिक शासन काल में राजा देवनशाह जीवित थे तथा अमेठी के शासक थे। तद्न्तर 1334 से 1358 ई० तक राजा मान्धाता सिंह ने शासन किया।

यह भी उल्लेखनीय है कि मुहम्मद तुगलक के शासन के अन्तिम दिनों तिलोकचन्द के पिता रायशन्ता को तुगलक की सेना से युद्ध करना पड़ा, रायशन्ता मारा गया। 1333 ई० में रायशन्ता की गर्भवती रानी ने तिलोकचन्द नामक बालक को जन्म दिया, आगे चलकर यह जौनपुर पर अधिकार करने में सक्षम हुआ। फलतः परोक्ष रूप से सुलतानपुर का लगभग सम्पूर्ण भू-भाग तिलोकचन्द के अधिकार में आ गया।

परवर्ती तुगलक सुल्तान –

फिरोजशाह के उपरान्त कई सुल्तान थोड़ी-थोड़ी अवधि के लिए सुल्तान हुए। ये सभी अयोग्य थे। इसी का लाभ उठा कर मलिक **सर्वर नामक हिजड़े** ने **सुल्तान–उल–सर्क** की उपाधि के साथ 1394 ई. में जौनपुर को केन्द्र बना कर सर्की राज्य की नींव डाली। तैमूर का आक्रमण 1398-99 ई. में भारत पर हुआ। परिणाम स्परूप तुगलक राजवंश पूरी तरह छिन्न-भिन्न हो गया।

मोहम्मद बिन तुगलक के उपरान्त तुगलक राजवंश की स्थिति डावॉडोल हो गयी। 1394 ई० मे शर्की शासकों ने जौनपुर आदि पर कब्जा कर लिया। फलतः सुलतानपुर का भू-भाग स्वमेव उनके अधिकार में आ गया। इस अवधि में अमेठी पर राजा मान्धाता सिंह, राजा शूदी सिंह तथा राजा मुनीवर सिंह ने शासन किया।

सुल्तानपुर की तत्कालीन स्थिति –

तैमूर के आक्रमण के पूर्व ही जौनपुर स्वतन्त्र राज्य के रूप में अस्तित्व में आ चुका था। इसने सल्तनत की डावाँडोल स्थिति का पूरा फायदा उठाया। इस राज्य में

जौनपुर, बिहार का कुछ भाग तथा पूरा अवध सहित कन्नौज तक का क्षेत्र सर्की राज्य का अंग बन गया।

(घ) शर्की राजवंश एवं सुलतानपुर –

राजेश्वर सिंह के अनुसार – "1394 ई. में **"मलिक सरवर ख्वाजा"** ने जौनपुर में सर्की राजवंश की नींव डाली।" इस समय सुलतानपुर सर्की शासकों के अधीन था। इसकी पुष्टि धोपाप[127] से प्राप्त शर्की सल्तनत के सिक्कों से होती है।[128]

मलिक सर्की की मृत्यु 1399 ई. को हुयी।[129] इसके बाद इसका गोद लिया पुत्र **"मुबारक शाह गद्दी"** पर बैठा।[130] इसका शासन अल्पकालीन रखा। तदन्तर 1402 ई. को **"इब्राहीम शाह शर्की"** गद्दी पर बैठा।[131] यह कट्टर इस्लाम धर्मानुयायी था। इसने फर में छूट प्रदान करने की लालच देकर अनेक हिन्दुओं को धर्म परिवर्तन कराने में सफलता प्राप्त किया।[132] धोपाप से प्राप्त शर्की शासन के सिक्के इसी के द्वारा परवर्तित कराये गये थे।[133] ऐसा प्रतीत होता है कि यह सुलतानपुर कई बार आया था।

पिता की मृत्यु का समाचार पाकर वे बैसवारा वापस आये तो पृथ्वीचन्द राजा बन गये थे। विड़ारदेव गृह युद्ध शांत कर अपना राज्य का अधिकार त्याग कर

---

127. धोपाप सुलतानपुर जनपद में लम्भुआ के सन्निकट गोमती नदी के किनारे अवस्थित है। यहाँ पर दशहरा के अवसर पर मेला लगता है।

128. वही

129. डब्ल्यू हेग, कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृष्ट – 187–188

130. आर सी. मजूमदार एवं ए. डी. पुसालकर, वही, 37–38

131. गजेटियर आफ सुल्तानपुर, पृष्ट – 28

132. एच. एम. इलियट एवं जेन्डाऊसन, द हिस्ट्री आफ इण्डिया एट टोल्ट बाई इटस ओन हिस्टोरियन्स, दिल्ली, भाग – 4, पृष्ट – 37–38

133. वही

लौटना चाहते थे, किन्तु आपस में मलाह करने के बाद यह तय पाया गया कि बैसवारा मे राजा की उपाधि समाप्त कर दी जाय। राजा के स्थान पर (1) राव (2) राना की उपाधि रहे। इसी के अनुसार विड़ारदेव राव हुए और पृथ्वीचन्द 'राना' बने। विड़ारदेव अपने पुत्र देवराय को छोड़कर जौनपुर लौट पड़े।

देवराय ने गंगा के किनारे देवरिया खेड़ा बसाया और वहीं रहने लगे।

जब विड़ारदेव जौनपुर लौट रहे थे तो गाजनपुर में कुछ दिनों तक रूक गये। यहाँ पर उनके जागीर की राजधानी थी और एक मित्र गुन्नौर गांव में 27 गांव के जमींदार थे। यहां विड़ारदेव कई दिनों तक रूके रहे, यहीं पर सैर करने तथा शिकार करने की योजना भी बनी रायसाथन भी साथ-साथ रहता था।

एक दिन उनके पुत्र रायविड़ार गुन्नौर गये थे। दो भर सैनिक तथा कुछ सैनिक उनके साथ वहीं रह गये थे। उस दिन रायसाथन भी किले में ही था। रात्रि में उसके इशारे पर किले का फाटक खुल गया और भर सैनिक मार-काट करने लगे। राय बखण्ड अपने साथियों और रानी सहित मारे गये लेकिन रायबिड़ार गुन्नौर में सुरक्षित बचे गये।

रायबिड़ार गुन्नौर के जमींदार विजयसेन की सहायता से अपने सैनिकों के साथ जौनपुर पहुच गये। उस समय उनके पुरोहित राईमऊ और भाट रायधावा के अतिरिक्त दो भर सरदार और कुछ सैनिक थे। वहाँ पहुँचने पर उनका स्वागत हुआ और पंच हजारी मंसब और जागीर मिली।[134]

राय विड़ार का जन्म सन् 1394 ई० में हुआ था। उस समय इनके पिता विड़ार देव पूरब विजय में लगे थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् रायबिड़ार जौनपुर पहुंच गये। और वहीं रहकर उन्होंने अपनी शिक्षा-दीक्षा पूरी की। सन् 1414 ई० में उन्होंने

---

134. हवलदार रन बहादुर सिंह, भाले सुल्तानपुर इतिहास एवं सजरा, उमरा, सुल्तानपुर, शक सम्वत् 1902 पृष्ट 13

महमूद तुगलक के परामर्श पर अपनी जागीर पर अधिकार करने की योजना बनाई। कछवाहा राजकुमार, चौहान, विसेन और अन्य कई राजकुमार तथा राजाओं ने उन्हें सहायता का वचन दिय। रायबिड़ार ने अपनी निजी सेना भी जुटाई तथा दिल्ली राज्य सहायता और मंत्रणा से पूरब की तरफ चल पड़े। पहले कछवाहा राजकुमार के साथ मिलकर अमेठी पर अधिकार कर लिया। वहां एक लोनिया का राज्य था। अब दोनों सेनायें साविनी की तरफ चली। इसौली, तिलोहटी और गाजनपुर पर अधिकार करने के बाद नयी योजना बनाई गयी और रायसाथन के साथ सन्धि की बातचीत होने लगी। रायसाथन भी अचानक युद्ध के लिए तैयार न था। वह चुपचाप सन्धि की बातचीत और युद्ध की तैयारी करने लगा। (राय बिड़ार के गुप्तचर) जासूस अपने कार्य में लगे थे। इधर सेना का संगठन होने लगा। जाड़े के अन्तिम दिनों में शिवरात्रि को अन्तिम युद्ध का समय निश्चित हुआ। शिवरात्रि के दिनभर लोग त्योहार मनाते थे तथा पूजा करते और मदिरा का पान करते थे।

अर्द्धरात्रि के समय रायबिड़ार की सेना भी सथिनी पहुंच गयी। पहले से घुसे गुप्तचरों ने किले का फाटक खोल दिया। उस समय अनेक भर पूजा और नशे में मस्त थे। मारकाट आरम्भ हो गई और थोड़ी ही देर में राय साथन अपने भाई राय किशन के साथ मारा गया। जो लोग बाहर थे उन्हें बाहरी सैनिकों ने मौत के घाट उतार दिया। सूर्योदय तक भरों का सफाया हो गया, एंक भी भर जीवित न बचा और लड़ाई समाप्त हो गयी। इस प्रकार भर विहीन अपनी जागीर पर पूर्ण अधिकार करने के पश्चात् रायबिड़ार दिल्ली लौटे तो महमूद तुगलक ने उन्हें भाले सुलतान की उपाधि की उपाधि से विभूषित किया। अब राय बिड़ार जौनपुर चले गए। इसी वर्ष महमूद तुगलक मर गया और सैय्यद खिजर खां ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया। जौनपुर एक स्वतंत्र राज्य बन गया।

राय बिड़ार ने केवल 20 वर्ष की आयु में ही अपनी जागीर पर अधिकार किया था। जौनपुर स्वतंत्र होते ही उन्होंने अपना राजतिलक किया और राजा बन

गये।

1420 ई० में उनका प्रथम विवाह गुन्नौर के राजय विजय सेन गौतम की पुत्री से हुआ। विजय सेन को कोई पुत्र नहीं था इसलिए उन्होंने अपना राज्य भी रायबिड़ार को सौंप दिया और स्वयं उन्हीं के किले में; जो कादू नाले के दाहिने किनारे पर बना था; रहने लगे। 1430 ई० में उनका दूसरा विवाह मैनपुरी चौहान कुल से हुआ। ये चौहान बिड़ार देव के साथ जौनपुर विजय के समय आये थे और जब कौमावार इलाका जागीर के तौर पर बंटा था तब 14 कोस की जागीर इन्हें मिली थी तथा भरों को निकाल कर यहीं बस गये थे।[135]

इब्राहीम शर्की के उपरान्त उसका पुत्र **मुहम्मद शाह शर्की** (1440–1457 ई) शर्की राज्य का उत्तराधिकारी रहा।[136] मुहम्मद शाह शर्की का कत्ल करके **हुसैन शाह शर्की** राजा बना। इसने 1479 से तक शासन किया।[137] 1479 ई. में शर्की राज्य पर आक्रमण कर बहलोल लोदी ने दिल्ली सल्तनत का अंग बना लिया तथा अपने पुत्र **बारबक लोदी** को जौनपुर का गर्वनर नियुक्त किया।[138]

इस प्रकार 1479 ई. में एक बार पुनः जौनपुर दिल्ली सल्तनत का अंग बन गया। जौनपुर के साथ ही सुलतानपुर जनपद भी दिल्ली सल्तनत का अंग बन गया।

शर्की शासकों से सम्बन्धित कई पुरातात्विक साक्ष्य सुलतानपुर जनपद से प्राप्य हैं। यथा –

1. अल्देमऊ का पुराने किले का भग्नावशेष जो भर शासक द्वारा निर्मित कराया

---

135. हवलदार रन बहादुर सिंह, भाले सुल्तानपुर इतिहास एवं सजरा, उमरा, सुल्तानपुर, शक सम्वत् 1902 पृष्ट 15

136. नेविल, वही, पृष्ट – 134

137. मजूमदार एवं पुसालकर, वही, भाग – 4, पृष्ट – 188–190

138. वही

गया था, शर्की शासकों द्वारा नष्ट करवाया गया। आज भी यत्र-तत्र किले का अवशेष बिखरा पड़ा है।

2. तत्कालीन सन्तों की कब्रें (शेख मख्दूम, मारूफ और जुरीया शहीद की कब्रे) जिनका निर्माण शर्की शासकों ने करवाया था। वे इन संतों के प्रति विनम्र आस्था रखते थे।

3. कादीपुर तहसील के शाहगढ़ गाँव के समीप से प्राप्त तीन गुम्बद की मस्जिद (वर्तमान में गदरसाक के नाम से जानी जाती है)।

तिलोकचन्द भी इस समय पर्याप्त सफलता प्राप्त कर चुके थे। उन्होंने जौनपुर के सूबेदार से युद्ध कर पराजित किया। जौनपुर पर अधिकार करने के उपरान्त विभिन्न भू-भागों को अपने समर्थकों बाँट दिया। जौनपुर पर दिल्ली का अधिकार हो गया तथा जौनपुर का सूबेदार एक हिन्दू, रायबहादुर नियुक्त हुआ।

(ङ) सैय्यद तथा लोदी शासन एवं सुलतानपुर –

सैय्यद शासकों के काल में जौनपुर शर्की शासकों के अधीन था। अतः सुलतानपुर से सैय्यद शासकों का कोई सम्बन्ध रहा हो, सम्भव ही नहीं है।

बहलोल लोदी (1451–1489) –

लोदी शासकों ने अवश्य ही प्रयास किया। परिणाम स्परूप बहलोल लोदी 1479 ई. में शर्की राज्य पर विजय प्राप्त करने में सफल रहा। उसने अपने पुत्र बारबक को जौनपुर का गर्वनर नियुक्त किया। परन्तु बहलोल लोदी को जौनपुर पर अधिकार करने में अत्यन्त कठिन प्रयास करना पड़ा जिसका विवरण निम्नलिखित है –

बहलोल लोदी जौनपुर को दिल्ली राज्य में मिलाने का बहुत इच्छुक था। शर्की वंश के महमूद शाह ने सैय्यद वंश के अन्तिम सुलतान अलाऊद्दीन की पुत्री से विवाह कर लिया था। वह घमण्डी स्त्री अपने पिता का बदला लेना चाहती थी, इसलिए उसने अपने पति को दिल्ली पर आक्रमण करने तथा वहाँ से बहलोल को मार भगाने

के लिए उत्तेजित किया। इसके अतिरिक्त बहलोल लोदी के दरबार के कुछ विद्रोही अमीरों ने भी महमूद शाह को आमन्त्रित किया। इन्ही कारणों से सुल्तान महमूद शाह शर्की ने एक लाख सत्तर हजार अश्वारोही तथा एक हजार चार सौ हाथियों की विशाल सेना लेकर दिल्ली पर आक्रमण किया।[139] बहलोल उस समय सरहिन्द के अभियान पर था। किन्तु आक्रमणकारी के आगमन को सुनकर वह वापस लौट आया।

मार्ग में शर्की सेना ने फतेह खाँ के नेतृत्व में बहलोल लोदी को चुनौती की। युद्धारम्भ के पूर्व ही बहलोल लोदी के चचरे भाई (कुतुब खाँ) ने शर्की के सेनापति दरियाँ खाँ लोदी को फोड़ लिया। परिणाम स्वरूप फतेह खाँ की शक्ति कम हो गयी। फतेह खाँ पराजित हुआ और मारा गया। महमूद शर्की को अपनी विजय यात्रा त्याग कर वापस लौटना पड़ा।

कुछ समय बाद महमूद शाह शर्की को उसकी रानी ने युद्ध के लिए पुनः भड़काया। शर्की शासक इटावा की ओर बढ़ा। इसे रोकने के लिए बहलोल शाह ने एक सेना भेजी। अन्ततः दोनों पक्षों में सन्धि हो गयी। परन्तु सन्धि की शर्तो को दोनों में से किसी ने पूरा नहीं किया। बहलोल ने रामशाबाद (जो संधि में उसे मिला था) पर अधिकार कर लिया। जौनपुर के सुलतान ने इसका विरोध किया। अतः संघर्ष अनिवार्य हो गया।[140]

पुनः युद्ध आरम्भ हुआ। युद्ध में शर्की सेनाओं ने कुतुब खाँ को बन्दी बना लिया। परन्तु दूसरे दिन ही महमूद शाह शर्की की मृत्यु हो गयी और बहलोल लोदी ने जौनपुर से पुनः सन्धि कर लिया।[141] किन्तु इस शर्त में कुतुब खाँ को वापस करने की शर्त नहीं थी। अतः दिल्ली सुल्तान ने जौनपुर पर पुनः आक्रमण किया।

---

139. मजूमदार एवं पुंसालकर, वही, भाग - 4, पृष्ट - 188-190

140. वही

141. वही

दिल्ली सेना ने शर्की राजवंश के एक सदस्य को गिरफ्तार कर लिया। इसी बीच जौनपुर में क्रान्ति हुयी। हुसैन शाह ने जौनपुर के सिंहासन को हस्तगत कर लिया। परिणाम स्परूप जौनपुर एवं दिल्ली में पुनः सन्धि हो गयी। कुतुब खाँ एवं जलाल खाँ छोड़ दिये गये।[142]

शीघ्र ही सन्धि पुनः भंग हो गयी, क्योंकि हुसैनशाह ने दिल्ली पर आक्रमण कर दिया एवं इटावा को अपने राज्य में मिला लिया। सुल्तान बहलोल इस समय मुल्तान आभियान पर था। उसने यह अभियान बीच में छोड़ दिया। वापस आकर हुसैनशाह से सन्धि कर लिया।

परन्तु यह सन्धि भी अधिक समय तक स्थाई न रह सकी। हुसैन शाह ने पुनः दिल्ली पर आक्रमण कर दिया एवं वदायूँ का कुछ भाग हस्तागत कर लिया। अन्ततः दोनों के मध्य संधि हो गयी एवं गंगा नदी दोनों राज्य की सीमा मान ली गयी।

यह संधि भी टिकाऊ न रही, जैसे ही शर्की सेना जौनपुर वापस लौटी, बहलोल लोदी ने उस पर आक्रमण कर दिया। शर्की सेना के सामान एवं कोष को छीन लिया। हुसैन की बेगम मलिकेजहां भी बहलोल के कब्जे में आ गयी। परन्तु यहाँ बहलोल ने बीरोचित भावना का परिचय दिया। उसने बेगम को सम्मानपूर्व जौनपुर वापस भेज दिया।

पुनः दोनों पक्षों में समझौता हो गया। किन्तु अब भी हुसैन शाह ने समझौते का उलंघन किया। हुसैन शाह पराजित हुआ उसने ग्वालियर के राजा के यहाँ शरण लिया। दोनों ने संयुक्त अभियान दिल्ली के विरूद्ध किया। परन्तु बहलोल ने दोनों को भयंकर पराजय दिया।

इस सफलता से बहलोल अत्याधिक उत्साहित हुआ। उसका एवं हुसैन का संघर्ष दीर्घ काल तक चलता रहा। अन्त में हुसैन की निर्णायक पराजय हुयी। बहलोल

---

142. मजूमदार एवं पुसालकर, वही, भाग – 4, पृष्ट – 188–190

लोदी ने अपने पुत्र बारबक शाह को जौनपुर के सिंहासन पर बिठा दिया। जौनपुर दिल्ली सल्तनत का अंग बन गया। यह घटना 1479 ई. को घटित हुयी।[143]

इस प्रकार उथल-पुथल भरे इतिहास का अंत हुआ। शर्की साम्राज्य का समाप्त हो गया। जौनपुर सहित सुलतानपुर भी दिल्ली साम्राज्य का अंग बन गया। ध्यातव्य है कि - सुलतानपुर की स्थानीय प्रशासनिक ईकाई अवध के स्थान जौनपुर हो चुकी थी।

बहलोल लोदी के शासन के आरम्भिक दिनों में अमेठी पर राजा सुजान सिंह शासन कर रहे थे तत्पश्चात् राजा श्रीराम सिंह (1454 से 1472 ई०) ने शासन किया और कुछ समय के लिए राजा बसन्त शाह (1472 से 1515 ई०) ने भी शासन किया।

सिकन्दर लोदी –

बहलोल लोदी की मृत्यु के उपरान्त सिकन्दर लोदी 1489 ई. में गद्दी पर बैठा तथा 1517 ई. तक शासन किया। इस बीच उसे सल्तनत के अनेक भागों में हुए विद्रोहों का दमन किया। जौनपुर (सुलतानपुर भी की प्रशासनिक ईकाई) के विद्रोहों का दमन भी इसमें सम्मिलित था। जिसका विवरण निम्नलिखित है -

जौनपुर बहलोल लोदी के शासन काल में ही बारवक शाह के नेतृत्व में स्वतन्त्र राज्य की भाँति स्थापित हो गया था। सिकन्दर लोदी भी इस द्वैध संकट से भली भाँति परिचित था।

परन्तु वह इस तथ्य से भी भली भाँति परिचित था कि दिल्ली की गद्दी का असली उत्तराधिकारी उसका बड़ा भाई बारबक शाह ही था। अतः वह बारबक शाह को समझा कर दिल्ली की सत्ता के अधीन लाना चाहता था। परिणाम स्वरूप

---

143. नीविल, वही, पृष्ट - 151

बारबक शाह के पास सिकन्दर लोदी ने दूत भेजा, परन्तु वार्ता विफल रही।

इसी बीच जौनपुर के पूर्व शासक हुसैन शाह ने बारबक शाह को भड़का कर विद्रोह के लिए तैयार कर दिया। बारबक शाह अपनी सेना के साथ कन्नौज तक आ गया था। यहाँ पर सिकन्दर लोदी ने उसे पराजित किया।[144] बारबक शाह बदायूँ भाग गया। सिकन्दर लोदी ने यहाँ घेरा डालकर उसे आत्मसमर्पण के लिए बाध्य किया।

विजय के बाद भी सिकन्दर लोदी इतना उदार निकला कि उसने पुनः बारबक शाह को जौनपुर का शासन (नाममात्र) का बना दिया।[145] परन्तु सम्पूर्ण राज्य को जागीरों में विभक्त कर अपने अनुयायियों में वितरित कर दिया। यही–नहीं दरबार एवं महल में अपना गुप्तचर भी नियुक्त कर दिया।

हुसैन शाह ने अब यहाँ के जमीदारों को भड़का कर विद्रोह करवा दिया स्थिति इतनी बेकाबू हो गयी कि – बारबक शाह का जौनपुर से पलायन कर लखनऊ के निकट दरियाबाद में शरण लेनी पड़ी।[146] सिकन्दर ने अत्यन्त, तत्परता से भाग लिया, विद्रोह को दबाकर पुनः बारबक शाह का जौनपुर का अधीनस्थ शासक नियुक्त कर दिया।[147]

परन्तु बारबक अत्यन्त अयोग्य एवं निकम्मा सुल्तान (अधीनस्थ) सिद्ध हुआ। अतः सिकन्दर लोदी ने इसे कारागार में डाल दिया तथा जौनपुर को अपने राज्य के सूबे के रूप में शामिल कर अपना सूबेदार नियुक्त किया।[148] नये सूबेदार का नाम **हैबतखाँ** था।

---

144. *नीविल, वही, पृष्ट – 151*
145. *वही*
146. *वही*
147. *वही*
148. *वही*

राजा बसन्त सिंह इस समय अमेठी के शासक थे। बिड़ार देव बैसवारा के राजा थे। उन्होंने कालान्तर में जौनपुर पलायन किया। सुलतानपुर के अन्तर्गत गुन्नौर नामक स्थान पर भर सैनिकों से राय साथन के किले में युद्ध भी हुआ। इस युद्ध में राय बखण्ड सपत्नीक मारे गये, परन्तु राय बिड़ार सुरक्षित बच गये और जौनपुर पहुँचने में सफलता प्राप्त की, जहाँ उन्हें मंसबदारी प्रदान की गई।

इब्राहीम लोदी –

सिकन्दर लोदी की मृत्यु के उपरान्त इब्राहीम लोदी 21/11/1517 ई. को अमीरों के सहयोग से गद्दी पर बैठा तथा 1526 ई. तक शासन किया। परन्तु इब्राहीम के सिंहासनारोहड़ के पूर्व सभी महत्वपूर्ण अमीर आगरा में ही थे। उन्होंने एक अनोखा निर्णय लेते हुए राज्य के विभाजन को समर्थन किया। तबकाते नासिरी के अनुसार – "इब्राहीम दिल्ली के राज सिंहासन पर आरुढ़ हो और जौनपुर की सीमा तक के सारे प्रदेश पर शासन करें। जौनपुर के राज सिंहासन पर शाहजादा **जलालखाँ** आरुढ़ होकर राज्य करें और उस तरफ के सारे प्रदेश उसके अधीन रहे।[149]

सम्भवतः अमीरों का आशय दोनों शहजादों को संतुष्ट करना था। परन्तु सरदारों को शायद यह मालूम नहीं था कि जिस प्रकार एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती है, उसी प्रकार एक साथ मिलकर दो राजा राज्य नहीं कर सकते है।[150]

यद्यपि शाहजादा जलाल को यह निर्णय रुचिकर लगा और उसने अनुमति दे दी तथापि इब्राहीम ने इसे भयवश स्वीकार किया। शाहजादा जलालखाँ अपने समर्थकों के साथ जौनपुर प्रस्थान कर गया और इधर इब्राहीम का राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ।

---

149. *तबकात-ए-नासिरी (ख्वाजानिजामुद्दीन अहमद), एस. ए. ए. रिजवी, तैमूर कालीन भारत, भाग – 1, पृष्ट – 232*

150. *प्रताप सिंह, मध्यकालीन भारत, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, 1999, पृष्ट–439*

इसी समय घटना क्रम तेजी से बदला, रापरी के हाकिम खानेजहाँ ने सुल्तान से इस घटना की कटु शब्दों में निन्दा किया। परिणाम स्वरूप अमीरों को भूल का एहशास हुआ। उन्होंने जलालखाँ को वापस बुला भेजा। फरमान लेकर हैबत खाँ जौनपुर गया।[151] परन्तु इसे जलाल खाँ नहीं भाया। बाद में और भी सम्मानित व्यक्ति जलाल खाँ को बुलाने के लिए भेजे गये। परन्तु उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।[152]

अब इब्राहीम ने अमीरों एवं सूबेदारों को जो जौनपुर क्षेत्र के थे, फरमान भेज कर जलालखाँ की अधीनता न मानने का आदेश दिया। 29 दिसम्बर 1517 को अनेक सूबेदार, अमीरों एवं जन सामान्य की उपस्थिति में इब्राहीम लोदी ने अपना दूसरा राज्याभिषेक करवाया तत्पश्चात जलाल खाँ का अभियान तेज किया। इस समय अवध का हाकिम **सईद खाँ** था। जिस पर जलाल खाँ ने आक्रमण किया वह भाग कर लखनऊ चला गया। लखनऊ से ही उसने इब्राहीम को हमले की सूचना भेज दिया।

इब्राहीम के दबाब से जलालखाँ कालपी भाग गया। परन्तु वह अधिक दिनों तक बच नहीं सका। अन्ततः वह बन्दी अवस्था में मारा गया। शीघ्र ही 1526 ई. में पानीपत के युद्ध में इब्राहीम लोदी भी बाबर के साथ युद्ध में मारा गया।

निष्कर्षता यह कहा जा सकता है कि – लोदी वंश के अवसान के पूर्व ही शर्की साम्राज्य, अवध आदि दिल्ली सत्ता के अधीन आ चुका था।

इब्राहिम लोदी के शासन काल में अमेठी पर राजा जयचन्द सिंह शासन कर रहे थे। इनके शासन काल में सल्तनत काल का अन्त होकर मुगलकाल का अभ्युद्य हुआ। बाबर के अयोध्या अभियान के समय इन्होनें मुगल सेना का क्षणिक प्रतिरोध भी किया परन्तु अपनी स्थिति कमजोर देखकर इन्होंने मुगलों की अधीनता में

---

151. प्रताप सिंह, मध्यकालीन भारत, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, 1999, पृष्ट–439

152. वही

शासन करना स्वीकार किया।

(च) मुगल शासन एवं सुलतानपुर–

मुगल काल में बाबर के बाद से लेकर औरंगजेब तक के शासकों ने भारत पर शासन किया। इनकी सुलतानपुर के प्रतिनिधि निम्नलिखित है–

बाबर का शासन एवं सुल्तानपुर –

बाबर ने पानीपत के मैदान में इब्राहीम लोदी को परास्त कर, भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डाली।[153] ऐसी परिस्थिति में अयोध्या एवं आस–पास का भू–भाग (सुलतानपुर आदि) भी मुगल साम्राज्य का अंग बन गया।

बाबर ने पानीपत, खानवा एवं घाघरा के समान अनेक युद्धों में विजय प्राप्त किया। इसने अपने शासल–काल में अयोध्या का सूबेदार/गर्वनर **शेख बयाजिद** नियुक्त किया था।[154] यह पानीपत युद्ध के बाद बाबर से मिला था, इसे बाबर ने अवध का प्रदेश एवं कुछ धनराशि प्रदान किया था।[155] ऐसा प्रतीत होता है कि – **शेख बयारीज की गर्वनरी के पूर्व ही बाबर के सेनापति मीरबाँकी द्वारा अयोध्या में श्रीरामलला के मन्दिर[156] ध्वस्त कराया जा चुका था।**

शेख बयाजीद 1528 में ही बाबर का विरोधी हो गया था। इसका दमन करने के लिए **चिततिमूर सुलतान** को अवध भेजा गया। शेख बयारीज पलायन कर गाजीपुर चला गया। तत्पश्चात स्वयं बाबर भी कुछ दिन अवध में रूका था।[157]

---

153. *ए. एफ. रसब्रुक विलियम – "एन एम्पायर विल्डर आफ सिक्सतीथ सेंचुरी" दिल्ली, 1978, पृष्ट – 34*
154. *ए. एस. बैवरीज, "द बाबर नामा इन इंगलिश, भाग – 2, 1992, पृष्ट–527*
155. *वही*
156. *श्रीराम शर्मा, मुगल शासकों की धार्मिक नीति, 1967, पृष्ट – 11*
157. *बेबरीज, वही, पृष्ट – 527*

आइने अकबरी में अवध प्रान्त को पाँच सरकारों में विभक्त बतलाया गया। सम्पूर्ण अवध में 133[158] थे। अवध सरकार के अन्तर्गत 21 महल थे।[159]

अवध के अन्तर्गत अन्य सरकारों के महल की संख्या गोरखपुर में 24, बहराइच में 11, खैराबाद में 22 तथा लखनऊ में 55 थी।[160]

ध्यातव्य है कि यह स्थिति अकबर के समय की है। अकबर के पूर्व की स्थिति अवश्य ही कुछ भिन्न रही होगी, परन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि – भौगोलिक परिस्थिति के अनुसार गंगा एवं सरयू के मध्य का भूभाग (सुलतानपुर) अवध एवं जौनपुर का ही अंग रहा होगा।

पूर्वोद्धृत है कि बाबर के द्वारा मुगल सत्ता की स्थापना के समय सुलतानपुर के अमेठी क्षेत्र पर राजा जयचन्द सिंह का अधिकार था। बैसवारा इस समय राय कुंवर के द्वारा शासित हो रहा था। राय कुंवर 1526 ई० में राणासांगा के साथ युद्ध करते रहे तथा उन्होंने अपने आँखों के सामने लोदी वंश का पराभव भी देखा था।

हुमायूँ का शासन एवं सुलतानपुर –

हुमायूँ को उत्तराधिकार में अवध प्रान्त एवं जौनपुर प्रान्त प्राप्त हुआ था, परन्तु शेरशाह के अभ्युदय के कारण उसका अधिकार उक्त भूभाग से समाप्त हो गया। हुमायूँ के पुनः सिंहासनासीन होने पर यह भूभाग पुनः हुमायूँ को प्राप्त हुआ या नही कहना कठिन है। परन्तु यह तो सत्य है कि अकबर को इस क्षेत्र को विजित करने के लिए किसी भी युद्ध का सहयोग नहीं लेना पड़ा। अतः यह कहा जा सकता है कि – शेरशाह के साथ ही उसके वंश का प्रभुत्व भी समाप्त हो गया। सम्भवता हुमायूँ अपने जीवन काल में ही इस भूभाग पर अधिकार करने में सफल हो गया था।

---

158. *अवध यूनिवर्सिटीज रिसर्च पत्रिका, फैजाबाद, 1983, पृष्ट – 98*

159. *वही*

160. *वही*

जौनपुर पर हुमायूँ का अधिकार 1532 ई. में हुआ, उसने **जुनैद बरलास** का यहाँ की **शासन व्यवस्था का दायित्व सौंपा।**[161]

हुमायूँ को भारत का साम्राज्य 1530 ई० को प्राप्त हुआ तथा उसने अपने शासन के प्रथम दो वर्षों तक जौनपुर समेत सुलतानपुर पर भी शासन किया। इस समय अमेठी के शासक राजा जयचन्द सिंह थे।

शेरशाह का शासन एवं सुलतानपुर –

शेरशाह का जन्म 1472 ई. में हुआ था।[162] इसके पिता का नाम हसन खाँ था। परिवारिक कलह के कारण वह सिकन्दर लोदी के अधीनस्थ जौनपुर आ गया। यही पर उसने राजनीति की शिक्षा ग्रहण किया। शीघ्र ही वह सम्पूर्ण जौनपुर में प्रसिद्ध हो गया।[163] तद्न्तर उसने अपने पिता की जागीर का संचालन किया। बाद में बिहार के स्थानीय शासक के यहाँ नौकरी किया।

1527 ई. में इसने बाबर के यहाँ नौकरी कर लिया।[164] यहाँ पर उसने सैन्य संगठन एवं प्रशासन का कार्य सीखा। बाबर ने इसके कार्यों से खुश होकर उसके पिता की जागीर का एक अंश एवं कुछ भूमि प्रदान किया। तद्न्तर वह मुगलों की नौकरी छोड़कर दक्षिण बिहार के मुहम्मदशाह के दरबार में नौकरी किया। बाद में उसने उत्तराधिकारी के अभाव में हुजरते आला[165] की उपाधि से शासन पर अधिकार कर लिया।

---

161. *डॉ. राम प्रसाद त्रिपाठी, मुगल साम्राज्य का उत्थान एवं पतन, पृष्ट – 58*
162. *कानूनगो, शेरशाह और उसका समय, पृष्ट – 260*
163. *वही, 261*
164. *जनमोर्चा, 15 अक्टूबर 2002, पृष्ट – 7*
165. *आर. वर्न, द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग – 4, दिल्ली, 1957, पृष्ट–51*

1532 ई. में इसने हुमायूँ से चुनार की संधि किया। 1539 ई. में इसने चौसा के युद्ध में हुमायूँ को पराजित किया। **सम्पूर्ण उत्तरी भारत पर शेरशाह का अधिकार हो गया।** इसी के साथ ही अवध, जौनपुर इलाहाबाद आदि सब शेरशाह के अधीन हो गये।

1539-40 ई. हुमायूँ को पराजित कर शेरशाह ने जब भारत की गद्दी को प्राप्त किया, उस समय सुलतानपुर पर वत्सगोत्रिय वरियार शाह के वंशजों का शासन था। नरवरगढ़ (सम्प्रति हसनपुर) पर तिलोकचन्द्र शासन कर रहा था। इसने बाबर के समय में ही इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। अब इसका नाम **तातार खाँ** था। शेरशाह से भी इसका सम्पर्क था। इसी के भू-भाग पर **शेरशाह के पुत्र इस्लाम शाह** ने अर्जुनपुर में एक गढ़ी[166] का निर्माण करवाया था।

शेरशाह सूरी ने 1539-40 ई. में सुलतानपुर जनपद में हुमायूँ को पराजित किया था।[167] इस समय हसन खाँ (वाजिद खाँ का पुत्र) शेरशाह के समर्थन में आगे आया। इसे **"बादशाह दुम मनसदी आला"** की उपाधि प्रदान की गयी। यह राजा की उपाधि प्रदान करने की सामर्थ्य रखता था।

हसन खाँ ने ग्राम हसनपुर की नींव डाली, यही पर उसकी मृत्यु हुयी, यही पर वह दफन कर दिया गया। **कादीपुर के समीप के शाहगढ़ किले** का निर्माण भी शेरशाह सूरी ने करवाया था।[168] हसनपुर के समीप ही एक **इमामगंज नामक बाजार आज भी है।** यह हसनखाँ के कब्र के समीप ही है।[169]

शेरशाह सूरी के 22 मई 1545 ई. को दिवंगत होने के उपरान्त 26 मई 1545

---

166. नेविल, वही, 88-89

167. वही

158. आर वर्न, वही, 55-58

169. फुहर्र, वही, पृष्ट - 328

को उसका पुत्र इस्लाम शाह उत्तराधिकारी हुआ।[170] इसने परगना चाँदा (वर्तमान में सुलतानपुर का अंग) के दक्षिण पश्चिम में **अर्जुनपुर गाँव** में एक किले का निर्माण करवाया। ऐसी जनश्रुति है कि – जहाँ पर इस किले का निर्माण हुआ था। उसका तत्कालीन नाम मकरकोला था। यहाँ पर आज भी मकरकोला नामक एक गाँव अवस्थित है।[171]

रायकुंवर जब राजा बने तो राज्य छिन्न–भिन्न हो गया था। लोग भयभीत हो चुके थे। लगभग 10 वर्षो के पश्चात् वे इसे फिर से आबाद व भयमुक्त कर पाये सन् 1488 ई० में बहलोल लोदी मर गया और शाह हुसेन ने बंगाल से वापस आकर जौनपुर पर अधिकार कर लिया। सन् 1488 ई० में सिकन्दर लोदी ने जौनपुर पर अधिकार करने के लिए पुनः एक युद्ध किया। इस युद्ध में राय कुंवर, शाह हुसेन से मिल गये थे। शाह हुसेन इस युद्ध में मारे गये तथा राय कुंवर अपने परिवार के साथ राजस्थान चले गये। तत्कालीन राना ने एक राजा के समान उनका स्वागत किया तथा उन्हें भी जागीर देकर अपने यहां ससम्मान स्थान दिया। सन् 1527 ई० में रानासांगा के साथ युद्ध करते हुए वे मारे गये। यह युद्ध फतेहपुर सीकरी में हुआ था। वे आजीवन लोदीवंश के विरुद्ध संघर्ष करते रहे। सन् 1526 ई० में अपने जीवन काल में ही उन्होंने उस राज्य का अवसान भी देख लिया था।[172]

सम्भवतः अकबर के सिंहासनारोहड़ के पूर्व हुमायूँ अपने द्वितीय शासनकाल में इस पर पूर्ण रूपेण अधिकार नहीं कर सका था। परन्तु यह निश्चित है कि अकबर का सुलतानपुर पर पूर्ण अधिपत्य था।

---

170. *ईश्वरी प्रसाद, मुगल इम्पायर, पृष्ट – 195*

171. *डॉ. बी. एन. लुनिया, अकबर महान, 197, तबकात–ए–अकबरी, भाग – 2, 421*

172. *हवलदार रन बहादुर सिंह, भाले सुल्तानपुर इतिहास एवं सजरा, उमरा, सुल्तानपुर, शक सम्वत् 1902 पृष्ट 17*

शेरशाह ने हुमायूँ को पराजित कर भारत की गद्दी को प्राप्त किया। इसकी मृत्यु 1545 ई० को हुई। इस समय राजा जयचन्द सिंह तथा राजा पाल्हन देव अमेठी के शासक थे।

अकबर का शासन एवं सुलतानपुर –

हुमायूँ के मृत्योपरान्त **14 फरवरी 1556 ई. को अकबर का राज्याभिषेक हुआ।** अकबर ने राजकीय पद वितरण में प्रायः अपने पिता के समय नियुक्त पदाधिकारियों को कायम रखा। इस आरम्भ के दिनों में यह बैरम खाँ के नेतृत्व में शासन संचालन करता रहा, तथा अपने साम्राज्य की स्थिति को सुदृण करता रहा। इस कार्य के लिए उसे विभिन्न विद्रोहों का दमन करना पड़ा। राज्य के मुगल अधिकारियों को (जो विरोधी रुख रखते थे) उनकी औकात बतलाया। शीघ्र ही वह बैरम खाँ के प्रभाव से मुक्त हुआ। तदन्तर अकबर कुछ काल के लिए हरम के प्रभाव में रहा, 1562 में वह स्वतन्त्र सम्राट की भाँति कार्यारम्भ किया।

अकबर ने अपने शासन काल में अनेक विजयें किया तथा मुगल साम्राज्य को एक विस्तृत स्वरूप प्रदान किया। परन्तु सुलतानपुर के सन्दर्भ में अकबर की सर्वाधिक महत्वपूर्ण सफलता हेमू की पराजय थी। हेमू की पराजय के साथ ही जौनपुर/सुलतानपुर पर अन्तिम रूप से अकबर का अधिकार हो गया। अकबर दार्शनिक एवं उदार शासक था। उसने सर्वधर्म सद्भाव स्थापित करने का प्रयास किया। दीन-ए-इलाही[173] धर्म चलाया, इबाबत खाना बनवाया[174], विभिन्न धर्माचार्यों से सत्संग[175] किया, हिन्दू व्यवहारों को मनाने की छूट दे दी[176] अपनी राजपूत पत्नियों को भी वैयक्तिक धर्म

---

173. अबुल फजल, अकबर नामा, अनु. (मथुरा लाल शर्मा) पृष्ट – 412–73

174. वही

175. डॉ. प्रताप सिंह, वही

176. श्री राम शर्मा, भारम में मुस्लिम शासन का इतिहास, 32

मनाने की छूट थी।[177] **होली[178], दिवाली[179] एवं दशहरा[180]** के उत्सव में वह स्वयं भाग लेता था। नौरोज का त्योहार वह बड़े धूम-धाम से मनाता था।

अकबर ने 1556 ई० से शासन आरम्भ किया इनके शासनकाल में राजा श्रीराम देव सिंह, राज दलपत सिंह शाह तथा राजा विक्रमशाह ने अमेठी पर शासन किया।

अकबर के शासन काल में सुलतानपुर के महल एवं परगने –

अवध एवं जौनपुर तो अन्तिम रूप से हेमू की पराजय के साथ अकबर के साम्राज्य का अंग बन गया था। परन्तु अभी इस भू-भाग का प्रबन्धन शेष था। 1602 ई. में अकबर के साम्राज्य में कुल 15 सूबे थे,[181] जिनका नामोल्लेख निम्नलिखित है-

1. आगरा
2. इलाहाबाद
3. अवध
4. देहली
5. लाहौर
6. मुल्तान
7. काबुल
8. अजमेर
9. बंगाल

---

177. श्री राम शर्मा, भारम में मुस्लिम शासन का इतिहास, 32

178. वही

179. वही

180. डॉ. प्रताप सिंह, मुगल कालीन भारत, पृष्ट – 511; डॉ. ईश्वरी प्रसाद मुगल साम्राज्य का उत्थान एवं पतन, पृष्ट – 208

181. डॉ. ईश्वरी प्रसाद, वही, पृष्ट – 206

10. बिहार

11. अहमदाबाद

12. मालवा

13. बरार

14. खानदेश

15. अहमद नगर

उपर्युक्त सूबों में सिपहसलार (सूबेदार), दिवान (वित्त अधिकारी), बलसी (खजांची), सद्र (दानधर्म विभाग), काजी (न्यायाधीन), कोतवाल (पुलिस अधिकारी) तथा मीर बहर (जलमार्गों का प्रधान अधिकारी) आदि पदाधिकारी थे।[182]

अकबर के शासन काल में सुलतानपुर का महल या परगना अवध का अंग बना।[183] परन्तु वर्तमान सुलतानपुर पूर्णरूपेण न तो अवध सूबे में सम्मिलित था, न तो इलाहाबाद में ही।[184]

वर्तमान सुलतानपुर का पूर्वी भाग तथा अधिकाधिक दक्षिणी भाग तथा थोड़ा पश्चिमी भाग अवध का अंग नहीं था। इसमें से कुछ जौनपुर सरकार तथा कुछ मानिकपुर सरकार (इलाहाबाद सूबे) के अधीन था। शेष सुलतानपुर सरकार का भाग अवध में सम्मिलित था।[185]

इस प्रकार प्राचीन सुलतानपुर वर्तमान सुलतानपुर से भिन्न स्वरूप रखता था। उक्त भूभाग अवध एवं इलाहाबाद सूबे का अंग था। तत्कालीन सुलतानपुर का

---

182. अबुल फजल, आईन-ए-अकबरी, भाग-2, अंग्रेजी अनुवाद, एच. एस. जैरट, द्वितीय संस्करण, कलकत्ता, 1949, पृष्ट -184-85

183. वही, पृष्ट - 169, 174-176

184. वही

185. सुलतानपुर गजेटियर, पृष्ट - 30

महल वर्तमान मीरानपुर से समीकृत किया जा सकता है।[186]

सुलतानपुर में एक किला था, जिसमें दो सौ पैदल सेना, 7 हजार घुड़सवार सेना और आठ हाथी थे।[187] अकबर के शासन प्रबन्ध के पूर्व इस भूभाग एवं किले पर बछगोती[188] राजपूतों के नियन्त्रण में थे।[189]

अबुल फजल ने आईन-ए-अकबरी में बेलहरी महल का उल्लेख किया है।[190] इसका समीकरण वर्तमान बरौसा परगने से किया जा सकता है। बेलहरी में एक ईट निर्मित किला था। इसमें 50 घुड़सवार एवं 2000 पैदल सेना रहती थी। यह महल भी बछगोतियों के कब्जे में था।[191] ऐसा प्रतीत होता है कि - बरौसा का एक बड़ा हिस्सा सुलतानपुर महल का अंग था।

1580-81 ई. में यहाँ का स्थानीय प्रशासन फरानखूडी के आधिपत्य में था। इसके बगावत के परिणाम 22 जनवरी 1581 ई. को मुगल कमाण्डर शाहबाज खाँ ने फरानखूडी को बरौसा में पराजित किया।[192]

अकबर के समय में जगदीशपुर (परगना) में किसनी एवं सुलतानपुर थे, जो 1750 ई. में अलग हुए।[193] इसका नाम पुराने शहर किसनी एवं सत्थिन या सातनपुर

---

186. *अबुल फजल, वही, 185*
187. *अमेठी के राजवंश को बछगोती राजवंश भी कहा जाता था।*
188. *सुलतानपुर गजेटियर, पृष्ट - 31*
189. *अबुल फजल, वही, भाग - 1, वही, 438*
190. *वही*
191. *वही*
192. *सुलतानपुर गजेटियर, पृष्ट - 31*
193. *वही*

पर आधारित था। यह गोमती नदी के दाहिने पार्श्व पर अवस्थित था।[194] इन दोनों स्थानों पर ईट के किले बने थे।[195] इस किले पर राजपूतों का कब्जा था। यहाँ 1500 घुड़सवार एवं तीन हाथी थे।[196] सुलतानपुर किले में 300 पैदल, 4 हजार घुड़सवार सैनिक थे। इस पर वैश्य, बछगोती एवं जोशी का कब्जा था।[197]

अवध का एक परगना जो वर्तमान सुलतानपुर का अंग है, वह भाना भदाँवा था।[198] यह आसल का यह छोटा सा क्षेत्र था। इस महल में 500 घुड़सवार थे।

लखनऊ सरकार के दो महल अमेठी एवं इसौली वर्तमान सुलतानपुर के अंग थे। इसौली महल में सम्भवतः दो परगने थे। इसौनी में गोमती के किनारे एक किला था। इसमें 50 घुड़सवार एवं दो हजार पैदल सेना थी। इस महल पर बछगोती राजपूतों का कब्जा था।[199]

अमेठी या गढ़ अमेठी इसी संज्ञा से अस्तित्व में था।[200] अमेठी महल के किले में 3 सौ घुड़सवार, 2 हजार पैदल सैनिक तथा 20 हाथी थे।[201]

गौरा, जामों परगना (आधुनिक) पहले (अकबर के शासन काल में) अकबरी महल था, जो मानिकपुर सरकार (सरकार) का हिस्सा था।[202]

---

194. अबुल फजल, वही, भाग – 1, पृष्ट – 185

195. वही

196. सुलतानपुर गजेटियर, पृष्ट – 31

197. वही

198. वही

199. अबुल फजल, पृष्ट – 176

200. वही

201. अबुल फजल, वही, भाग – 2, पृष्ट – 176

202. सुलतानपुर गजेटियर, पृष्ट – 32

अकबर के समय जायस के कई छोटे-छोटे भाग कर दिये गये थे। मानिक पुर का एक हिस्सा (जो अब सुल्तानपुर जिले में है) कथोड़ का एक परगना था।[203] यह मीरानपुर के दक्षिण में था। कथोड़ का कुछ भाग बछगोतियों के कब्जे में था।[204] इस महल में सौ घुड़सवार, 2 हजार पैदल सैनिक थे।[205]

जौनपुर सरकार के शेष भाग चाँदा एवं अल्देमऊ (वर्तमान में सुलतानपुर में है) इलाहाबाद सूबे के मानिकापुर सरकार का अंग था।[206] चाँदा एवं अल्देमऊ के क्षेत्र बछगोतियों के कब्जे में थे।[207] अल्देमऊ (महल) परगना में 50 घुड़सवार एवं 300 सैनिक थे।[208] चाँदा में 200 घुड़सवार 300 पैदल सैनिक थे।[209]

उपर्युक्त विवरणों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि – अकबर के शासनकाल में वर्तमान सुलतानपुर जिला कई परगने (अकबर कालीन) एवं महल में विभक्त था। ध्यातव्य है कि उस समय सुलतानपुर सरकार या महल एक छोटा भूभाग था। वर्तमान सुलतानपुर, इलाहाबाद एवं अवध क्षेत्र का अंग था। मुख्य रूप से जौनपुर, मानिकपुर एवं एवं सुलतानपुर सरकार में सम्पूर्ण सुलतानपुर समायोजित था।

जहाँगीर का शासन एवं सुलतानपुर –

यह ध्यातव्य है कि – जहाँगीर ने अकबर के शासन व्यवस्था में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया था। यह भी उल्लेखनीय है कि – जहाँगीर के शासन काल में

---

203. वही

204. अबुल फजल, आईन-ए-अकबरी, वही

205. वही

206. सुलतानपुर गजेटियर, पृष्ट – 32

207. वही

208. आइन-ए- अकबरी, वही, भाग – 1, 576

209. सुलतानपुर गजेटियर, पृष्ट – 39

सम्भतः यहाँ कोई विप्लव या विद्रोह नहीं हुआ था। शायद इसीलिए इस भूभाग का तत्कालीन उल्लेख नहीं प्राप्त होता है।

शाहजहाँ का शासन एवं सुलतानपुर –

शाहजहाँ, जहाँगीर के उपरान्त "सल्तनते मुगलियां" के सिंहासन पर आरुढ़ हुआ। शाहजहाँ ने भी अकबर की व्यवस्था में परिवर्तन किया हो! ऐसा साक्ष्य नहीं प्राप्त होता है। सुलतानपुर गजेटियर में इतना अवश्य उल्लिखित है कि – शाहजहाँ के राज्यारोहड़ के समय नूरजहाँ का भतीजा '**अहमद वेग**' जायस एवं अमेठी परगने का जागीरदार था अहमद वेग की मृत्यु यही पर हुयी थी।[210]

औरंगजेब का शासन एवं सुलतानपुर –

औरंगजेब मुगल साम्राज्य का अन्तिम शक्तिशाली शासक था। इसने 1650 ई. से 1707 ई. तक शासन किया। इस भी अकबर कालीन व्यवस्था अस्तित्व में थी इतना उल्लेख करना आवश्यक है कि इसके काल में हिन्दुओं का उत्पीड़न सर्वाधिक हुआ। बनारस का विश्वनाथ मन्दिर औरंगजेब के शासन काल में ही तोड़ा गया। समीपवर्ती क्षेत्र होने के कारण सुलतानपुर की अवश्य ही प्रभावित रहा होगा। यह उल्लेखनीय है कि – वर्तमान दोस्तपुर ब्लाक, अल्देमऊ आदि क्षेत्रों में क्षत्रियों ने बड़ी संख्या में धर्म परिवर्तन कर खानजादा मुस्लिम के रूप में इस्लाम धर्म स्वीकार किया।

ऐसी मान्यता है कि औरंगजेब ने अपने शासन काल में जजिया कर पुनः लागू कर दिया तथा हिन्दुओं को यह व्यवस्था दी कि मुस्लिम धर्म स्वीकारने वाले हिन्दू इस कर से मुक्त रहेंगें। इसके लिए उसने सम्पूर्ण साम्राज्य में प्याज वितरित कराया। चूँकि प्याज सामिष खाद्य (म्लेच्छ भोजन) माना जाता था। अतः इसका प्रयोग जिसने भी किया, उसे पथ भ्रष्ट मानकर हिन्दू समाज से बहिष्कृत कर दिया

---

210. दोस्तपुर ब्लाक के निकट 105 वर्षीय हाजी शाह मुहम्मद (काजी) जो खानजादा मुसलमान है के साक्षात्कार पर आधारित।

गया। इसमें अधिकांश संख्या क्षत्रियों की थी।

खानजादा नामकरण के पीछे भी एक दंत कथा अस्तित्व में है। यथा – औरंगजेब का ईस्लामी वर्गीकरण खाँन था। इससे व्युत्पन्न क्षत्रिय संभवतः इसीलिए खाँनजादा क्षत्रिय कहलाये।[211]

औरंगजेब अपने शासनकाल में इसौली की दरगाह पर चादर चढ़ाने एक बार आया था।[212]

औरंगजेब के शासनकाल में राजा दिलीप शाह, राजा जयसिंह एवं राजा पहाड़ सिंह ने अमेठी पर शासन किया।

1206 से 1707 ई. के मध्य सुलतानपुर का प्रशासन

मुगल काल में प्रत्येक सूबा कई सरकार में, एक सरकार कई परगना या महल में एक महल कई ग्रामों के समूह में नियोजित था। सल्तनत काल में प्रान्तीय एवं स्थानीय स्वरूप क्या था? स्पष्ट नहीं है। अकबर ने अधिकांश व्यवस्थाएँ शेरशाह के शासन हुमायूँ ने कोई शासन व्यवस्था अपनाई हो, कहा नहीं जा सकता है। अतः यह संभव है कि – मुगलों ने सल्तनत कालीन शासन–व्यवस्था पर अपना महल खड़ा किया हो? उपरोक्त कथन के आलोक में सल्तनत कालीन एवं मुगल कालीन शासन व्यवस्था (प्रान्तीय) का अलग–2 अध्ययन अपेक्षित है –

सल्तनत कालीन प्रान्तीय शासन व्यवस्था

प्रान्तीय प्रशासन –

शासन कार्य के समुचित संचालन के लिए दिल्ली–सल्तनत को कई प्रान्तों में विभाजित किया गया था और उनकी देखरेख का दायित्व प्रान्तीय गवर्नरों को सौंपा

---

211. *सुलतानपुर गजेटियर, वही, 32*

212. *वही*

हुआ था जिन्हें नायब, बली और भुक्ति भी कहा जाता था। दक्षिण में दिल्ली-सल्तनत के विकास के कारण उसे सुविधा के लिए 11 प्रान्तों में बाँटा गया था, किन्तु मुहम्मद बिन तुगलक के काल तक आते-आते यह संख्या बढ़कर 23 हो गयी थी। प्रान्तीय शासन के ढाँचे की देखभाल का कार्य निम्नलिखित अधिकारियों के हाथ में था।

गवर्नर –

प्रान्तों में शान्ति-व्यवस्था स्थापित करने का दायित्व गवर्नरों का था। उनकी नियुक्ति सुल्तान द्वारा की जाती थी और वही उन्हें पदच्युत भी कर सकता था। उसका मुख्य कर्तव्य शान्ति-व्यवस्था स्थापित करना, विद्रोहों को कुचलना, कर वसूल करना और न्यायिक मामलों को हल करना था। उसे प्रान्त की आय-व्यय का लेखा-जोखा केन्द्रीय सरकार को देना पड़ता था। ये गवर्नर केवल सुल्तान के प्रति उत्तरदायी होते थे। युद्ध और संकट के समय पर ये सुल्तान की सैनिक सहायता भी करते थे। अक्सर शक्तिशाली गवर्नर सुल्तान की शाही शक्तियों को हस्तगत करने का प्रयास करते थे क्योंकि इस महत्वपूर्ण पद पर कार्य करते हुए वे अत्यधिक महत्वाकांक्षी हो जाते थे। बंगाल और दक्षिण प्रान्त सदैव दिल्ली-सल्तनत के लिए सरदर्द बना रहा।

गवर्नरों के अधीनस्थ कुछ अन्य अधिकारी भी होते थे और प्रान्तीय व्यवस्था के संचालन में उसकी सहायता किया करते थे। इनकी नियुक्ति गवर्नरों द्वारा ही की जाती थी और उसी की कृपा से ये राजकीय सेवा में बने रहते थे। सुल्तान उस समय तक प्रान्तीय प्रशासन में हस्तक्षेप नहीं करता था जब तक कि कोई विशेष परिस्थिति उत्पन्न नहीं हो जाती थी।

स्थानीय प्रशासन –

प्रशासन की सबसे छोटी इकाई इक्ता थी, किन्तु कुछ समय उपरान्त ये शिकों में विभाजित हो गये थे। प्रत्येक शिक की देखभाल का दायित्व शिकदार पर होता

था। अपने क्षेत्र में शान्ति-व्यवस्था स्थापित करना उसका दायित्व होता था। बाद में, मोरलैण्ड के अनुसार, परगनों का विकास हुआ। आमिल प्रत्येक परगने का महत्वपूर्ण अधिकारी होता था। आमिल के साथ-साथ कानूनगो और कारकून (क्लर्क) भी परगनों में नियुक्त किये जाते थे।

प्रशासन की सबसे छोटी इकाई गाँव थे जिसका प्रशासन गाँव के लोगों के द्वारा या पंचायत के द्वारा किया जाता था और उनके समस्त झगड़े ग्राम-पंचायत के द्वारा हल किये जाते थे।

मुगल कालीन प्रान्तीय शासन व्यवस्था –

केन्द्रीय सरकार में प्रशासन की दृष्टि से जहाँ विशेष संगठन और नियन्त्रण विद्यमान था, वहीं प्रान्तीय शासन के अन्तर्गत मुगलों को अनेकानेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। सत्रहवीं शताब्दी में आज के समान न तो यातायात के तीव्रगामी साधान थे, न विज्ञान के अन्य उपकरण थे जिससे दूरी की समस्या का निदान हो सके, अतः प्रशासन की दृष्टि से साम्राज्य को विभिन्न प्रान्तों एवं सूबों में बाँट दिया गया था। अकबर के समय में मुगल-साम्राज्य में पन्द्रह प्रान्त थे। जहाँगीर के समय में यह संख्या सात थी किन्तु औरंगजेब के शासन में साम्राज्य बीस प्रान्तों में विभक्त था। प्रान्तीय प्रशासन के संचालन के लिए भी कुशल नौकरशाही की व्यवस्था थी। प्रत्येक प्रान्त में अग्रलिखित मुख्य शासनाधिकारी थे।

सूबेदार–

प्रान्त में सर्वोच्च अधिकारी सूबेदार होता था। अकबर के शासनकाल में उसे 'सिपहसालार' कहा जाता था, किन्तु उसके उत्तराधिकारियों के काल में इसे 'सूबेदार' या 'नाजिम' कहा जाता था। इस पद पर सम्राट या तो अपने अत्यन्त विश्वासपात्र लोगों को नियुक्त करता था अथवा इस पद पर शहजादों को नियुक्त किया जाता था। जब कभी शहजादों की नियुक्ति 'सूबेदार' या 'सिपहसालार' के पद पर की

जाती थी तब राज्य-कार्य में उनकी सहायता के लिए अत्यन्त अनुभवी व्यक्ति को भी नियुक्त किया जाता था। 'सूबेदारों' की नियुक्ति अथवा पदच्युति दोनों ही सम्राट की स्वेच्छा पर निर्भर करते थे। आधुनिक काल में इसे 'गवर्नर' के रूप में देखा जा सकता है। प्रान्त में उसके निम्नलिखित कर्तव्य होता थे।

1. शान्ति एवं सुव्यवस्था बनाये रखना;
2. प्रजा की सुख-सुविधा का ध्यान रखना;
3. शाही आज्ञाओं का जनता से पालन कराना;
4. राज्य-करों को वसूल करने में सहायता देना;
5. वाणिज्य व कृषि को प्रोत्साहन देना;
6. सड़कों, कुओं, नहरों व अस्पताल का निर्माण करना;
7. प्रान्तीय राजधानी में दरबार लगाना व न्याय करना।

प्रत्येक 'सूबेदार के पास एक शक्तिशाली सेना रहती थी जिससे वह विद्रोहियों का दमन कर सके और आवश्यकतानुसार सम्राट की सहायता भी कर सके।

दीवान–

प्रान्त में दूसरा महत्वपूर्ण अधिकारी 'दीवान' होता था। मुगल शासन के प्रारम्भिक दिनों में यह पद 'सूबेदार' के समकक्ष माना जाता था। वित्त-विभाग पर इसका पूर्ण अधिकार होता था। 'दीवान' के कार्यों में 'सूबेदार' को हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं था। सच तो यह है कि 'सूबेदार' और 'दीवान' दोनों एक-दूसरे के कार्यकलापों पर दृष्टि रखते थे जिससे सम्राट को यह लाभ होता था कि एक ही प्रान्त की सूचनाएँ उसे दो विभिन्न व्यक्तियों द्वारा प्राप्त होती थीं। 'दीवान' के कर्तव्य निम्नलिखित होते थे।

1. प्रान्त में भूमि-कर का निर्धारण करना;
2. दीवानी झगड़ों के सम्बन्ध में निर्णय करना;
3. भूमि-कर वसूल करना;

4. कर वसूल करने के लिए अधिकारियों की नियुक्ति करना;
5. कृषि एवं कोष की देखभाल करना;
6. अकाल के समय कृषकों की सहायता करना;
7. दीवानी कागजातों को केन्द्रीय दीवान या वजीर को प्रेषित करना।

बख्शी –

प्रान्तीय शासन में 'बख्शी' का पद भी महत्वपूर्ण था। यह प्रान्तीय सेना की भरती; प्रोन्नति एवं स्थानान्तरण आदि का प्रबन्ध करता था। सम्राट की आज्ञा पर उसे अपने सैनिकों को लेंकर सैनिक अभियानों पर भी जाना पड़ता था।

वाकियानवीस –

यह एक महत्वपूर्ण पद होता था। इसका यह कर्तव्य होता था कि प्रान्त में घटित होने वाली जनसाधारण की समस्त घटनाओं की सूचना वह केन्द्र को अविलम्ब भेज दे। अक्सर 'वाकियानवीस' और 'सूबेदार' के मध्य मत–मतान्तर हो जाया करता था; फिर भी 'वाकियानवीस' का पद महत्वपूर्ण था क्योंकि कुप्रबन्ध की दशा में 'वाकियानवीस' द्वारा ही केन्द्र को सूचित किया जाता था। प्रान्त में उसकी उपस्थिति ही नियन्त्रण का आधार बन जाती थी।

सुविधा की दृष्टि से समस्त प्रान्त पुनः 'सरकारों' अथवा 'जिलों' में विभक्त थे। अकबर के समय में समस्त शासन में लगभग 105 'सरकारें' थीं। जिले के कार्य को भली प्रकार सम्पादित करने के लिए प्रत्येक 'सरकार' (जिले) में निम्नलिखित मुख्य अधिकारी कार्य करते थे।

फौजदार–

प्रत्येक जिले में शासन का कार्यपालन अधिकारी होता था, जिसकी तुलना आधुनिक 'जिलाधीश' से की जा सकती है। वह प्रान्तीय 'सूबेदार' से अपना सम्पर्क रखता था और उसी के निर्देशानुसार कार्य करता था। उसके अधिकार में एक सैनिक

टुकड़ी भी रहती थी जिससे उसे 'फौजदार' कहा जाता था। उसका कर्तव्य होता था कि –

1. जिले में शान्ति एवं सुव्यवस्था बनाये रखे;
2. सरकारी आदेशों को लागू कराये;
3. पुलिस–प्रबन्ध की व्यवस्था करे;
4. भूमि–कर की वसूली से सम्बन्धित कर्मचारियों की सहायता करे।

'फौजदार' की नियुक्ति, स्थानान्तरण अथवा पदच्युति केन्द्र द्वारा ही होती थी, अतः वह भी प्रान्तीय 'सूबेदार' पर एक प्रतिबन्ध के रूप में कार्य करता था।

सरकार का विभाजन 'परगनों' अथवा 'महलों' में किया जाता था जिसकी तुलना आधुनिक 'तहसीलों' से की जा सकती है। यद्यपि 'आइन–ए–अकबरी' में परगने के प्रमुख अधिकारी के विषय में कोई वर्णन नहीं है किन्तु जहाँगीर व मुतामिदखाँ के वर्णन के आधार पर उसे 'चौधरी' कहा जाता था।

सामान्यतः प्रत्येक परगने में एक 'शिकदार', एक 'आमिल', एक 'अमीन', एक 'फोतदार' (कोषाध्यक्ष) और 'वितक्ची' (लेखक) रहते थे। 'शिकादार' का कर्तव्य था कि वह अपने परगने में शान्ति स्थापित रखे। उसके अधीन एक सैनिक टुकड़ी भी रहती थी। कभी–कभी इसे 'काजी' का भी कार्य करना पड़ता था, किन्तु इस क्षेत्र में उसके अधिकार नितान्त सीमित थे। 'आमिल' सरकारी 'अमलगुजार' की भाँति कार्य करता था। उसे 'मुन्सिफ' भी कहा जाता था। उसका प्रमुख कार्य कर–निर्धारण एवं वसूली था। 'फोतदार' का कार्य जिले में कोषाध्यक्ष का होता था।

सुलतानपुर (वर्तमान) के महल या परगने का क्षेत्रफल एवं अवस्थित

अकबर के पूर्व राजनीतिक महल या परगने –

जयचन्द की पराजय के पश्चात् ऐसा प्रतीत होता है कि भरों को जिले के

विवाद रहित नियन्त्रण के लिये छोड़ दिया गया था।[213] यह सम्भवत: उस समय एक भर नेता जिसका नाम अल्दे था उसने गोमती[214] के बाये किनारे पर परगना अल्देमऊ की स्थापना किया। ऐसा कहा जाता है कि यह परगना दस प्रदेशों में हवेली, सखन, रोहियावाँ, बेवुाना, हरई, मकरहा, जटौली, करौंदी, कटघर और इमलाक बँटा हुआ था। परम्पराओं के अनुसार भरों के शासन काल में बहुत से परदेशी आये और इन प्रदेशों में प्रबन्ध करने के लिये नियुक्त किया गया था। जगनग राय अयोध्या का रघुवंशी अल्देमऊ आया और बावन पाण्डे को साथ लेकर हरई में स्थापित हो गया। उसके पश्चात् श्री पतिराना एक घोड़े का सौदागर फतेहपुर सीकरी से आया और मकराहा में कब्जा कर लिया। उसके पश्चात् मान सिंह (बैसवारा का वैश्य), जोहपत सिंह (एक राजपूत), केदार शुक्ल, सरबन तिवारी, धूधार और मुतकर पाण्डेय आदि ने हमीदपुर, रोहियावाँ, इमलाक, सरवन, कटघर और हवेली पर कब्जा कर लिया। बेवाना के कुर्मियों को अप्रवासी नहीं कहा जा सकता और न तो इस तरह की कोई परम्परा ही थी[215] अत: यह लोग भरों के अधीनस्थ होकर यहाँ स्थापित हो गया। इस समय सम्पूर्ण उत्तरी भारत मुस्लिम विजेता सहाबुद्दीन गोरी के सामने आत्म समर्पण हो गया और उसने जीता हुआ समस्त साम्राज्य अपने प्रिय दास और विश्वनीय सैनिक कुतुबुद्दीन ऐबक को सौंप दिया। कुतुबुद्दीन ऐबक दिल्ली में जो कि मुहम्मद गोरी का वायसराय था उसने अवध प्रान्त में सुल्तानपुर जनपद जो उसका एक हिस्सा था अपना आधिपत्य जमाकर संगठित करना शुरू किया। और मलिक हिसामुद्दीन-अबुल-बक प्रथम गवर्नर के रूप में इस भू-भाग पर स्थापित

---

213. *अलेकजेन्डर कनिंघम, द एन सिंट ज्यॉग्राफी ऑफ इण्डिया, बारा., 1963, पृ. 337; एच. आर नेविल, सुलतानपुर; द गजेटियर , इला. 1903, पृ. 130, 205*

214. *नेविल, वही, पृष्ट – 154*

215. *वही, पृ० 154–55*

हुआ।[216] कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु 1210 ई. में हुई और उसका पुत्र आराम शाह बैठा जिसे एक वर्ष बाद इल्तुतमिश ने गद्दी से उतार दिया (1212 – 1235)।[217] जिसके राज्य में हसन मुहम्मद सुलतानपुर का गवर्नर बनाया गया। जिसकी सीमा 1,400 गावों तक बढ़ाकर जौनपुर तक कर दिया था।[218]

1248 ई. के करीब सुल्तान नसीरूद्दीन के शासनकाल में बरियार सिंह (चौहान) जिसने सीधे चाहेर देव से अपना सम्बन्ध बताया जो कि पृथ्वी राज चौहान का भाई था, अपने घर से भागकर पहले जमुवायाँ उसके बाद भदैंया में स्थापित हुआ। ऐसा कहा जाता है कि पृथ्वीराज की पराजय के बाद चौहान अकेले कर दिये गये और मुस्लिम शासकों ने चौहानों को समाप्त करने की योजना बना डाली। बरियार सिंह का प्रवासी होने का यह एक महत्वपूर्ण कारण हो सकता है। लेकिन इसके बारे में एक और मजेदार कहानी कही जाती है कि बरियार सिंह के पिता जिनके 22 पुत्र पहले से ही थे एक जवान दुलहिन के वशीभूत हो गये और उसने यह शर्त रखी कि यदि उसके कोई बच्चा होता है तो वही उसका उत्तराधिकारी होगा। इसके पश्चात् 22 भाई अलग-अलग हिस्सों में बँट गये और बरियार सिंह पूर्वी अवध में आये। ऐसा कहा जाता है कि अलाउद्दीन मसूद की शाही सेना में भर्ती हो गया और भरों को खदेरने के लिये शामिल हो गया।[219]

1266 में बलबन दिल्ली के सिंहासन पर बैठा और उसको यह अनुभव हुआ कि उसकी सरकार का नियन्त्रण अवध में खास कर इस जिले में ढ़ीला था इसलिये उसने असंतुष्ट क्षेत्र का सेना के हवाले कर दिया।[220] सुलतान एक कठोर अनुशासन

---

216. डब्ल्यू० हेग, वही, पृ० 50-51

217. डब्ल्यू० हेग, वही, पृ० 50-51

218. नेविल, वही, पृ० 78-79

219. नेविल, वही , पृ० 78-79

220. मजूमदार पुसालकर, पृ० 150

प्रिय व्यक्ति था और उसने अपने अधिकारियों तक नही बक्शा। उसने हैबत खाँ जो अवध का रैय्यवती था, कठोर दंड दिया।[221]

1280 में अमीर खाँ जो अवध का सूबेदार था वह बंगाल के विद्रोही गवर्नर तुगरिल खाँ पर नियन्त्रण करने में असफल रहा सुलतान स्वयं उसके खिलाफ आक्रमण किया और अवध से गुजरा।[222]

अलाउद्दीन के शासन काल में (1296-1316) ई. ऐसा कहा जाता है कि दो भाई सैय्यद मुहम्मद और सैय्यद अलाउद्दीन जो कि घोड़े के व्यापारी थे पूर्वी अवध में आये और राजा नन्द कुँवर जो कि कुसभवन पुर के भरों के सरदार थे घोड़े बेंचने की पेशकश की। उसने घोड़ों को जब्त कर लिया और दोनों भाईयों को मार डाला। इसको सुनकर अलाउद्दीन खिलजी ने एक बड़ी सेना इकठ्ठी की और कुसभवनपुर के लिये चल पड़ा। कुशभवनपुर के निकट एक घने जंगल में करौंदी में अपना डेरा डाल दिया यह स्थान गोमती के दूसरी तरफ है। यहाँ पर वह एक वर्ष तक बिना किसी लाभ के डेरा डाले रहा। तब उसने यह बहाना करके कि इनसे कोई लाभ नहीं है। उसने कुछ सैकड़े पालकियों में धन भेजकर भरों से शान्ति के लिये भेजा और यह बहाना किया कि इसमें उपहार भरे हुये है जो उनके मनपसन्द के हैं।[223]

भर धन की लालच में आ गये और उस उपहार को स्वीकार कर लिया लेकिन एकाएक वह पालकियाँ खोली गई और उसमें से लडाकू सैनिकों की भीड़ निकली और उन्होंने आक्रमण कर दिया। वह लोग तैयार नहीं थे और सब मार डाले गये। राजा नन्द कुँवर को हटा दिया गया और वहाँ पर एक मस्जिद बनवायी गई और उस स्थान के नाम को बदल करके सुलतानपुर रख दिया गया।[224]

---

221. हेग, वही, 74-75

222. हेग, वही, 78-79

223. कनिंघम, पृ० 337

224. कनिंघम , पृ० 337

ऐसा कहा जाता है कि इसौली के भरों को हटाने के लिए अलाउद्दीन खिलजी ने वैश्य (ठाकुरों) को इकठ्ठा किया और जिनका नाम भाले सुलतान रखा गया।[225] सुरक्षा को और मजबूत करने के लिये अलाउद्दीन खिलजी ने एक किला मीरानपुर या कठोन में बनवाया जो कि गोमती के दक्षिण कुछ किलोमीटर दूर है के अवशेष है जूड़पही[226] गाँव से देखे जा सकते है।

1394 में मलिक सरवर ख्वाजा जहाँ जो वजीर था, को विद्रोही सैनिकों को दबाने के लिए अवध का गवर्नर नियुक्त किया गया। तुगलक राजाओं की कमजोरी का लाभ उठा करके उसने अपने को स्वतंत्र घोषित किया और जौनपुर[227] की शर्की वंश की नींव डाली। सुलतानपुर अवध के अन्य हिस्सों के साथ इसी वंश के अन्दर चली गई। वह 1399 में मर गया और उसके द्वारा गोद लिया गया पुत्र मुबारक शाह गद्दी पर बैठा। इसके पश्चात् 1402 में इब्राहिम शाह शर्की (1402-1440) गद्दी[228] पर बैठा। उसने बहुतों को अपने धर्म में परिवर्तित किया। ऐसा सम्भव है कि इब्राहिम शाह अनेकों बार जिले में अपने अभियान के अन्तर्गत आया। उसके उत्तराधिकारियों के बहुत से सिक्के गोमती[229] नदी के दक्षिण किनारे धोपाप के पास प्राप्त हुये है। इब्राहिम शाह शर्की अपने पुत्र मुहम्मद शाह शर्की द्वारा (1440-1457) तक इस राज्य का उत्तराधिकारी रहा। मुहम्मद शाह अपने भाई हुसैन शाह शर्की द्वारा कत्ल कर दिया गया।[230] 1479 में बहलोल लोदी ने शर्की राज्य को पराजित किया।[231] और बहलोल लोदी ने दिल्ली में अपने पुत्र बारबक को गवर्नर नियुक्त

225. *नेविल, वही, पृ० 196*
226. *हेग, वही, पृ० 193*
227. *वही, पृ० 187-188*
228. *नेविल, वही, पृ० 134*
229. *मजूमदार एण्ड पुसालकर, वही, भाग-6, पृ० 188-190*
230. *हेग, वही, पृ० 234*
231. *नेविल, वही, पृ० 151*

किया। कहा जाता है कि जौनपुर के शर्की राजाओं के काल में अल्देमऊ का पुराना किला जो कि भर सरदार अल्दे द्वारा निर्मित कराया गया था नष्ट कर दिया गया। अल्देमऊ में मुस्लिम कालीन कब्रों के अवशेष देखे जा सकते है। जिसमें शेख मख्दूम मारूफ और जुरीया शहीद जो बहुत दिनों तक प्रसिद्ध रहे उपलब्ध हैं।[232] मखदूम मारूफ अल्देमऊ में रहते थे और वही दफन किये गये है और उनकी मृत्यु की वर्षी पर मेला लगता है। और जो जूरिया शहीद की कब्र पर जूड़ी से पीड़ित लोग आते थे। कादीपुर तहसील के शाहगढ़ गाँव में तीन गुम्बद की मस्जिद है जो मदरसा के नाम से जानी जाती है। यह सम्भवतः जौनपुर काल की है।[233]

बाबर के आक्रमण के अन्त में शेख बायाजिद अवध पर काबिज था जिसमें जनपद सुलतानपुर भी सम्मिलित था। इब्राहिम लोदी की मृत्यु पानीपत युद्ध (1526) के पश्चात् वह (बायाजिद) कुछ अफगान सरदारों के साथ बाबर मिला। और बाबर ने अवध का एक हिस्सा और एक बहुत बड़ी धनराशि उसको प्रदान किया।[234] लेकिन वह जल्दी ही अपने नये मालिक के विरूद्ध बगावत कर दिया और पूरब की तरफ फरवरी 1528 ई. में जल्दी से चला गया। और चिनतिमूर सुल्तान को विद्रोहियों को कुचलने के लिये आदेश दिया। चिनतिमूर सुल्तान अवध पहुँच गया जिसके परिणामस्वरूप बयाजिद और उसका परिवार बचकर गाजीपुर चला गया। बाबर स्वयं भी अवध पहुँचा और वहाँ कुछ दिन रूका।[235] तिलोकचन्द हसनपुर का बछगोती सरदार बाबर के हाथों में गिरफ्तार कर लिया गया। तिलोकचन्द ने इस्लाम स्वीकार कर लिया और अपना नाम बदल कर तातार खाँ रख लिया और उसको खान-ए-आजम की उपाधि प्रदान की गई। उसका एक पुत्र फतेहशाह जो कि अपने

---

232. *नेविल, वही, पृ० 173*

233. *ए०एस० बेवरीज, द बाबर नामा इन इंग्लिश भाग-2, 1922, पृ० 527*

234. *वही, पृ० 601-602*

235. *वही, पृ० 88-89*

पिता के धर्म परिवर्तन के पहले पैदा हुआ था अपना वही नाम स्थिर रखा। दूसरे पुत्र वाजिद खाँ एक मुसलमान की तरह लाया गया और उसने अपने को खानजादा घोषित किया।[236]

शेरशाह सूरी द्वारा थोड़े समय के लिए हुमायूँ को (1539-40)[237] खदेड़ दिया गया यह एक इस जिले की प्रमुख घटना थी। हसन खाँ (वाजिद खाँ का पुत्र) शेरशाह के पक्ष में उभरा। जिसको बादशाह दुम मसनदी आला की उपाधि से विभूषित किया गया। और उसको यह शक्ति प्रदान की गई कि जिस पर वह प्रसन्न हो उसको राजा की उपाधि प्रदान करे। हसन खाँ ने वर्तमान ग्राम हसनपुर की नीवं डाली जहाँ उसकी मृत्यु हो गई और उसे एक ईंट की कब्र में दफन किया गया।[238] हसनपुर के दक्षिण में एक बाजार थी जिसका नाम इमामगंज था जो कि हसन खाँ के कब्र के करीब है। शाहगढ़ का किला जो तहसील कादीपुर में है स्थानीय लोगों का मत है कि इसे शेरशाह सूरी ने निर्मित कराया था, जो 22 मई 1545 ई. को दिवगंत हो गया। चार दिन पश्चात् उसका पुत्र इस्लाम शाह[239] उत्तराधिकारी हुआ, जिसने परगना चाँदा के दक्षिण पश्चिम में अर्जुनपुर गाँव में एक विशाल किले का निर्माण कराया। जहाँ पर इसका निर्माण हुआ है कहा जाता है कि इसका नाम मकर कोला है। और वहाँ आज भी एक गाँव मकर कोला[240] के नाम से जाना जाता है।

1555 ई. में हुमायूँ दिल्ली की गद्दी पर पुनः पदारूढ़ हुआ लेकिन थोड़े ही समय पश्चात् इसकी मृत्यु हो गई।[241] उसके उत्तराधिकारी अकबर ने पानीपत का

---

236. आर० वर्न, द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग-4, पृ० 1957

237. नेविल, वही, 88-89

238. आर० वर्न, वही, भाग-4, पृ० 55-58

239. फ्यूहरर, वही, पृ० 328

240. आर० वर्न, वही, 67-69

241. वही, पृ० 70-73

द्वितीय युद्ध (1556) ई में हेमू से जो आदिल शाह सूर का सेना नायक था। निर्णायक विजय हासिल की और मुगल एक बार पुनः उत्तरी भारत[242] के मालिक बन बैठे।

बेलहरी महल–

आइन–ए–अकबरी के अनुसार – 'बेलहरी महल सुलतानपुर के पूरब अवस्थित था। सम्प्रति इसका समीकरण बरौसा से किया जा सकता है। बेलहरी में ईटें का एक किला था। इस किले में 50 घुड़सवार, 2 हजार पैदल सैनिक थे। आरम्भ में यह भू–भाग वछगोतियों के कब्जे में था। 22 जनवरी 1581 ई. को मुगल सेना एवं विद्रोही के बीच युद्ध हुआ था।

किसनी महल –

अबुल फजल ने किसनी महल का उल्लेख किया है। यह वर्तमान जगदीशपुर परगने का अंग है। किसनी महल गोमती के दाहिने किनारे पर अवस्थिति था। यहाँ पर ईटें का एक किला निर्मित था। इस किले पर राजपूतों का अधिकार था। इस महल में 15 सौ घुड;सवार एवं 3 हाथी थे।

सुलतानपुर महल–

सुलतानपुर महल का प्राचीन नाम सार्थ्न था। यह गोमती के दाहिने किनारे पर अवस्थिति था। इस महल में भी ईटों से निर्मित एक किला था। इस महल में 300 पैदल एवं 4 हजार घुसवार थे। इस महल पर वैश्य, वछगोती एवं जोशियों का कब्जा था।

भदॉव महल–

वर्तमान थाना भदॉव (सुलतानपुर के अर्न्तगत) अकबर के समय यह अवध सूबे का अंग था। इस महल में 500 घुड़सवार रहते थे।

---

242. *अबुल फजल, आइन–ए–अकबरी भाग–2, पृ० 184–185*

इसौली महल –

अकबर के काल में इसौली महल लखनऊ सरकार के अधीन था। इसौली महल का किला गोमती के किनारे अवस्थित था। इस किले में 50 घुड़सवार एवं 2 हजार पैदल सेना थी। इस पर बछगोती एवं राजपूतों का कब्जा था।

अमेठी महल –

अमेठी महल का समीकरण वर्तमान अमेठी या गढ़ अमेठी से किया जा सकता है। अमेठी के किले पर बछगोतियों का कब्जा था। यहाँ पर 3 सौ घुड़सवार, 2 हजार पैदल एवं 20 हाथियों की सेना थी।

अकबरी महल –

गौरा एवं जामों, वर्तमान जायस का भू-भाग अकबरी महल के नाम से जाना जाता था। यह मानिकपुर सरकार का महल था।

अकबर के समय इस परगने के कई भाग किये गये।

कथोड़ महल –

यह वर्तमान में रायबरेली जिले का अंग है। अकबर के शासन काल में मानिकपुर सरकार का अंग था। यह मीरानपुर के दक्षिण में था। कथोड़ के किले पर बछगोतियों का कब्जा था। इसमें सौ घुड़सवार, 2 हजार पैदल सैनिक थे।

चाँदा परगना (महल) –

चाँदा परगना बछगोतियों के कब्जे में था। यह जौनपुर सरकार का परगना था। जौनपुर सरकार इलाहाबाद सूबे में था। चाँदा महल में 20 घुड़सवार एवं 300 पैदल सैनिक थे।

अल्देमऊ परगना[243] –

इस परगने पर भी बछगोतियों का कब्जा था। अल्देमऊ परगना जौनपुर सरकार का अंग था। यही भी इलाहाबाद सूबे में था। इस परगने में 50 घुड़सवार एवं 3 हजार पैदल सैनिक थे।

---

243. अबुल फजल, वही, भाग–1, पृ० 576

द्वितीय अध्याय

सुलतानपुर का सामाजिक इतिहास

(1206 ई0 से 1707 ई0 तक)

सुलतानपुर का सामाजिक इतिहास

(1206 ई. से 1707 ई. तक)

विवेच्च है कि 1206 ई० से 1707 ई० का भारतीय इतिहास मुस्लिम शासकों का इतिहास है। यद्यपि सल्तनत काल एवं मुगलकाल इस्लाम धर्म के प्रमुख युग थे, तथापि राजनीतिक व्यवस्थाएँ, सामाजिक मान्यताएँ एवं आर्थिक विचारों में पर्याप्त भिन्नता दृष्टिगत होती है। सल्तनत काल तक मुस्लिम आबादी सीमित थी। मुख्य रूप से शहरों के किनारे एवं राजनीतिक केन्द्रों पर ही मुसलमान निवास करते थे। ग्रामीण आबादी इस समय तक न्यूनतम थी। यद्यपि धर्मान्तरण आरम्भ हो गया था तथापि संख्या अति सीमित थी। मुगल काल मे तेजी से धर्मान्तरण हुआ। अतः मुसलमानों की संख्या मे तेजी से वृद्धि हुई। इसके दो परिणाम हुए कि (1) मुस्लिम धर्म न स्वीकारने वाले हिन्दुओं का तेजी से दमन किया जाने लगा, हिन्दुओं पर जजिया कर एवं धर्मयात्रा कर तो मुस्लिमों के सत्ता में आने के बाद से ही आरोपित कर दिये गये थे। धर्मान्तरति (हिन्दू से मुस्लिम) मुसलमान भी बुरी तरह प्रताणित किये जा रहे थे। इन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता था। यही नहीं धर्मान्तरित मुसलमान भी पूरी तरह इस्लाम शरीयत में ढल नहीं पाये। वे भी कतिपय हिन्दू रीति-रिवाजों को पालन करते रहे। चूंकि धर्मान्तरित मुसलमानों की संख्या अधिक थी। अतः उन्होंने हिन्दुओं को तथा हिन्दुओं ने मुसलमानों को अपनी संस्कृति में ढालने का प्रयास किया। उपासना पद्धति एवं वैवाहिक संबंधों के अलावा आपस मे वे घुलमिल भी गये। उनके वस्त्र, आभूषण, खान-पान लगभग समान थे। मुगलकाल मे (अकबर से शाहजहाँ तक) हिन्दुओं पर शासन की तरफ से अत्याचार कम हो गया था। कुछ समय के लिए जजिया कर आदि भी हिन्दुओं पर से हटा लिये गये थे। अबकर ने हिन्दू व्यवहारों को मानने की छूट दे दी वह स्वयं भी हिन्दु धर्म के कुछ आयोजनों में भाग लेता था। "नौरोज" का व्यवहार मनाना उसने सम्पूर्ण साम्राज्य के लिए अनिवार्य कर दिया था।

यह भी विवेच्च है कि जहाँ एक तरफ देश पर मुस्लिम सत्ता स्थापित थी, वहीं दूसरी तरफ स्थानीय शासक, केन्द्रीय सत्ता को स्वीकारते हुए शासन कर रहे थे। अतः जनता के ऊपर दोहरे मानदण्ड लागू थे। यद्यपि सुलतानपुर मे मुस्लिम आबादी का विकास तेजी से मुगल काल से हुआ और हिन्दुओं का व्यवहार भी उसी समय तेजी से परिवर्तित हुआ तथापि 1206 ई० से 1707 ई० के मध्य भी सुलतानपुर की स्थिति के मूल्यांकन हेतु केन्द्रीय वं स्थानीय परम्पराओं एवं पद्धतियों के आलोक में अध्ययन आवश्यक है। यथा-

मध्यकालीन भारतीय युग को मुख्यतः दो भागों मे विभाजित किया जाता है- प्रथम, सल्तनत काल (1200 ई. से 1526 ई.) और द्वितीय, मुगल शासकों का काल (1526 ई. से 1707 ई.)। सुलतानपुर पर भी यह प्रभाव दिखता है। चूँकि सल्तनतकालीन शासक कुरान और तलवार लेकर भारत में प्रविष्ट हुए थे और उनका एकमात्र उद्देश्य दारुल-हरब (काफिरों के देश) को दारुल-इस्लाम (मुसलमानों के देश में) परिवर्तित करना था। परन्तु उनकी सभ्यता और संस्कृति इतनी उच्च कोटि की नहीं थी कि वह हिन्दुओं को अपनी ओर आकर्षित कर सकती। अतः हिन्दुओं ने उसका तिरस्कार किया। साथ ही इस समय भारत के लोगों में इतनी शक्ति नहीं थी कि वे मुसलमानों को आत्मसात् कर पाती। अतः इस युग में हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य अलगाव का होना स्वाभाविक था। साथ ही इस्लाम को राजधर्म घोषित किये जाने के कारण हिन्दुओं और मुसलमानों के सम्बन्ध तनावपूर्ण रहे। दोनों समुदायों की सामाजिक संरचना सल्तनत काल में अलग-अलग थी, क्योंकि मुस्लिम वर्ग शासक था और हिन्दू वर्ग शासित।

सल्तनतकालीन समाज

मुस्लिम समाज –

शासक वर्ग से सम्बन्धित होने के कारण मुसलमान अपने आपको श्रेष्ठ समझते थे। निःसन्देह मुस्लिम समाज में जाति प्रथा का प्रचलन नहीं था परन्तु जन्म,

नस्ल और धर्म के आधार पर वे कई वर्गों में बँटे हुए थे। शिया और सुन्नी मुसलमानों में परस्पर तीव्र मतभेद था। विदेशी मुसलमान भारतीय मुसलमानों को घृणा की दृष्टि से देखते थे, परन्तु अल्लाह के समक्ष सभी मुसलमान समान थे। सल्तनतकालीन मुस्लिम समाज मुख्य रूप से तीन भागों में विभाजित था:-

1. विदेशी मुसलमान
2. भारतीय मुसलमान
3. दास।

विदेशी मुसलमान –

विदेश मुसलमान नस्ल के आधार पर ईरानी, तुर्की, अरबी, पठान, मुगल आदि में विभाजित थे। सल्तनतकाल में राज्य के समस्त महत्वपूर्ण पदों पर उनको ही नियुक्त किया जाता था और सुल्तान के पद पर भी इसी वर्ग के व्यक्ति को आसीन किया जाता था। मुख्य रूप से विदेशी मुसलमानों को पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है – (अ) शासक वर्ग (ब) सामन्त और अमीर (स) उलेमा (द) मध्यम वर्ग (य) जनसाधारण वर्ग।

(ब) सामन्त और अमीर –

मध्य-युग के अन्तर्गत दूसरा महत्वपूर्ण स्थान अमीरों का था जो स्वयं निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित थे – (अ) खान (ब) मलिक (स) अमीर और (द) सिपहसालार।

सुल्तानों की शक्ति का आधार ये अमीर थे और उसे उनके सक्रिय समर्थन पर निर्भर रहना पड़ता था। अमीरों की शक्ति उसकी निरंकुशता एवं स्वेच्छाचारिता पर अंकुश का कार्य करती थी। ये अमीर अपनी बहुमुखी प्रतिभा एवं तकनीकी ज्ञान के कारण राज्य के आधारस्तम्भ थे, तथा राज्य के लिए उनकी सेवाओं का अत्यधिक महत्व था। वस्तुतः राज्य की वास्तविक शक्ति मुस्लिम योद्धाओं में ही निहित थी।

चूँकि ये अपने स्वामी के मान-सम्मान की रक्षा के लिए रक्त बहाते थे अतः कोई भी शासक इनकी उपेक्षा करके सफलतापूर्वक शासन का संचालन नहीं कर सकता था। खान, मलिक एवं अमीर प्रायः राजधानियों मे निवास करते थे। जन सामान्य से उनका सम्बन्ध न के बराबर था। जन सामान्य के सम्पर्क के सिपहसलार ही आता था। तारीखे फिरोज शाही[1] में अवध के विभिन्न सबूदारों का उल्लेख हुआ है। अवध का सूबेदार ही सुलतानपुर पर भी दिल्ली का प्रतिनिधित्व करता था। सुलतान काल मे अलाउद्दीन ने यहाँ मस्जिद एवं किले का निर्माण करवाया। इस सन्दर्भ में जिलेदार भी सामन्त की कोटि एवं सैनिकों को सामान्य वर्ग में नियोजित किया जा सकता है।[2] इससे स्पष्ट है कि सामन्त एवं अमीर का अधिवास सुल्तानपुर मे अलाउद्दीन खिलजी के समय हो चुका था।

अमीरों का प्रभाव –

मध्य-युग के अमीरों का तत्कालीन राजनीति पर विशेष प्रभाव था। ये राजनीति के दाँवपेचों में अत्यन्त निपुण होते थे और शासन के विभिन्न कार्यों में सुल्तान की सहायता करते थे। अपने ऐशो-आराम और विलासितापूर्ण जीवनयापन के लिए ये सर्वसाधारण पर तरह-तरह के अत्याचार करते थे। मध्य-युग में निर्धनों और अमीरों के बीच अन्तर पहले की अपेक्षा और अधिक बढ़ गया था। अपनी अनियन्त्रित महत्वाकांक्षाओं के कारण कभी-कभी ये अमीर सुल्तान के शक्तिहीन होने पर सत्ता हस्तगत करने का भी प्रयास करते थे। के. एम. अशरफ के मतानुसार, "सुल्तान इनके जीवनकाल में ही इनकी उपाधियाँ वापस ले सकता था और इन्हें

---

1. *जियाउद्दीन वरनी, तारीखे फिरोजशाही, 1980, 36*

2. *कनिंघम, आर्क्योलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया रिपोर्ट, 1, पृ० 4*

सदैव सुल्तान की कृपा पर ही निर्भर रहना पड़ता था।''[3] अतः स्पष्ट है कि सुल्तान इनकी महत्वाकांक्षाओं से अवगत थे, परन्तु इनका समर्थन व सहयोग प्राप्त करने के अतिरिक्त कोई और विकल्प नहीं था। मुगलकालीन अमीरों की तुलना में सल्तनतकाल के अमीर कहीं अधिक विश्वासघाती एवं षड्यन्त्रकारी थे। उन्होंने अपने शक्तिशाली गुट के संगठन के द्वारा इल्तुमिश के कई उत्तराधिकारियों को बलि के बकरे की भाँति क़त्ल करवा दिया था परन्तु मुगलकालीन अमीरों ने शासन को स्थायित्व प्रदान किया था।

(द) मध्यम वर्ग –

मध्य–काल में उच्च वर्ग के पश्चात् मध्यमवर्गीय समाज ही एक ऐसा वर्ग था जिनकी आर्थिक स्थिति ठीक थी। समाज में उसका मान–सम्मान भी कम नहीं था–मध्यम वर्ग शासक वर्ग और जनसाधारण वर्ग के बीच की एक कड़ी था। बहुत से अमीर भी इनकी तुलना में आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए थे। क्योंकि अमीरों को एक ओर अपने जीवन–स्तर को बनाये रखने के लिए पर्याप्त धन व्यय करना पड़ता था; दूसरे, उन्हें शसक वर्ग के लिए समय–समय पर बहुमूल्य उपहार देने की औपचारिकता का भी पालन करना पड़ता था जिस पर पर्याप्त धन व्यय हो जाता था, और कभी–कभी अमीरों को कर्ज के बोझ से दब जाना पड़ता था। बर्नियर ने इस सन्दर्भ में लिखा है: बहुत ही कम धनवान अमीरों से मेरी जान–पहचान थी। इसके विपरीत उनमें से अधिकांश बहुत ऋणग्रस्त थे। बादशाहों के बहुमूल्य उपहारों और अपने कर्मचारियों के कारण विनाश की कगार पर पहुँच गये थे।

मध्यम वर्ग में सामान्यतः व्यापारी, व्यवसायी, सरकारी कर्मचारी व लेखन

---

3. *"Their dignities could be snatched away from them during their life-time, and they were always at the mercy of the erigning Sultan."*

कार्य करने वाले आते थे जिसका स्पष्टीकरण करते हुए डॉ. यूसुफ हुसैन ने लिखा है: "मध्यम श्रेणी के लोगों के सम्बन्ध में हमारी जानकारी बहुत कम है। इस वर्ग में व्यापारी–व्यवसायी[4] और सरकारी कर्मचारियों या लेखक वर्ग आते थे।

मध्यम वर्ग के पास पर्याप्त सम्पत्ति थी। व्यापारी वर्ग जनसाधारण के आदर का पात्र था। मध्यम वर्ग के व्यक्तियों का जीवन–स्तर शासक की तुलना में नीचा था परन्तु उनकी स्थिति अमीर वर्ग से अच्छी थी। यह लोग ने तो शासक वर्ग की तरह आडम्बर प्रिय थे और न ही उनके समान खर्चीले थे। उनके खर्चे, उनकी आय के अनुकूल थे। वास्तव में वह सरकारी कर्मचारियों के भय के कारण अधिक शान–शौकत से जीवन व्यतीत नहीं कर पाते थे। इन्हें सदैव डर लगा रहता था कि कोई अधिकारी उनका धन न छीन ले यद्यपि वह पर्याप्त धनवान थे परन्तु अपने धन का प्रदर्शन नहीं करते थे। बर्नियर ने लिखा है कि "व्यापारी वर्ग बहुत कम खर्च करता था और निध र्नों की तरह जीवन व्यतीत करता था। मध्यमवर्गीय सरकारी कर्मचारियों का जीवन भी बहुत सम्पन्न नहीं था। मध्यम वर्ग के हिन्दू एवं मुसलमान दोनों ही आते थे।

सल्तनत काल में कई उद्योग–धन्धों की स्थापना हो चुकी थी। इनमें से कुछ तो राज्य के द्वारा चलाये जाते थे और कुछ व्यक्तिगत रूप से उद्योगपतियों द्वारा चलाये जाते थे। अवध क्षेत्र चर्म एवं वस्त्र उद्योग में अत्यन्त आगे था। यहाँ सूती वस्त्र निर्मित होते थे। सल्तनत काल में सुलतानपुर पर जौनपुर के शर्की शासकों का शासन था। वे इन उद्योगों से अच्छी कमाई कर लेते थे।[5]

एक विद्वान ने उल्लेख किया है कि आगरा के व्यापारी इतने धनवान थे कि उनके यहाँ रुपया अनाज की बोरियों की तरह भरा रहता था और ढाका में तो रुपये

---

4. *सुलतानपुर सल्तनत काल में व्यापार की उत्कृष्ट मंडी थी। यहाँ अरब के व्यापारी व्यापार के निमित्त आते थे, सुलतानपुर गजेटियर, पृ० 26*

5. *अवध गजेटियर, पृ० 320 (द्रष्टव्य चकवस्त पुस्तकालय, फैजाबाद)*

गिने नहीं जाते थे उनका वजन किया जाता था। जौनपुर/अवध का क्षेत्र भी अत्यन्त समृद्ध था। यहाँ के सूबेदार भारी मात्रा में कर दिल्ली दरबार में भेजते थे।[6]

मुगल-काल में मध्यम वर्ग के लिए आर्थिक विकास की सुविधाएँ उपलब्ध थीं। सड़कें आवागमन के लिए पूरी तरह सुरक्षित थीं।[7] व्यापारियों की रक्षा के लिए रक्षक दल होते थे। मुगल-काल में मध्यम और निम्न वर्ग के बीच बहुत बड़ा अन्तराल पाया जाता था। इस युग में अमीरों तथा गरीबों का परस्पर भेद अत्यधिक बढ़ गया था। इस समय के धनी पहले से अधिक धनी थे और स्वार्थी थे जबकि निर्धन और अधिक निर्धन हो गये थे और उनकी स्थिति असहाय हो गयी थी। सम्राट शाहजहाँ और औरंगजेब के काल में उन पर करों का बोझ बढ़ गया था और स्थानीय कर्मचारी अधिक अत्याचार करने लगे थे।" सर जदुनाथ सरकार ने भी तत्कालीन आर्थिक दशा का वर्णन करते हुए लिखा है कि "भारत की आर्थिक दशा पतनोन्मुख हो गयी थी और कला व संस्कृति के दूर-दूर तक दर्शन सुलभ नहीं थे।"[8]

मध्यमवर्गीय लोग भोजन में चावल, चपाती और विभिन्न प्रकार की सब्जियों का प्रयोग करते थे। दूध का प्रयोग तो अपनी-अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार करते थे। मुसलमान माँस का उपयोग करते थे और हिन्दू वर्ग में केवल राजपूत ही माँसाहारी था। मध्यम वर्ग के लोगों में बहुत से सुरापान करते थे। परन्तु फिर भी मध्यम वर्ग के लोगों का जीवन पर्याप्त समृद्ध था।

(य) जनसाधारण वर्ग –

शासक वर्ग और मध्यम वर्ग के बाद सामान्य व्यक्तियों का वर्ग था, जिसे

---

6. *नीविल, वही, पृ० 183*
7. *शेरशाह ने अपने शासन काल मे जी०टी० रोड को दिल्ली से जोड़ने के लिए एक अन्य सड़क (जी०डी० रोड) बनवायी थी। जो दिल्ली-सुल्तानपुर-जौनपुर होते हुए बनारस के निकट जी०टी० रोड में मिल जाती थी।*
8. *इण्डिया जदुनाथ सरकार, इण्डिया ऑफ औरंगजेब, पृ० 143*

जनसाधारण वर्ग या निम्न वर्ग कहा जाना था। इसमें मुख्यतः कारीगर, छोटे दुकानदार, किसान और मजदूर लोग सम्मिलित थे। सम्पूर्ण मध्य-काल में इस वर्ग की दशा प्रायः दयनीय रही थी। डॉ. यूसुफ हुसैन ने लिखा है: "कस्बों और नगरों में रहने वाले निम्न श्रेणी के लोगों और किसानों की ऐसी ही दशा थी, जैसी आधुनिक समय में है। जहाँ तक उनके निवास-स्थान का सम्बन्ध है, अधिकतर विदेश यात्रा उनकी दुर्दशा का चित्रण करते थे। कृषक श्रमिक वर्ग के लोग सामान्यतः झोंपड़ियों में रहते थे।"[9] तुलसी कृत रामचरित मानस में इसी प्रकार के दृष्टान्त प्राप्त होते हैं।

पेलसर्ट ने भी इस वर्ग की स्थिति का जो चित्रण किया है वह अत्यन्त दयनीय है। उसने लिखा है: "उनके मकान मिट्टी के बने हुए छप्पर की छतों के हैं।[10] कुछ मिट्टी के घडों, पकाने के बर्तनों और दो चारपाइयों के अतिरिक्त उनके घरों में साज-सज्जा की सामग्री या तो बहुत कम है या बिलकुल नहीं है। उनके बिछौना बहुत कम हैं केवल दो चादरें - जिनमें से एक बिछाने और दूसरी ओढ़ने के काम आती है। ग्रीष्म-ऋतु के लिए यह पर्याप्त है किन्तु कड़ाके की जाड़ों की रातें वस्तुतः दयनीय होती हैं।"

निम्न श्रेणी के मनुष्य इतने निर्धन थे कि वह साधारण सुख-सुविधा का उपभोग ही नहीं कर सकते थे। वह आज के मजदूरों की तरह झोंपड़ियों में रहते थे और सारा दिन परिश्रम करते थे। इन लोगों के पास जीवनोपयोगी वस्तुएँ भी बहुत कम थीं।[11]

अमीर और सामन्त लोग गरीबों से बेगार भी लेते थे। उन्हें कड़ा परिश्रम भी करना पड़ता था। जनसाधारण के व्यक्तियों को जीवित रहने भर के लिए भोजन सामग्री उपलब्ध हो पाती थी और अधिकांश व्यक्तियों के पास शरीर ढकने के लिए

---

9. डॉ० के०एल० खुराना, म०का०भा० संस्कृति, पृ० 28

10. वही

11. वही

पर्याप्त वस्त्र नहीं होते थे। सर टामस रो ने तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का वर्णन करते हुए लिखा है कि "भारतवर्ष में बड़े छोटे को लूटते थे और बादशाह सबको लूटता था। साधारण व्यक्तियों के लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं थी। बाजार में तरह-तरह की मादक वस्तुएँ उपलब्ध थीं। परन्तु धनाभाव के कारण गरीब लोग उनका उपभोग नहीं कर पाते थे।"[12]

सल्तनत-काल में सुल्तानों ने उन मुसलमानों को जिनके पूर्वज हिन्दू थे – समान सुविधाएँ प्रदान नहीं की थीं। छोटी जाति के बहुत से हिन्दुओं को प्रलोभन देकर इस्लाम में दीक्षित तो किया गया था किन्तु उन्हें मौलिक अधिकारों से वंचित रखा गया था। तुर्क जाति के लोग विभेद की नीति में विश्वास करते थे और इसलिए उन्होंने भारतीय मुसलमानों को सरकारी नौकरियों तक से वंचित कर रखा था। कुतुबुद्दीन से लेकर कैकुबाद तक प्रशासन में तुर्कों का एकाधिकार बना रहा। बलबन ने खुले रूप से निम्नवंशीय अतुर्कों से घृणा करने का उल्लेख किया है। सुलतानपुर में भी भारी संख्या में लोगों ने धर्म परिवर्तन किया। बछागोठी सरदार ने इस्लाम स्वीकार किया, वह ततार खाँ (खान-ए-आजम)[13] के नाम से जाना गया। परन्तु इसकी स्थिति बरकरार रखी। संभवतः यह समय की माँग थी।

जब धर्म परिवर्तित मुसलमानों के प्रति तुर्कों का व्यवहार इतना अपमानजनक था, तब हिन्दुओं के साथ उनके द्वारा अच्छा व्यवहार किये जाने का कोई कारण दिखायी नहीं पड़ता। हिन्दुओं के साथ तुर्कों का व्यवहार दासों के समान था। तैमूर ने अपने दिल्ली अभियान के समय एक लाख से भी अधिक हिन्दुओं को कत्ल करवा दिया था। बरनी ने हिन्दुओं के प्रति व्यवहार के सन्दर्भ में लिखा है: "कोई भी हिन्दू अपना सिर ऊँचा करके नहीं चल सकता था और ना ही उनके घरों में सोना-चाँदी

---

12. *खुराना, वही, पृ० 29*

13. *नीविल, वही, पृ० 88-89*

दिखायी पड़ता था। वह श्रेष्ठ घोड़ों पर सवारी नहीं कर सकते थे। ना ही शस्त्र धारण कर सकते थे, न अच्छे कपड़े पहन सकते थे और न ही पान का सेवन कर सकते थे।''[14]

अलाउद्दीन के शासनकाल में किसानों, मजदूरों और गरीब व्यक्तियों को बड़े कष्टों को सामना करना पड़ा। उन पर तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगाये गये। उन्हें कठोर परिश्रम करने के लिए बाध्य किया जाता था तथा अपने जीविकोपार्जन के लिए उन्हें मुसलमानों के घरों में कार्य करने के लिए बाध्य होना पड़ता था। उनके वस्त्र अत्यन्त निम्न कोटि के होते थे। डॉ. के. एम. अशरफ ने लिखा है: ''साधारणतः दरिद्र लोग एक धोती या कमर से नीचे कपड़े का एक लम्बा टुकड़ा और कभी चोगा पहनते थे। ब्राह्मण कमर के ऊपर वस्त्रहीन रहते थे और शरीर पर जनेऊ धारण करते थे।''[15]

जनसाधारण अपनी आर्थिक दरिद्रता के कारण अत्यन्त अभिशप्त जीवन व्यतीत करता था। अबुल फजल के अनुसार गरीब व्यक्ति प्रातः काल घुने और पिसे बाजरे का सतू खाते थे और बहुत से लोग खिचड़ी का सेवन करते थे।[16]

मुगल-काल में किसानों और जनसाधारण के प्रति कुछ ध्यान दिया गया था। अकबर के समय में सरकारी कर्मचारियों को गरीब जनता के प्रति कठोरता का व्यवहार करने की आज्ञा नहीं थी परन्तु शाहजहाँ के शासनकाल तक आते-आते प्रान्तीय गवर्नरों और पदाधिकारियों ने किसानों को पुनः कष्ट देने प्रारम्भ कर दिये थे। औरंगजेब के शासनकाल में जनसाधारण की स्थिति अत्यन्त खराब हो गयी थी। उसके शासन में कृषि और कारोबर पिछड़ गये थे। गरीब दस्तकारों और कारीगरों की स्थिति अत्यन्त दुर्दशापूर्ण हो गयी थी। इसका उल्लेख करते हुए बर्नियर ने लिखा है: ''यदि कलाकारों और कारीगरों को प्रोत्साहन दिया जाता तो लाभप्रद होता और

---

14. *जियाउद्दीन वरनी, तारीख-ए-फिरोजशाही, 288, अनु०, पृ० 200*
15. *डॉ० खुराना, वही, पृ० 29*
16. *वही*

ललित कला की उन्नति हुई होती किन्तु यह अभागे तिरस्कृत रहे। उनके साथ कठोरता का व्यवहार किया गया और इन्हें इनकी मजदूरी तक से वंचित रखा गया।"[17]

उपरोक्त वर्णन से यह पूर्णतया स्पष्ट है कि मध्यकालीन भारत में केवल शाही वर्ग ही सुख-सुविधा का जीवन व्यतीत करता रहा – मध्यम वर्ग ने अपनी सीमाओं के भीतर कुछ सुविधाओं व आनन्दों का उपभोग अवश्य किया किन्तु वह सदैव अमीरों और सामन्तों से भयभीत रहे। जनसाधारण वर्ग तदैव अभावग्रस्त रहा। उसकी मौलिक आवश्यकताएँ कभी पूरी नहीं हुई। उसे उच्च वर्ग के उत्पीड़न का समय-समय पर शिकार होना पड़ा। यही कारण है कि निम्न वर्ग के हृदय में सदैव असन्तोष पनपता रहा किन्तु साधनों के अभाव में वह अपने असन्तोष को कभी व्यक्त नहीं कर सके।

भारतीय मुसलमान –[18]

अपवाद को छोड़कर भारत में निवास करने वाले धर्म-परिवर्तित मुसलमानों की दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए डॉ. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने लिखा है: "दीर्घकाल तक भारतीय मुसलमानों की स्थिति बहुत ही दयनीय रही। देश के शासन में उनका हाथ नहीं था। अपने बहुसंख्यक हिन्दु देशवासियों से धन, सामाजिक स्थिति तथा स्वाभिमान की दृष्टि से वह कहीं अधिक नीचा था। उसको केवल यह सन्तोष था कि मेरा भी धर्म वही है जो शासकों का है और शुक्रवार के दिन मैं भी उन्हीं के साथ खड़ा होकर मस्जिद में नमाज पढ़ सकता हूँ।"[19] यही स्थिति जौनपुर एवं सुलतानपुर में भी रही होगी।

---

17. *डॉ० खुराना, वही, पृ० 29*

18. *मुहम्मद तुगलक ने भारतीय एवं भारतीय मुसलमानों को सम्मान प्रदान किया। इसने किसन बाजारन को अवध का हाकिम बनाया था।*

19. *वही*

सर्वसाधारण जनता (भारतीय मुसलमान) का आर्थिक जीवन कठिनाइयों से परिपूर्ण था। जहाँ शासक वर्ग वैभव, आनन्द और विलासिता का जीवन व्यतीत करता था वहीं जनसाधारण कठिनाइयों एवं अभावों से ग्रस्त रहता था। पेलसर्ट ने निम्न वर्ग की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है: "उनके मकान मिट्टी के बने हुए छप्पर की छतों के हैं। मिट्टी के कुछ घड़ों, पकाने के बर्तनों और दो चारपाइयों के अतिरिक्त उनके घरों में सजावट के उपकरण या तो बहुत कम हैं अथवा बिलकुल नहीं हैं ....कड़ाके के जाड़ों में वस्त्रों के अभाव में वे अत्यन्त दयनीय स्थिति में रातें व्यतीत करते हैं।"

डॉ. श्रीवास्तव ने भी उल्लेख किया है: "निम्न श्रेणी के मुसलमान इतने निर्धन थे कि वे साधारण सुख-सुविधा का उपभोग ही नहीं कर सकते थे। ये लोग आज के मजदूरों के तरह झोंपड़ियों में रहते थे और सारे दिन परिश्रम करते थे। इन लोगों के पास जीवनोपयोगी वस्तुएँ भी बहुत कम थीं।"[20]

सम्पूर्ण दिल्ली-सल्तनतकाल में जनसाधारण को अनेक कष्टों का सामना करना पड़। उनसे बेगार ली जाती थी, पीटा जाता था तथा कठोर परिश्रम करने के लिए बाध्य किया जाता था,[21] तब कहीं उन्हें पेट भरने के लिए भोजन-सामग्री प्राप्त हो पाती थी। निम्न जाति के हिन्दुओं को निरन्तर लालच देकर धर्म-परिवर्तन के लिए भी प्रोत्साहित किया जाता था।[22]

(3) दास –

मध्यकालीन भारत में दास-प्रथा प्रचलित थी। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही दास रखते थे। दासों के हाट लगते थे जहाँ उनकी पशुओं के समान बिक्री होती

---

20. *डॉ॰ खुराना, वही, पृ॰ 30*
21. *वर्नी, वही, पृ॰ 200*
22. *राधेश्याम, एक्यूरिक आर्किटेक्चर, शोध-प्रबन्ध।*

थी। हिन्दू धर्मग्रन्थों में अनेक प्रकार के दासों का वर्णन मिलता है।[23] दासों को रखने का सर्वप्रमुख कारण उनकी सेवा प्राप्त करना था। अमीर और सामन्त निरन्तर चलने वाले युद्धों में व्यस्त रहते थे अतः गृहकार्य का दायित्व इन दासों पर डाल दिया जाता था। हिन्दू समाज में दासों के साथ उदारता का व्यवहार किया जाता था। शेरशाह ने स्वयं अपना जौनपुर प्रवास दास के रूप में शुरू किया था।

मुस्लिम समाज में केवल चार प्रकार के दासों का वर्णन मिलता है – (1) खरीदा हुआ दास (2) दान अथवा उपहार में प्राप्त दास (3) युद्ध में बन्दी बनाया गया दास, और (4) आत्मविक्रेता दास।

मुस्लिम धर्म के अधिष्ठाता पैगम्बर मोहम्मद साहब ने दासों के साथ अच्छा व्यवहार करने का निर्देश दिया है। सामान्यतः मुस्लिम लोग दासों के प्रति उदार नीति अपनाते थे। राज्य के किसी बड़े अधिकारी का अमीर अथवा शाही दास होना लाभकारी सिद्ध होता था। धीरे-धीरे अपनी योग्यतानुसार दास अपने स्वामी के स्नेहभाजन बन जाते थे और राज्य में उच्च पद एवं प्रतिष्ठा को प्राप्त कर लेते थे। मोहम्मद गोरी के दास ताजुद्दीन यल्दौज, नासिरुद्दीन कुबाचा, कुतुबुद्दीन ऐबक अपनी योग्यता के साथ-साथ अपने स्वामी की कृपा के कारण इतने प्रभावशाली और महत्वपूर्ण स्तर तक पहुँच सके थे। नासिरुद्दीन खुसरो, मलिक काफूर एवं खानेजहाँ मकबूल ने छोटे-छोटे पदों पर कार्य करने के बाद महत्वपूर्ण पदों को प्राप्त किया था। सल्तनत-काल में दासों की स्थिति को देखने से ऐसा प्रतीत नहीं होता कि वह हेय दशा में थे,[24] भारत में तुर्कों की सफलता

---

23. *हिन्दू स्मृतियों मे 15 प्रकार के दासों का उल्लेख है। प्रायः सेवक वर्ग दास के ही रूप में व्यवहार में था।*
24. *ध्यातव्य है कि- भारत में सल्तनत काल में दासों की स्थिति अच्छी नहीं थी। आरम्भिक सभी सुल्तान दास थे। वे सुल्तानपुर के भू-भाग के स्वामी थे। जौनपुर में उनके प्रतिनिधि शासन कर रहे थे।*

का प्रमुख कारण उनकी विशिष्ट दास-प्रथा थी।"

शाही दासों की स्थिति सर्वाधिक सम्मानपूर्ण थी। मुस्लिम शासक दासों को योग्य एवं शिक्षित ही नहीं बनाते थे अपितु उन्हें पुत्रवत् प्रेम भी करते थे। मोहम्मद गोरी के अपना कोई पुत्र नहीं था परन्तु दासों के रूप में उसके अनेक योग्य पुत्र थे। एक बार उत्तराधिकार सम्बन्धी प्रश्न के पूछे जाने पर गोरी ने, तबकाते-नासिरी के अनुसार, निम्नलिखित उत्तर दिया था: **"दूसरे बादशाहों के एक या दो पुत्र होते हैं, मेरे कई सहस्त्र पुत्र हैं जो बाद में मेरे राज्य के उत्तराधिकारी बनेंगे और जो मेरी मृत्यु के बाद सम्पूर्ण राज्य में मेरे नाम को खुतबे में अक्षुण्ण बनाये रखेंगे।"**[25] ध्यातव्य है कि भारत में सल्तनत काल में दासों की स्थिति अच्छी थी। आरम्भिक सभी सुलतान दास थे। वे सुलतानपुर के भू-भाग के स्वामी थे। जौनपुर में उनके प्रतिनिधि शासन कर रहे थे।

सल्तनत-युग के अन्त में दासों के विश्वघाती हो जाने के कारण दासों को घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा। मलिक काफूर और मलिक खुसरो ने अपने स्वामियों के विरूद्ध कार्य ही नहीं किया अपितु काफूर ने तो अलाउद्दीन के पुत्रों को अन्धा करके बन्दीगृह में डाल दिया और स्वयं राजगद्दी को प्राप्त कर लिया। डॉ. मेंहदी हुसैन की मान्यता है कि दास फिरोज तुगलक के शासनकाल में ही राज्य के प्रति वफादार नहीं रहे थे। उन्होंने यह भी लिखा है: "13 वीं शताब्दी के दासों के समान राज्य की सीमाओं को बढ़ाने अथवा विद्रोहों को दबाने जैसी सेवा की अपेक्षा दासों

---

25. *"Other monarchs may have one or two sons, I have so many thousand sons who will be the heirs of my dominion, and who after me, will take care to preserve my name in the khutba throughout the territories."*

- Elliot and Dowson : History of India As Told by Its Own Historians, Vol. II

ने राजकोष को रिक्त करने में योगदान दिया।"[26] फिरोज तुगलक की मृत्यु के साथ-साथ इस प्रथा के विनाश का युग प्रारम्भ हुआ।

हिन्दू समाज –

तद्युगीन समाज में वर्ण-व्यवस्था का स्वरूप विकृत हो चुका था। मुस्लिम समाज की तरह हिन्दू समाज भी कई जातियों और उपजातियों में विभाजित था। जाति-व्यवस्था अत्यन्त जटिल हो गयी थी और समाज में अन्धविश्वास, रूढ़ियाँ और अस्पृश्यता की भावना फैल गयी थी। मार्कोपोलो ने कहा कि- 'हिन्दू अन्धविश्वासी थे। वे जादू-टोना, अन्धविश्वास और ज्योतिष में पूर्ण विश्वास करते थे। अलबरूनी ने भी लिखा है: "उनका दम्भ एवं आत्मप्रवंचना इतने बढ़े हुए हैं कि यदि कोई उनको खुरासान या फारस में किसी विज्ञान या विद्वान के विषय में बतलाता है तो वह उसको मूर्ख और झूठा समझते थे। विदेशियों से वह किसी प्रकार का विवाह अथवा खान-पान सम्बन्ध नहीं रखते थे।"

इब्नबतूता लिखता है कि हिन्दू गंगा में डूबकर आत्महत्या करना पवित्र कार्य समझते थे। साथ ही इस्लाम के अनुयायियों के भारत में आने के बाद हिन्दू समाज में पर्दा-प्रथा और बाल-विवाह जैसी कुप्रथाओं का सूत्रपात हुआ। सल्तनकालीन हिन्दुओं की स्थिति कदाचित् शोचनीय थी, क्योंकि तुर्कों का हिन्दुओं के प्रति व्यवहार अत्यन्त क्रूर एवं अत्याचारपूर्ण था। डॉ. श्रीवास्तव ने लिखा है: "हमारे देश के इतिहास के किसी भी युग में मानव-जीवन का इतना नृशंसतापूर्ण विनाश नहीं किया गया जितना कि तुर्क-अफगान शासन के इन 250 वर्षों में।" हिन्दू-महिलाओं

---

26. *"Far from serving the state by crushing its rebellion or advanc ing its frontier like the slaves of 13th century, they drained the state exchequer."*

-Mehendi Hussain.

पर तरह-तरह के अत्याचार किये गये और उन्हें दासियों का जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य किया गया। अलाउद्दीन खलजी के शासनकाल में हिन्दुओं पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये गये। उनके लिए अरबी घोड़े की सवारी करना वर्जित घोषित किया गया और अच्छे कपड़े पहनना निषेध कर दिया गया। हिन्दुओं की तत्कालीन दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए बरनी ने लिखा है: "उनकी (हिन्दुओं) स्त्रियों को जीविकोपार्जन के लिए मुसलमानों के यहाँ नौकरी करनी पड़ती थी।"[27] वास्तव में किसी भी युग में हिन्दुओं की इतनी दुर्दशा नहीं हुई जितनी कि सल्तनत काल में। यद्यपि अपनी हीन स्थिति के कारण उनमें निराशा की भावना व्याप्त हो गयी थी किन्तु उनका कभी भी नैतिक पतन नहीं हुआ। रशीबुद्दीन लिखता है: "वे स्वभावतः न्यायप्रिय हैं और अपने आचरणों में इसका त्याग नहीं करते।"

जाति-व्यवस्था -

भारत में जाति व्यवस्था का रूप अत्यन्त प्राचीन है। मध्य-युग भी इससे प्रभावित रहा। मध्यकालीन मुस्लिम समाज के सूक्ष्म अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मुसलमानों में भी आपस में पर्याप्त मतभेद था। तुर्क भारतीय मुसलमानों को आदर और सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते थे[28], अपितु उनके प्रति घृणा और द्वेष सदैव उनके हृदय में रहता था। भारतीय मुसलमानों को राजकीय सेवा में महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त नहीं किया जाता था।[29] साथ ही सुन्नी मुसलमान शिया धर्म के मानने वालों को भी हेय दृष्टि से देखते थे। हिन्दू समाज में चतुर्वर्ण व्यवस्था विद्यमान थी। किन्तु समय के साथ-साथ वर्ण और उद्योग-धन्धों के आधार पर समाज में

---

27. *-Mehendi Hussain, वही*
28. *वही*
29. *रायहन प्रथम मुसलमान (भारतीय) था, जिसे प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया था।*

अनेक जातियों और उपजातियों का उदय हो गया था। ब्राह्मण और क्षत्रियों को हिन्दू समाज के अन्तर्गत आदरणीय एवं सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। वैश्यों की स्थिति भी सन्तोषजनक थी। अलबरूनी का यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होता है कि ''वैश्यों को वैदिक मन्त्र सुनने की आज्ञा नहीं थी; और यदि कोई वैश्य वैदिक मन्त्र का उच्चारण कर भी देता था तो उसकी जीभ काट ली जाती थी।''[30] शूद्रों की स्थिति पहले की अपेक्षा और अधिक गिर गयी थी। समाज में तिरस्कृत-से वर्ग की असन्तोषजनक स्थिति का मुस्लिम धर्म-प्रचारकों ने पूरा-पूरा लाभ उठाया और उन्हें इस्लाम स्वीकार करने के लिए प्रोत्साहित किया।

भारतीय समाज में जाति-प्रथा अत्यन्त प्राचीन काल से विद्यमान है। मुस्लिम आक्रान्ताओं के भारत में प्रवेश से पूर्व भारतीय समाज अनेक वर्गों में विभक्त था। परन्तु खान-पान और विवाहादि में अनेक समस्याएँ थीं। मुसलमानों के आगमन से दिल्ली-सल्तनतकाल में जाति-प्रथा के सिद्धान्तों में उत्तरोत्तर जटिलता आनी प्रारम्भ हो गयी थी जिसके परिणामस्वरूप बन्धुत्व की भावना दुर्बल होने लगी। प्रो. यू. मी. घोषाल ने लिखा है कि ''शूद्र भी दो भागों में बँट गये थे, और जिन्हें अधिक हीन समझा जाता था उन्हें छूना वर्जित था।''[31]

सल्तनतकालीन सुलतानपुर में ब्राह्मणों की स्थिति एवं कार्य पूर्ववत था। ब्राह्मणों का एकमात्र कार्य पठन-पाठन था; परन्तु अब यह अनुभव किया गया कि एकमात्र अध्ययन-अध्यापन के द्वारा ब्राह्मणों का भरण-पोषण सम्भव नहीं है। अतः स्मृतियों में ब्राह्मणों द्वारा कृषि-कार्य से जीविकोपार्जन की व्यवस्था की गयी। इस्लामी शासकों के आगमन का एक प्रभाव यह भी पड़ा कि शूद्रों की स्थिति में कुछ सुधार हुआ। क्षत्रिय राजाओं ने युद्ध के साथ साहित्य में भी रुचि का प्रदर्शन किया।

---

30. *डॉ० खुराना, वही, पृ० 34*
31. *यू०सी० घोषाल, स्ट्रगल ऑफ इम्पायर, डॉ० खुराना की पुस्तक, म०का०भा० संस्कृति में उद्धृत।*

विग्रहराज चौहान और भोज परमार अपनी साहित्यिक प्रतिभा के लिए प्रख्यात थे। अलबरूनी ने तो यहाँ तक लिखा है कि "वैश्यों ने कृषि-कार्य को त्याग दिया था और वे युद्ध एवं राजकार्य में भाग लेने लगे थे।"[32] परन्तु यह वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होती है।

विभिन्न जातियाँ–

सल्तनत काल में वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था में परिवर्तित हो चुकी थी। जातियों की भी उपजातियाँ बन गयी थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों के भी कर्मानुसार/क्षेत्रवार भिन्न-भिन्न नाकरण हो चुका था। इसी समय कायस्थ नामक जाति का अभ्युदय हुआ जो लेखन मे रत थी। जिनका विवरण निम्नलिखित हैं-

ब्राह्मण– सम्पूर्ण भारत की भांति सुलतानपुर मे भी ब्राह्मण सर्वाधिक पूज्य थे। सुलतानपुर (अवध एवं जौनपुर) में गर्ग, गौतम एवं शांडिल्य गोत्र धारी ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य ब्राह्मण वर्णीय जाति अस्तित्व में थी। शुक्ल, मिश्र, तिवारी, पाण्डेय, चौबे, पाठक, उपाध्याय आदि प्रमुख ब्राह्मण जातियाँ थी।[33] इस भू-भाग पर सरयूपारी एवं कान्यकुब्ज ब्राह्मण निवास करते थे।[34]

क्षत्रिय– सुलतानपुर जनपद के विभिन्न भागों मे क्षख्यिों के सोमवंशीय, चन्द्रवशीय, सूर्यवंशी क्षत्रियों के उपवर्ण परिहार, बघेल, राठौरा, तोमर, गौड़, वैश्य, चौहान, कुशवाहा, वक्षगोत्री क्षत्रिय निवास करते थे। अमेठी एवं दियरा क्षत्रियों का प्रमुख केन्द्र था।

वैश्य– प्राचीन भारतीय साहित्यों में वर्ण-व्यवस्था में वैश्यों को तृतीय स्थान प्राप्त

---

32. *अलबरूनी, इण्डिया-1*
33. *डॉ० गौरीशंकर तिवारी, उत्तर भारत में ब्राह्मणों की स्थिति, पृ० 64*
34. *डॉ० राधेशरण, मध्य कालीन भारत की सांस्कृतिक संरचना, पृ० 12*

था। सुलतानपुर के सन्दर्भ में भी यही युक्ति दृष्टिगत होती है। यह वर्ग आदिकाल से सम्पन्न रहा है। परन्तु यह वर्ग दिखावे मे विश्वास नहीं करता है। अतः दिखने में ये दीनहीन लगते थे। शेरशाह के शासन काल में इस वर्ग पर करारोपण अधिक कर दिया गया। परन्तु ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों से इनकी स्थिति सदैव अच्छी रही। वैश्यों के प्रमुख उपविभाजन गुप्ता, तेली आदि थे। दूसरे शब्दों में अर्थ व्यवस्था पर इनका नियन्त्रण था। 1206 से 1707 के मध्य सुलतानपुर जनपद के विभिन्न भागों में सप्ताहिक बाजारें लगती थी। दोस्तपुर, दियरा, इसौली, अल्देमऊ, अमेठी (रामनगर) आदि जनपद के प्रमुख व्यवसायिक केन्द्र थे। यह भी देखने को मिलता है कि इस काल के ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं शूद्र भी व्यवसाय आदि कर्म अपनाने लगे थे। परन्तु व्यापार पर अन्तिम आधिपत्य वैश्यों का ही था।

शूद्र– सम्पूर्ण भारत की भांति सुलतानपुर में भी शूद्रों को चतुर्थ एवचं निम्न स्थान प्राप्त था। 1206 से 1707 के मध्य शूद्रों को अस्पृश्य एवं अस्पृश्य रूप में हम सुलतानपुर जनपद मे भी देखते हैं। चमार, धोबी, कुम्हार, हेला आदि शूद्रों की प्रमुख जातियाँ थीं।

अस्पृश्य– ये वर्ग थे, जिन्हें छूना पाप समझा जाता था। जैसे–चमार, धोबी, हेला आदि। अस्पृश्य हेय तो थे, परन्तु उन्हें छुआ जा सकता था। जैसे कुम्हार, लुहार, नाई आदि।

भारत में मुसलमानों के प्रवेश के साथ–साथ उनकी सामाजिक व्यवस्था में भी परिवर्तन आया। मुस्लिम समाज में सर्वाधिक प्रतिष्ठित वर्ग विदेशी मुसलमानों का था जो विभिन्न विशेषाधिकारों से युक्त थे। राज्य में बड़े और सम्मानित पदों पर इनका एकाधिकार था। बड़ी–बड़ी जागीरों के ये स्वामी थे और समाज में इन्हें श्रेष्ठ स्थान प्राप्त था। परन्तु यह वर्ग स्वयं भी अनेक उपवर्गों में विभक्त था। तुर्क, ईरानी, अरब, अफगान और अबीसीनियन इनकी अनेक शाखाएँ थीं, तेरहवीं सदी तक तुर्कों की श्रेष्ठता बनी रही और तदुपरान्त खलजियों को महत्व प्राप्त हुआ, परन्तु सभी

मुसलमान खान-पान और विवाहादि में एक दूसरे से संयुक्त थे। ये मुसलमान राजधानियों में ही निवास करते थे। सुलतानपुर मे इसकी उपस्थिति नगण्य थी।

समाज में दूसरा वर्ग भारतीय मुसलमानों का था जो या तो हिन्दू धर्म से इस्लाम में दीक्षित हुए थे अथवा इसी प्रकार से परिवर्तित मुसलमानों की सन्तान थे। विदेशी मुसलमान इन्हें सदैव घृणा की दृष्टि से देखते थे। इन्हें मुस्लिम समाज में समानता के आधार पर समान अधिकार प्राप्त नहीं थे। तुर्की मुसलमान रक्त की शुद्धता पर विशेष बल देते थे, इसलिए हृदय से भारतीय मुसलमानों से नफरत करते थे। कालान्तर में इस स्थिति में कुछ परिवर्तन हुआ और भारतीय मुसलमानों को राज्य में महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया जाने लगा। गुलाम मलिक काफूर खानेजहाँ मकबूल एवं तिलोक चन्द[35] आदि इस उदारता के स्पष्ट उदाहरण हैं।

विवाह प्रथा –

सामान्य रूप में हिन्दू अपनी ही जाति में विवाह करते थे परन्तु कभी-कभी अन्तर्जातीय विवाह भी किये जाते थे। स्मृतियों के अनुसार कलियुग में द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) को निम्न जाति की कन्या से विवाह करने की आज्ञा नहीं थी। परन्तु फिर भी समाज में इस प्रकार के विवाह प्रचलित थे। ब्राह्मण कवि राजशेखर का चौहान कन्या अवन्ति से विवाह का वर्णन प्राप्त होता है। अनुलोम विवाह की आज्ञा स्मृतियों में थी। विधवा-विवाह निषिद्ध था। बहुपत्नी-प्रथा थी। राजा एवं सामान्त अक्सर एक से अधिक पत्नी रखते थे। तलाक-प्रथा का हिन्दू समाज में प्रचलन नहीं था। डॉ. अल्तेकर ने लिखा है कि "पति भले ही नैतिक स्तर से गिर जाये और पत्नी के साथ दुर्व्यवहार करता हो, फिर भी तलाक की आज्ञा नहीं थी।"

---

35. *नीविल, सुलतानपुर ए गजेटियर, 1903, पृ० 137*

तत्कालीन सुलतानपुर में भी सजातीय विवाह को मान्यता प्राप्त थी।[36] यहाँ पर बहु पत्नी प्रथा प्रचलन में थी।[37] हिन्दुओं में विवाह परम्परागत रीति-रिवाजों के अनुसार किया जाता था। राजपूतों में स्वयंवर की प्रथा का प्रचलन था। सामान्यतः हिन्दू अपनी कन्या का विवाह बाल्यकाल में ही कर देते थे क्योंकि उन्हें मुसलमानों द्वारा अपनी कन्या के अपहरण का भय होता था।

स्त्रियों की स्थिति –

प्राचीन काल में समाज में स्त्रियों को अत्यधिक आदरणीय एवं सम्माननीय स्थान प्राप्त था[38]. परन्तु मध्य-युग तक आते-आते स्त्रियों की दशा में पतन होना प्रारम्भ हो गया था, फिर भी हिन्दू समाज में उन्हें आदरपूर्ण स्थान प्राप्त था। वे शिक्षा प्राप्त करती थीं, धार्मिक कार्यों में भाग लेती थीं। अनेक स्त्रियाँ शस्त्र चलाने और ललित कलाओं में पूर्ण रूप से योग्य थीं, परन्तु उनकी व्यावहारिक स्थिति पर टिप्पणी करते हुए अमीर खुसरो ने लिखा है कि "स्त्रियों का जीवन नियन्त्रित था। पुत्री के रूप में वह माता-पिता, पत्नी के रूप में पति और विधवा के रूप में अपने बड़े पुत्र के संरक्षण में रहती थीं।" बहुपत्नी-प्रथा के प्रचलन और विधवा विवाह पर अंकुश के कारण समाज में स्त्रियों का स्थान गिर गया था। सती-प्रथा का प्रचलन था। स्त्रियों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे अपने पति के शव के साथ सती हो जायें अथवा जीवनपर्यन्त भिक्षुणियों समान रहें। अलबरूनी ने लिखा है कि "विधवा का एकमात्र विकल्प सती होना था। विधवा होना पाप समझा जाता था।"

---

36. *सती प्रसाद, अमेठी राजवंशावली, अप्रकाशित*
37. *अधिकांशता सम्पन्न लोग एक से अधिक विवाह करते थे। यह परम्परा क्षत्रियों के अधिक प्रचलित थी।*
38. *मनुस्मृति-यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।*

खान–पान –

हिन्दू समाज में सामान्यतया लोग निरामिष भोजन करते थे। निरामिष भोजन का आशय शाकाहारी भोजन से है। सुलतानपुर में शाकाहारी वस्तुओं में यथा– चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का, सांवा, कोदों, उड़द, तिल, मूँग, अरहर, गेहूँ, चना, जौ, मटर, तिलहन एवं सब्जी आदि[39] का प्रयोग किया जाता था। इसका प्रमुख कारण बौद्ध,[40] जैन और वैष्णव धर्म का प्रभाव था जो अहिंसा के सिद्धान्त पर बल देते थे। पेलसर्ट ने लिखा है कि "हिन्दू माँस के स्वाद से अवगत नहीं थे। वे खूनयुक्त किसी वस्तु को नहीं खाते थे।" हिन्दू अपने रसोईघर की पवित्रता का विशेष ध्यान रखते थे और स्वच्छ बर्तनों का प्रयोग करते थे। परन्तु समय के साथ–साथ खान–पान में परिवर्तन हुआ। क्षत्रियों की रुचि सामिष भोजन में बढ़ने लगी थी। निम्न जाति के लोगों में माँस खाने का प्रचलन था। भारत के कुछ भागों में लोग मछली अत्यन्त चाव से खाते थे। बौद्ध धर्म में तन्त्रवाद के आगमन के बाद माँस खाने का प्रचलन हो गया था।

पाक–शास्त्र की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। विभिन्न त्यौहारों, उत्सवों और पर्वों के अवसर पर विभिनन व्यंजन तैयार किये जाते थे। दूध, घी और मक्खन का विशेष महत्व था। उच्च वर्ग के लोग ऐसे अवसरों पर मादक–द्रव्यों का भी सेवन करते थे। महिलाओं के लिए मद्यमान वर्जित था। हिन्दू निम्न वर्ग के लोग पीतल के बर्तनों का प्रयोग करते थे, जबकि धनिक वर्ग सोने व चाँदी के बर्तन प्रयोग में लाते थे। फलों का सेवन करने की भी प्रथा थी। साधारण स्थिति के लोग भी नारंगी, खीरा, ककड़ी, अमरूद्ध, आम व का सेवन करते थे।[41]

---

39. सुखनाथ सिंह, नवीन भूगोल, जिला सुलतानपुर, पृ० 16–17

40. आलार कलाम का निवास सुलतानपुर मे ही है, अतः बौद्ध से प्रभावित होना यहाँ के निवासियों का स्वाभाविक था।

41. सुलतानपुर गजेटियर, पृ० 72

मुस्लिम समाज में माँस का प्रयोग बहुतायत में होता था। सामान्य रूप मे गौ–माँस, बकरी, मछली, भेड़ और अन्य शिकारयुक्त चिड़ियों का माँस खाते थे'' तथा उन्हें स्वादिष्ट बनाने के लिए विभिन्न मसालों का प्रयोग करते थे। सूफी मतावलम्बी कुछ परिवार शाकाहारी होते थे। यद्यपि शरियत में शराब का पीना वर्जित था, परन्तु मुस्लिम समाज में इसका प्रचलन था।[42] लगभग सभी सल्तनतकालीन सुल्तान सुरा का सेवन करते थे। अलाउद्दीन खलजी के समय में शराब पर प्रतिबन्ध लगाने के प्रयास किये गये परन्तु लोग छिपकर इसका सेवन करते रहे। इब्नबतूता ने कहा है कि दिल्ली के आसपास गाँवों में जलाने की लकड़ियों में छुपाकर शराब लायी जाती थी। मुसलमानों में अफीम और पोस्त का भी प्रचलन था।

गरीब मुसलमान मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे परन्तु धनिक वर्ग सोने और चाँदी के बर्तन इस्तेमाल करते थे। तुलनात्मक दृष्टि से मुसलमान स्वच्छता की दृष्टि से हिन्दुओं से पिछड़े हुए थे और रसोई के नियमों का कठोरता से पालन नहीं करते थे। सभी लोग एक ही 'दस्तरखान' पर बैठ कर भोजन करते थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों अतिथि–सत्कार में विश्वास करते थे।

वेशभूषा व आभूषण –

वेशभूषा के क्षेत्र में भिन्नता के होते हुए भी दोनों सम्प्रदायों ने एक–दूसरे से पर्याप्त प्रेरणा ग्रहण की। उत्तर भारत में हिन्दू पुरुष धोती और पगड़ी तथा महिलाएँ साड़ी पहनती थीं। दक्षिण भारत में स्त्री व पुरुष दोनों लुंगी का प्रयोग करते थे। वस्त्र ऊनी, सूती व रेशमी होते थे।

सुलतानपुर के सामान्य वर्ग के मुसलमानों का पहनावा कमीज, पायजामा

---

42. *मुस्लिम शासक एवं पदाधिकारी शराब का पर्याप्त सेवन करते थे। अलाउद्दीन ने शराब निषेध का पर्याप्त प्रयास किया परन्तु वह पूर्ण रूपेण सफल नहीं हो पाया था।*

और अचकन था। लुंगी की भी परम्परा थी। उच्च वर्ग के लोग बेलबूटों से अंलकृत सुन्दर रेशमी वस्त्र धारण करते थे। स्त्रियां शरीर से चिपका हुआ पायजामा व कुर्ता (जम्फर) पहनती थीं। धार्मिक वर्ग से सम्बन्धित लोग एक कुर्ता व साफा पहनते थे। हिन्दू व मुसलमान दोनों ही आभूषण धारण करने का चाव रखते थे। सिर से लेकर पाँव तक विभिन्न प्रकार के आभूषणों को पहनने की परम्परा थी। स्त्रियाँ और पुरुष दोनों ही आभूषण धारण करते थे।[43] धनी वर्ग के आभूषण हीरे-जवाहरात और स्वर्ण के बनाये जाते थे जबकि निम्न वर्ग में चाँदी के आभूषणों का रिवाज था। आभूषणों के लिए नाक-कान में छिद्र करवाने के परम्परा प्रचलित थी।

आमोद-प्रमोद –

हिन्दू समाज में बसन्त, रक्षाबन्धन, होली, दीपावली, दशहरा आदि त्यौहार धूमधाम से मनाये जाते थे।[44] कट्टर मुस्लिम शासकों ने कभी-कभी इन त्यौहारों को प्रतिबन्धित करने का भी प्रयास किया परन्तु उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई। सुलतानपुर में खेलकूद, द्वन्द-युद्ध, शिकार, पशु-पक्षियों[45] के युद्ध और चौपण आदि मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। मुसलमान ईद, शब्बेरात और नौरोज[46] के त्यौहार को धूमधाम से मनाते थे। सुरापान भी मनोरंजन का ही एक साधन था। संगीत, नृत्य एवं नाटकों के द्वारा मन बहलाने की भी प्रथा थी। मुस्लिम धार्मिक संस्कारों में अकीका (चूड़ाकर्म), बिसमिल्लाह (मकतब), सुन्नत, विवाह आदि महत्वपूर्ण

---

43. *हार, करधनी, कर्णफूल, चूड़ी, बिन्दिया, सिन्दूर आदि प्रमुख अलंकारिक वस्तुएँ थी।*
44. *अकबर जैसा उदार शासक इन व्यवहारों को स्वयं मानता था। स्थानीय स्तर पर कभी-कभी हिन्दू एवं मुसलमान दोनों एक दूसरे के व्योहारों को मानते थे।*
45. *मलिक मुहम्मद जासयी की मृत्यु, शिकार खेलते समय पशु के धोखे के रूप में हुई थी।*
46. *अकबर नौरोज त्योहार अत्यन्त धूमधाम से मनाता था।*

थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों अन्धविश्वामी थे। जादू-टोनों, भूत-प्रेत और इन्द्रजाल में उनका विश्वास था। उपर्युक्त व्यवहार सुलतानपुर में भी सामर्थ्य के अनुसार हिन्दू एवं मुसलमान दोनों मानते थे।

सल्तनत-काल में दो विरोधी धर्मों एवं संस्कृतियों के मानने वाले व्यक्तियों को एक साथ रहने के अवसर प्राप्त हुए, और दोनों ने एक-दूसरे को किसी सीमा तक प्रभावित भी किया। निरन्तर सम्पर्क से समाज में खान-पान, वेश-भूषा और रीति-रिवाजों में भी कुछ परिवर्तन आया परन्तु सामान्यतया यह युग सामाजिक मूल्यों की गिरावट का था जिसके लिए इसे अन्धकारमय युग के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस काल में सुलतानपुर में भी हिन्दुओं ने धर्म परिवर्तन किया। अधिकांश धर्म परिवर्तन करने वाले क्षत्रिय एवं निम्नवर्ग के लोग थे। क्षत्रिय जाति से धर्म परिर्वतन करने वाले को खानजादा कहा गया।[47] ये अल्देमऊ, दोस्तपुर, दियरा, अमेठी एवं जायस के आसपास निवास करते थे।[48] निम्नजाति के लोग नाई, धुनिया आदि के रूप में मुसलमान बनाये गये।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि – समाज में इन्हें हिन्दू एवं मुसलमान दोनों हेय दृष्टि से देखते थे।

सल्तनत-काल में हिन्दुओं की स्थिति

तुर्कों के भारत में प्रवेश से पूर्व सुलतानपुर की जनता हिन्दू थी। सम्पूर्ण देश पर उनका राज्य था। सल्तनत-काल में भी अधिकांश भूमि के स्वामी हिन्दू ही थे। हिन्दू सामन्त धनी व समृद्धिशाली थे। राज्य की विभिन्न शाखाओं, विशेष रूप से वित्त-विभाग, पर उनका पूर्ण नियन्त्रण था। राजस्व अधिकारी, खुत, मुकद्दम और

---

47. *नीविल, सुलतानपुर : ए गजेटियर (1903) पृ० 137*

48. *वही, पृ० 137, 139, 170*

चौधरी सब हिन्दू थे। राज्य के प्रमुख अधिकारी क्षत्रिय[49] एवं दुकानदार भी हिन्दू बनिये थे। स्थानीय (सुलतानपुर के) शासक दिल्ली सुल्तान को कर देते थे।[50] तत्कालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों में यह वर्णन मिलता है कि हिन्दू मुल्तानी व्यापारियों से तुर्की सामन्त धन उधार लेते थे। परन्तु तुर्की शासन की स्थापना के कारण हिन्दुओं की महत्वपूर्ण स्थिति में परिवर्तन आ गया था। भारत में इस्लाम के प्रवेश के साथ दोनों धर्मों के मध्य वैमनस्य और ईर्ष्या की एक व्यापक दरार उत्पन्न हो गयी थी। यही प्रवृत्ति सुलतानपुर के शासक वर्ग एवं यहाँ की जनता के मध्य देखने को मिलती है।[51]

हिन्दू समाज जाति-व्यवस्था पर आधारित था। तुर्कों के आगमन के साथ ही इस व्यवस्था में और अधिक जटिलता आ गयी थी। तुर्कों की क्रूरता एवं काम-पिपासा से सुरक्षा के कारण हिन्दू समाज में बाल-विवाह एवं पर्दा जैसु कुप्रथाओं का जन्म हुआ। स्त्री-शिक्षा के अत्यन्त सीमित होने का एक प्रमुख कारण तुर्की शासन की स्थापना था। तत्कालीन सुलतानपुर जनपद भी इससे अछूता नहीं था।

सल्तनतकालीन राज्य एक मजहबी राज्य था जहाँ इस्लाम के अतिरिक्त अन्य धर्मावलम्बियों को कर देना पड़ता था। हिन्दुओं से 'जजिया' नामक एक धर्मिक कर वसूल किया जाता था जिसे वसूल करके मुसलमान अपने गौरवान्वित अनुभव करते थे। यदि कोई व्यक्ति इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लेता था तब उससे यह वसूल नहीं किया जाता था और उसे विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की जाती थीं। इस कर से बचने एवं स्वयं को सुरक्षित रखने के लिए अनेक हिन्दुओं ने अपना धर्म तत्कालीन सुलतानपुर मे भी परिवर्तित किया।[52]

---

49. *वैजनाथ त्रिपाठी, अमेठी राज्य के हिन्दी कवि, अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध, आगरा विश्वविद्यालय, 1970, पृ० 87*
50. *वही*
51. *सुलतानपुर डिस्ट्रिक, इलाहाबाद, 1903, पृ० 137*
52. वैजनाथ त्रिपाठी, वही

बरनी के अनुसार "अलाउद्दीन के समय में हिन्दुओं को उपज का पचास प्रतिशत भाग खिराज के रूप में देना पड़ता था।[53] इतना अधिक खिराज देने के बाद उसके परिवार के भरण-पोषण के लिए पर्याप्त अनाज नहीं बच पाता था। परन्तु सुल्तान इतने पर भी सन्तुष्ट नहीं था। उसने हिन्दुओं पर चरागाह, मकान व पशु-कर और लाद दिये थे।[54] सच तो यह है कि अत्यधिक करों के भुगतान के कारण हिन्दू वर्ग की स्थिति नितान्त दयनीय हो गयी थी, जिसका वणर्न लेनपूल ने इस प्रकार किया है: "हिन्दुओं की स्थिति राज्य में इतनी शोचनीय हो गयी थी कि वे न तो सवारी के लिए घोड़ा रख सकते थे, न शस्त्र रख सकते थे और न अच्छे वस्त्र पहन सकते थे और न ही जीवन की विलासिताओं का उपभोग कर सकते थे।"[55]

लेनपूल के मत का समर्थन करते हुए सर वुल्जले हेग ने लिखा है कि "सम्पूर्ण मुस्लिम राज्य में हिन्दू दरिद्र तथा विपन्न हो गये थे। राज्य में जिस वर्ग को पहले आदर प्राप्त था उन राजस्व एकत्र करने वाले हिन्दुओं की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी।" राजस्व वसूल करने वाले अधिकारियों की दयनीय स्थिति का वर्णन बरनी ने इस प्रकार किया है: हिन्दुओं की स्थिति इतनी दयनीय हो गयी थी कि खूत, मुकद्दम और चौधरी लोगों की स्त्रियाँ जीविकोपार्जन के लिए मुसलमानों के घरों में काम करने के लिए जाती थीं।

दिल्ली सल्तनत के अन्तर्गत हिन्दुओं पर किये गये अत्याचारों का एक स्पष्ट प्रतीक काजी का वह कथन है जो परामर्श के रूप में अलाउद्दीन को प्राप्त हुआ कि "इस्लाम धर्म के अनुसार हिन्दुओं को 'खिराज-गुजर' कहा गया है और उन्हें विरोध का अधिकार नहीं है। यदि कोई मुसलमान अधिकारी चाँदी माँगे तब उन्हें सोना भेंट

---

53. *लेनपूल, मध्यकालीन भारत, पृ० 73*
54. *वही*
55. *वही, पृ० 74*

करना चाहिए और यदि मुहास्मिल उनके मुँह में धूल झोंकना चाहे तो उन्हें बिना विलम्ब अपना मुँह खोल देना चाहिए।" काजी ने यह भी बताया कि खुदा स्वयं उन्हें हिन्दुओं के अपमान की आज्ञा देता है। उनके लिए मुस्लिम राज्य में केवल एकमात्र विकल्प इस्लाम को स्वीकार करना है अन्यथा उनका वध कर दिया जाये।[56] कमोवेश यही स्थिति सुलतानपुर में भी थी। यहाँ पर भी उनके ऊपर उपर्युक्त सभी कर आरोपित थे। अन्तर यह था कि- यहाँ के समस्त कर स्थानीय शासकों द्वारा प्राप्त किया जाते थे। अतः अत्याचार कम होता था। स्थानीय शासक दिल्ली को कर देता था।

सल्तनत-काल में हिन्दुओं को राज्य में कोई महत्वपूर्ण गौरवशाली पद नहीं दिया जाता था। सेना में सैनिक अथवा कोई निम्न पदाधिकारी का पद हिन्दुओं को दिया जा सकता था। महमूद गजनवी के समय से ही हिन्दुओं की सेना में भरती अन्य जाति के सैनिकों के साथ किराये के टट्टुओं के रूप में की जाती थी। सल्तनत काल में हिन्दुओं की स्थिति किसी भी प्रकार से सन्तोषजनक नहीं थी।

आधुनिक लेखकों में से कुछ लोगों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि सल्तनत-काल में हिन्दुओं की दशा उन्नत थी। डॉ. कुरैशी व मेंहदी हसन का मत है कि "तुर्की शासन में वे (हिन्दू) देशी राजाओं के शासनकाल से अधिक सुखी थे।" इस नवीन सिद्धान्त के समर्थन में जो अभिलेखन सम्बन्धी साक्ष्य प्रस्तुत किये गये हैं उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। यदि यत्र-तत्र एक दो हिन्दुओं का उदाहरण मिलता है जिनकी स्थिति तुर्की शासन के अन्तर्गत ठीक थी, तब मुस्लिम इतिहासकारों द्वारा रचित ग्रन्थों में से ऐसे हजारों उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिनमें हिन्दुओं पर किये गये सामाजिक दुर्व्यवहार एवं धार्मिक अत्याचारों का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। डॉ. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव का मानना यह है कि "दोनों (देशी व मुसलमान शासक) ही बुरे थे-प्रथम आर्थिक दुष्टिकोण से और द्वितीय धर्म व सम्मान की दृष्टि

---

56. *Eillioc and Dowson, History of India.*

से।"[57] यद्यपि केन्द्रीय सत्ता मे हिन्दुओं की भागीदारी लगभग न के बराबर थी। परन्तु स्थानीय शासक पदाधिकारी एवं सैनिक हिन्दू ही थे। सुलतानपुर की भर जाति सर्वाधिक लड़ाकू थी। इन्हीं का सफाया कर अमेठी गढ़ की स्थापना हुई थी।

कुछ विद्वानों ने यह भी वर्णन किया है कि तुर्की शासन के अन्तर्गत हिन्दुओं के लिए राजकीय सेवाओं के द्वार खुले हुए थे और कुछ हिन्दू उच्च पदों पर नियुक्त भी थे। हिन्दू, खुत, मुकद्दम व चौधरी स्थानीय क्षेत्रों में वंशानुगत राजस्व पदाधिकारी थे। उनके सहयोग के बिना शासन-कार्य चलाना सम्भन नहीं था। मुहम्मद बिन तुगलक के उदार शासन में रतन को छोड़ अन्य कोई पदाधिकारी नहीं था जो सम्माननीय पद पर नियुक्त हो। रतन का भी कालान्तर में कट्टर मुसलमानों द्वारा वध कर दिया गया था। अतः स्पष्ट है कि सल्तनत काल में सामाजिक प्रतिबन्ध एवं धार्मिक कट्टरता पराकाष्ठा पर थी। डॉ. श्रीवास्तव का यह भी मानना है कि रतन को भी सिन्ध का राजस्व पदाधिकारी नियुक्त किया गया था, सूबेदार नहीं; जैसा कि मेंहदी हसन ने सिद्ध करने का प्रयास किया है।

भारत में तुर्की शासन लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष चला। इस बीच विजय और दमन की प्रक्रिया निरन्तर जारी रही जिसके कारण हिन्दुओं को अनेकानेक दुःखों एवं कष्टों का सामना करना पड़ा। युद्धों के अवसर जहाँ हिन्दुओं का सामूहिक रूप से नरसंहार हुआ वहाँ उन्हें धर्म-परिवर्तन के लिए भी बाध्य किया गया। जो हिन्दू धर्म-परिवर्तन के लिए तैयार नहीं हुए उन्हें दास बनाकर बेच दिया गया। तैमूरलंग ने दिल्ली में प्रवेश करने से पूर्व एक लाख हिन्दू बन्दियों की हत्या करवा दी थी। वस्तुतः भारतीय इतिहास के किसी भी युग में मानव-जीवन का इतना नृशंतापूर्ण सर्वनाश पहले कभी नहीं हुआ जितना कि तुर्की शासन के इन 350 वर्षों में हुआ है।

सल्तनत काल में हिन्दुओं को केवल उच्च राजकीय पदों से ही वंचित नहीं

---

57. *लेनपूल, वही, पृ० 73*

किया गया अपितु उनके साथ राजनीतिक एवं सामाजिक कारणों से घृणापूर्ण व्यवहार भी किया गया। तुर्की शासन व सामन्त हिन्दू पत्नियाँ प्राप्न करने के आकांक्षी थे। वे हिन्दुओं को बाध्य करते थे कि वह अपनी कन्याओं का विवाह उनसे करें। विवाह से पूर्व इन लड़कियों को इस्लाम धर्म में दीक्षित कर लिया जाता था जिसके कारण हिन्दुओं को दोहरे अपमान का सामना करना पड़ता था। इतिहासकार बरनी ने लिखा है कि "बलबन हिन्दुओं का कट्टर शत्रु था और वह ब्राह्मणों को समूल नष्ट कर देना चाहता था।" ध्यातव्य है कि उपर्युक्त अधिकांश व्यवस्थाएँ शासक वर्ग एवं राजधानी क्षेत्र मे व्यवहार में थी। स्थानीय स्तर पर इस प्रकार का व्यवहार कम ही होता था। सुलतानपुर में तत्कालीन शासन व्यवस्था के अनुसार कर आरोपित थे। परन्तु उनका संकलन स्थानीय शासक एवं पदाधिकारी करते थे। निष्कर्षतः निर्धन ही सही, हिन्दुओं का जीवन नियमबद्ध एवं अनुशासित ही था।

मुगलकालीन समाज

मुगल शासक भारत में लगभग तीन शताब्दियों तक शासन करते रहे। इनमें से अधिकांश अपनी उदारता के कारण समन्यवादी नीति के पोषक थे जिससे भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा और मुगल संस्कृति विकास की ओर उन्मुख हुई। प्रो. श्रीराम शर्मा की मान्यता है कि "वह (मुगल) न तो शुद्ध मुस्लिम थे, न ही हिन्दू अपितु दोनों का सुन्दर समन्वय है।"

दिल्ली सल्तनत के समान मुगलकालीन समाज भी दो भागों में विभाजित था – (1) मुस्लिम समाज और (2) हिन्दू समाज।

---

61. *जाति व्यवस्था वही पुरानी थी, परन्तु उनका कार्यान्वयन कठोरता से किया जाने लगा था। तुलसीदास कृत रामचरित मानस में जाति व्यवस्था का व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया है। शबरी, नीलराज, जटायु आदि का राम से संयोग जाति व्यवस्था में सामंजस्य स्थापना की ओर संकेत करता है।*

चतुर्थ वर्ग में कारीगर, कृषक, सेवक, सिपाही और अन्यन्न छोटे दुकानदार और शिल्पी सम्मिलित थे। उनकी आर्थिक दशा अत्यन्त हीन थी। इनको बहुत कम वेतन मिलता था। सबसे दयनीय दशा दासों की थी जिनके जीवन में कोई आकर्षण नहीं था। उलेमा या धर्मशास्त्रियों का अलग से महत्वपूर्ण वर्ग था परन्तु ये कदाचित् फकीरों और कलन्दरों से अलग थे जो नगर के बाहर एकान्त में निवास करते थे, परन्तु उलेमा और फकीर अक्सर राजनीति में हस्तक्षेप करते थे।

मुगलकालीन मुस्लिम समाज में भारतीय मुसलमानों की दशा सम्मानजनक नहीं थी। राज्य में कोई भी महत्वपूर्ण पद उन्हें प्राप्त नहीं था। वे छोटे-मोटे कार्यों के द्वारा अपना जीवनयापन करते थे और विदेशी मुसलमानों की दया पर हीन जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य थे।

हिन्दू समाज –

सल्तनत काल की तरह मुगल काल में भी हिन्दू समाज विभिन्न जातियों और उपजातियों में बँटा हुआ था। परन्तु समय के साथ-साथ उनकी स्थिति में परिवर्तन आने लगा था। मुगल काल में हिन्दुओं को राज्य में बड़े पदों पर नियुक्त किया जाने लगा था।[58] अकबर के शासनकाल में कई हिन्दुओं को उच्च मनसबदार के पद पर नियुक्त किया गया था।[59] मुसलमानों के आगमन और निवास के कारण हिन्दू समाज में जाति-प्रथा का स्वरूप और भी जटिल हो गया था।[60] अस्पृश्य के स्पर्श मात्र से अपवित्र होने का विचार व्यक्ति को मानसिक रूप से परेशान कर देता था। हिन्दू समाज में मुस्लिम समाज की तरह दास-प्रथा का प्रचलन था।

---

58. *वही*
59. *अकबर के समय टोडरमल, मानसिंह, बीरबल आदि प्रमुख राज्य के पदाधिकारी थे।*
60. *मानसिंह का मनसब अकबर एवं जहाँगीर के शासन काल में राजकुमार के बाद सबसे अधिक था।*

समाज में ब्राह्मणों का सर्वाधिक सम्मान था। राजपूतों को सैनिक के रूप में ख्याति प्राप्त थी। मुगल शासक गुणों के आधार पर ब्राह्मणों, राजपूतों और कायस्थों को राज्य में महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त करते थे और ज्योतिषियों, कवियों और विद्वानों को उनकी योग्यतानुसार दरबार में सम्मान प्राप्त था। कार्य के आधार पर हिन्दू समाज में कई नवीन उपजातियों का उदय हुआ। अनेक धनी हिन्दू मुगल बादशाह और मुस्लिम अभिजात-वर्ग की नीति का अनुकरण करके विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे थे जिसके कारण हिन्दू समाज प्रायः गतिहीन हो गया था।

मुगलकाल (1526-1707) की सामाजिक स्थिति

धार्मिक एवं सामाजिक दृष्टि से मुगल-काल महान् अन्वेषण का युण प्रमाणित हुआ। सल्तनतकालीन सम्पर्क के कारण दोनों परस्पर विरोधी संस्कृतियों ने बहुत सीमा तक एक-दूसरे को प्रभावित किया। हिन्दू समाज में व्याप्त जाति-प्रथा के बन्धन शिथिल होने लगे। हिन्दू निम्न जाति एवं वर्ग से सम्बन्धित लोग इस्लाम के मिल्लत (भाईचारे) के सिद्धान्त से प्रेरणा प्राप्त करके इस्लाम की ओर आकर्षित होने लगे जिसके फलस्वरूप सामाजिक क्षेत्र में नवीन युग का आविर्भाव हुआ। मुगलकालीन उदार शासकों के काल में इस समन्वय की प्रक्रिया में द्रुत गुति से विकास हुआ। अकबर की धर्म-सहिष्णु एवं उदार नीति के परिणामस्वरूप हिन्दू-मुस्लिम एकता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी। उसने बिना किसी भेदभाव के हिन्दुओं को राज्य में ऊँचे-ऊँचे पद ही प्रदान नहीं किये अपितु हिन्दू राजकुमारियों से विवाह सम्बन्धा स्थापित करके इस सामंजस्य में और अधिक वृद्धि की। हिन्दू और मुसलमान छात्र एक ही विद्यालय में संस्कृत व फारसी दोनों का अध्ययन करते थे। फलतः दोनों संस्कृतियों का संगम और अधिक सुगम हो गया था। दोनों धर्मावलम्बियों के समन्वय का प्रतीत 'उर्दू' है क्योंकि इसी के माध्यम से लोग एक-दूसरे के विचारों को समझते थे। इस उदार परम्परा को जहाँगीर एवं शाहजहाँ ने भी काफी सीमा तक अक्षुण्ण बनाये रखा। औरंगजेब ने अपनी धर्मान्धता के कारण इस नीति का परित्याग

कर दिया और मुगल-साम्राज्य के पतन का मार्ग प्रशस्त किया तथा हिन्दू और मुसलमानों के बीच की खाई को फिर से चौड़ा कर दिया।[61]

मुगल काल की सामाजिक व्यवस्था का आधार जागीरदारी समाज था जिसका प्रमुख सम्राट स्वयं होता था। द्वितीय स्थान सम्राट के मनसबदारों का था जो राज्य के महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त थे। समाज में व्यक्ति के स्तर का द्योतक उसका 'मनसब' था। समस्त मनसबदार महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त होने के कारण धनी थे और विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। समाज में एक मध्यम वर्ग भी था। निम्न श्रेणी में सरकार कर्मचारी, किसान और छोटे-छोटे दुकानदार थे जिन्हें पर्याप्त परिश्रम के बाद भी न तो तन ढँकने के लिए कपड़ा उपलब्ध था और न ही भरपेट रोटी प्राप्त होती थी। इस प्रकार धनी एवं निर्धन के बीच विशेषाधिकारों की एक एसी दरार थी जिसे ढँकना सम्भव नहीं था।

वेशभूषा –

हिन्दुओं के वस्त्राभूषण पुरानी परम्परा पर आधारित थे।[62] मुगल काल में साधारण वर्ग के हिन्दू व मुसलमानों की वेशभूषा में समानता थी। प्रथम मुगल सम्राट बाबर ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि "श्रमिक, किसान और साधारण लोग अधिकतर नंगे रहते थे। वे केवल अपनी कमर के चारों ओर एक चिथड़ा लपेटे रहते थे जिसका एक भाग टाँगों के बीच से निकाल कर कमर में खोंस लेते थे जिसे वह लंगोटा कहते थे।" साधारणतया हिन्दू धोती और मुसलमान पायजामा पहनते थे। उच्च वर्ग के हिन्दू एवं मुसलमानों की वेशभूषा में अत्यन्त समानता थी। सोनी-चाँदी के कामदार कपड़े व सुन्दर कुलाहदार टोपी का रिवाज था। आइन-ए-अकबरी में

---

61. *जाति व्यवस्था वही पुरानी थी, परन्तु उनका कार्यान्वयन कठोरता से किया जाने लगा था। तुलसी कृत रामचरित मानस में जाति वयवस्था का विहंगम चित्रण हुआ है।*

62. *डॉ० के०एल० खुराना, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ० 42*

सलवार और चूड़ीदार पायजामा पहने जाने का भी वर्णन मिलता है। वस्त्रों के ऊपर कबा (अचकन) पहनते थे जो घुटनों तक नीचा होता था। धनी परिवारों में शाल का प्रयोग होता था।[63]

हिन्दू महिलाएँ साड़ी और अँगिया धारण करती थीं। मुसलमान स्त्रियों की वेशभूषा पायजामा, घाघरा, जाकेट व दुपट्टा थी। वस्त्र आर्थिक स्थिति के अनुसार सूती व रेशमी होते थे। मुस्लिम महिलाएँ घर से बाहर जाने पर बुर्का पहनती थीं।[64]

मुगल बादशाहों की पोशाक अत्यन्त आकर्षक एवं साजसज्जा से परिपूर्ण होती थी। तत्कालीन इतिहासकार अब्दुल कादिर बदायूँनी ने लिखा है कि मुगल सम्राट हुमायूँ व अकबर नक्षत्र के अनुकूल वस्त्र पहनते थे। अकबर की पोशाक के सम्बन्ध में मोंसरेट ने लिखा है: "अकबर बादशाह रेशम के कपड़ों पर सोने के काम से सुसज्जित वस्त्र पहनता था। उसका लम्बा चोगा टखनों तक को ढँक लेता था तथा वह मोती व सोने के जवाहरात पहनता था।"[65] कभी-कभी अकबर सिल्क की धोती भी धारण करता था। जहाँगीर एवं शाहजहाँ भी सुन्दर कामदार वस्त्रों को पसन्द करते थे परन्तु अन्तिम मुगल बादशाह शरियत के अनुसार सादी वेशभूषा को ही ध ारण करता था।

आभूषण-

मुगल काल में स्त्रियाँ और पुरुष दोनों ही आभूषण पहनते थे। स्त्रियाँ सर से लेकर पैर तक विभिन्न आभूषणों से अपने शरीर को लाद लेती थीं। अबुल फजल ने 'आइन-ए-मकबरी' में ऐसे 37 प्रकार के आभूषणों का वर्णन किया है जो स्त्रियाँ पहना करती थीं। कर्णफूल, बाली, चम्पाकली, बाजूबन्द, गजरा, चूड़ियाँ, कंगन,

---

63. *रामचरित मानस में उद्धृत।*
64. *आइने-ए-अकबरी, अबुल फजल कृत,*
65. *वही, लेनपूल की पुस्तक मध्यकालीन भारत में उद्धृत।*

गुलूबन्द, बिछुआं, नाक में फूल और लौंग आदि उस समय के कुछ प्रसिद्ध आभूषण थे। मुसलमान पुरुष हिन्दू पुरुषों की तुलना में आभूषण प्रेमी नहीं थे। हिन्दू हाथ में अंगूठी व कान में आभूषण पहनते थे। राजपूत राजा विभिन्न प्रकार के कण्ठहार धारण करते थे। औरंगजेब के अतिरिक्त समस्त मुगल शासक आभूषण प्रेमी थे।

स्त्रियों की स्थिति –

प्राचीन भारतीय समाज में नारी को सम्माननीय स्थान प्राप्त था। उसे 'अर्द्धांगिनी', 'अर्द्धस्वामिनी' और 'सहगामिनी' की उपाधियों से विभूषित किया जाता था। प्राचीन भारत में लोपामुद्रा, गार्गी, अपाला और घोषा आदि कुछ ऐसी विदुषी स्त्रियों का भी वर्णन मिलता है जिन्होंने वैदिक मन्त्रों की भी रचना की, परन्तु ए. एस. अल्तेकर के शब्दों में "समय के साथ-साथ समाज में नारियों का महत्व कम होता गया।"

भारत में मुस्लिम आक्रान्ताओं के प्रवेश के बाद स्त्रियों की स्थिति में पतन होना प्रारम्भ हुआ। काम-पिपासु तातारों ने स्त्रियों को केवल मनोविनोद का एक साधन स्वीकार किया। सल्तनत-काल से प्रारम्भ होकर यह प्रक्रिया मुगल-युग तक आते-आते पराकाष्ठा को प्राप्त हो गयी। बाल-विवाह, बहु-विवाह, सती-प्रथा और पर्दा-प्रथा के कारण समाज में स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी थी।

सती-प्रथा –

प्रत्येक युग में सती-प्रथा भारत में विद्यमान रही है। सम्पूर्ण मध्यकाल में यह प्रथा हमारे देश में प्रचलित रही, जिसके लिए दो कारण विशेष रूप से उत्तरदायी कहे जा सकते हैं। प्रथम, तातारों[66] की काम-पिपासा से सुरक्षा की भावना; और

---

66. *"His Majesty wore clothes of silk beautifully embroidered in gold. His Majesty s cloak comes down to his hose and boots cover his ankles completely and (he) wears pearls and gold jewellery".* *-Monserrate.*

द्वितीय, विधवा-जीवन की नारकीय यातनाएँ। अतः असहाय विधवा स्त्री सती होने का विकल्प सहज स्वीकार कर लेती थी। गर्भवती स्त्री पति की मृत्यु के बाद उस समय तक जीवित रहती थी जब तक उसके यहाँ कोई सन्तान उत्पन्न हो। तत्पश्चात् वह सती हो जाती थी। पति का शव यदि परिस्थितिवश प्राप्त नहीं हो पाता था तब पत्नी पति की किसी वस्तु के साथ सती हो जाती थी। कि जो स्त्री पति के साथ सती नहीं होती थी उसके पति को सम्पत्ति उसके बच्चों के नाम न करके उसके किसी सम्बन्धी को दे दी जाती थी। मुगल काल में शासकों ने इस प्रथा को नियन्त्रित करने का प्रयास किया था किन्तु पूर्ण सफलता नहीं मिली।

बहु–विवाह –

मुसलमानों में बहु–विवाह प्रथा का प्रचलन था। शरियत के अनुसार सन्नी मुसलमान चार स्त्रियों से विवाह कर सकता था और शिया मुतहा–प्रणाली (अस्थायी विवाह जो केवल निश्चित समय के लिए किया जाता था) के अन्तर्गत चार से भी अधिक विवाह करने के लिए स्वतन्त्र था। धार्मिक प्रतिबन्ध न होने के कारण उच्च और मध्यम वर्ग के लोग एक से अधिक पत्नियाँ रखते थे। बहु–विवाह प्रथा का समर्थन करते हुए मिर्जा अजीज कोका का कथन था कि एक व्यक्ति को चार विवाह करने चाहिए। पर्शियन स्त्री से बातचीत करने के लिए, खुरासानी से गृह–कार्य के लिए, हिन्दू महिला से बच्चों को खिलाने के लिए और एक सामान्य स्त्री से फटकारने के लिए, ताकि अन्य तीनों का चेतावनी मिलती रहे।

हिन्दुओं में सामान्यतया एक विवाह की प्रथा का प्रचलन था, परन्तु सामन्त वर्ग एवं राजा इसके अपवाद थे। राज–परिवार में कभी–कभी पत्नियों की संख्या बहुत अधिक होती थी (राजा मानसिंह कछवाहा की 1500 पत्नियाँ थीं)। हिन्दू एक विवाह करते थे और उसके चरित्रहीन होने के अतिरिक्त उसकी मृत्यु तक उसे नहीं छोड़ते थे। हिन्दू धर्मशास्त्रों में बहु-विवाह का कहीं खण्डन नहीं है परन्तु फिर भी हिन्दुओं ने इस प्रथा को आर्थिक कारणों से निरुत्साहित ही किया।

बाल–विवाह –

भारत में मुस्लिम आक्रान्ताओं के प्रवेश के कारण बाल–विवाह प्रथा का प्रचलन हुआ। तातारों की काम–पिपासा से रक्षा के लिए पिता का यह परम कर्तव्य हो गया था कि वह शीघ्रातिशीघ्र अपनी पुत्री का विवाह कर दे। मुकन्दराम ने लिखा है कि जो पिता अपनी पुत्री का विवाह 9 वर्ष की आयु में कर देता था वह भाग्यशाली और ईश्वर का कृपापात्र समझा जाता था। अकबर ने अपने शासन में बाल विवाह पर अंकुश लगाने के लिए विवाह की आयु भी निश्चित करनी चाही थी। राजपूतों में स्वयंवर की प्रथा का प्रचलन था। राजपूत नवयुवतियाँ स्वेच्छा से कई मनुष्यों में से एक को अपना पति चुनती थीं। दहेज प्रथा का प्रचलन था। धन के लालच में अनमेल विवाहों का भी प्रचलन था। अकबर ने इन्हें प्रतिबन्धित करने के प्रयास किये परन्तु आंशिक सफलता ही उसके हाथ लगी।

पर्दा–प्रथा –

प्राचीन भारत में पर्दे की प्रथा का प्रचलन नहीं था। डॉ. के. एम. अशरफ ने लिखा है: "पर्दे का परम्परागत रूप मुस्लिम शासन के समय से प्रारम्भ होता है। उच्च वर्ग के मुसलमानों और हिन्दुओं, दोनों में ही पर्दे का रिवाज था। मुसलमानों में यह प्रथा प्रारम्भ से ही प्रचलित थी परन्तु हिन्दुओं ने सुरक्षा की दृष्टि से इसे अपना लिया था जिससे नवयुवतियों के सतीत्व की रक्षा की जा सके। मुसलमान इस प्रथा का कठोरता से पालन करते थे। बदायूँनी ने इस सम्बन्ध में उदार अकबर के एक फरमान का वर्णन करते हुए लिखा है: "यदि कोई नारी बिना पर्दे के बाजार में दिखायी पड़े तो उसे वेश्यालय भेज दिया जाये और उसे वह धन्धा अपनाने दिया जाये।"[67]

मुस्लिम समाज में पर्दा अनिवार्य था। यदि कभी किसी कारण वश किसी

---

67. *तातार का व्यहार रामचरित मानस मे तुलसीदास ने अतातायी के रूप में किया है। यहाँ तातार का आशय मुसलमानों से है।*

महिला का पर्दा भंग हो जाता था तक उसे पति द्वारा त्याग दिया जाता था। अमीर खाँ (काबुल का गवर्नर) की पत्नी का पर्दा हाथी से जान बचाने के कारण टूट गया था, फिर भी उसने अपनी पत्नी का त्याग दिया था। मुगल युग में नूरजहाँ इस नियम का अपवाद थी। डॉ. बेनीप्रसाद ने लिखा है: "उसने पर्दा-प्रथा को तोड़ दिया और जनसाधारण के सम्मुख प्रकट होने में किसी प्रकार का संकोच नहीं किया।"[68] राजपूत महिलाओं की भाँति वह कुशल, युद्धप्रिय एवं आखेट प्रिय महिला थी। डॉ. यूसुफ हुसैन ने लिखा है कि "निम्न वर्ग की महिलाएँ भी अपने मुँह को ढँक कर चलती थीं।"

विधवा की स्थिति –

विधवा हिन्दू महिलाओं का जीवन अत्यन्त सादगीपूर्ण होता था। उन्हें अनेक प्रकार के बन्धनों में रहना पड़ता था। विधवा होना पूर्व जन्म के पापों का प्रतिफल स्वीकार किया जाता था। डेला वेला ने लिखा है: "विधवा पुनः विवाह नहीं करती थी। वह अपने सिर के बाल मुड़वा देती थी और पूर्णतया परित्यक्ता का जीवन व्यतीत करती थी। वह अन्य व्यक्तियों एवं अपनी दृष्टि में भी तिरस्कृत प्राणियों के समान जीवन व्यतीत करती थी।"[69] ऐसा वर्णन मिलता है कि कुछ निम्न जाति के व्यक्तियों में पुनर्विवाह का प्रचलन था। परन्तु मुगल-काल में माँ के रूप में स्त्री को

---

68. *"If a young woman was found running about the streets and bazars of the town, and while so doing did not veil herself of allowed herself to become unveiled... she was to go to the quar ters of the prostitution and take up the profession."*

Badaoni: Muntakhab-ul-Tawarikh.

69. *"She broke the purdah convention and did not mind to come out in public."*

राज्य एवं समाज में एक आदरणीय स्थान प्राप्त था।

मुगल–काल में हिन्दुओं की स्थिति

कुछ इतिहासकारों की मान्यता है कि मुगल-काल के अन्तर्गत औरंगजेब के शासन (1658-1707) को छोड़कर हिन्दुओं की स्थिति सुखमय थी। सल्तनतकालीन धार्मिक संकीर्णता एवं पक्षपातपूर्ण वातावरण से दूर हटकर यह युग समानता और धर्म-निरपेक्षता की ओर उन्मुख था। राज्य में समान अधिकार प्राप्त करके हिन्दू सुखमय जीवन व्यतीत करने लगे थे, परन्तु इससे विरोधी मत डॉ. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने व्यक्त करते हुए लिखा है कि "सम्पूर्ण मध्य-काल (1200-1803) में हिन्दू समाज गतिहीन बना रहा। वस्तुतः इस युग में हिन्दुओं का नैतिक व भौतिक पतन ही हुआ।"[70]

मुगल शासन के संस्थापक बाबर को यदि हम उदार शासक स्वीकार भी कर लें तब हुमायूँ के आदर्श भिन्न थे। उसमें धार्मिक संकीर्णता थी जिसका स्पष्ट प्रदर्शन बहादुरशाह के चित्तौड़ आक्रमण के अवसर पर हुआ। रानी कर्मवती की सहायता हुमायूँ इसलिए तुरन्त नहीं कर सका क्योंकि बहादुरशाह एक काफिर देश से युद्ध में उलझा हुआ था। अकबर निस्सन्देह उदार शासक था और उसके शासनकाल में हिन्दुओं को समानता के स्तर पर राज्य में महत्वपूर्ण पद प्राप्त थे, और वे अपने धर्म का पालन करने के लिए पूर्ण रूप से स्वतन्त्र थे। राजाज्ञा कहीं भी उनके मार्ग में बाध ाक नहीं थी। परन्तु उदार पिता के पुत्र के शासनकाल में कट्टरता का बीजारोपण हुआ। जहाँगीर की मृत्यु के बाद शाहजहाँ ने इसी परम्परा को बनाये रखा, परन्तु औरंगजेब के काल में हिन्दुओं की स्थिति में द्रुत गति से पतन होना प्रारम्भ हुआ। उसकी हिन्दू-विरोधी नीति ने मुगल-साम्राज्य को पतन की ओर धकेल दिया। औरंगजेब के समय में हिन्दुओं पर जो अत्याचार किये गये उनको दृष्टिगत करते हुए सर जदुनाथ सरकार ने लिखा है कि "मुगल काल के श्रेष्ठ युग में भी हिन्दुओं पर सांस्कृतिक व आध्यात्मिक प्रतिबन्ध लगा रहा और वे अपने अस्तित्व को असुरक्षित

अनुभव करते रहे।" डॉ. श्रीवास्तव का मानना है कि "मुगल काल के दमनकारी शासन का सबसे बुरा प्रभाव यह हुआ कि न तो हिन्दू सत्य कह सके और न ही लिख सके।"

सुलतानपुर के सामाजिक इतिहास का अध्ययन भी भारतीय इतिहास की भांति दो वर्गों में विभाजित किया जाना चाहिए। यह सत्य है कि सुलतानपुर पूणरूपेण कभी भी मुसलमानी सत्ता का केन्द्र नहीं रहा, परन्तु जौनपुर एवं अवध (अयोध्या) का पड़ोसी होने के कारण मुस्लिम संस्कृति से इसे भी दो चार होना पड़ा था। राजनीतिक घटनाक्रम में हमने देखा कि मुस्लिम शक्तियाँ सुलतानपुर के राजनीति को प्रभावित करती रहीं, उन्होनें कुछ भू-भागों को शासन संचालन केन्द्र के रूप में भी चयनित किया। कालान्तर मं वहीं स्थाई अधिवास बनाकर निवास करने लगे। कतिपय परिस्थितियों में हिन्दुओं ने भी धर्मान्तरण किया। यह भी उल्लेखनीय है कि मुसलमानों (अधिकांश मुस्लिम शासक) ने तत्कालीन हिन्दुओं पर शासकीय व्यवहार के अनुसार अत्याचार किया उसक असर सुलतानपुर की जनता पर पड़ना आवश्यक था।

सुलतानपुर में हिन्दू एवं मुसलमान लोग निवास करते थे। मुस्लिम शासक वर्ग होने के कारण स्वयं को श्रेष्ठ समझते थे। यह तथ्य सुलतानपुर के संदर्भ में भी ग्राह्य है। उपर्युक्त अवधि में सम्पूर्ण देश के मुसलमानों की भांति सुलतानपुर में भी जाति व्यवस्था प्रचलन में नहीं थी। परन्तु मुसलमान शिया एवं सुन्नी में बँटे हुए थे। भारतीय मुसलमान (परिवर्तित) शरीयत के अनुसार तो बराबर थे, परन्तु उन्हें विशुद्ध मुसलमान हेय समझते थे। मुसलमानों को उनकी स्थिति के अनुसार- विदेशी मुसलमान, भारतीय मुसलमान एवं दास के रूप में स्वीकारना उचित होगा। विदेशी मुसलमान भी शासक वर्ग सामन्त और अमीर उलेमा, मध्यम वर्ग एवं जन साधारण के रूप में वर्गीकृत थे। प्रत्यक्ष या परोक्ष सुलतानपुर में भी इनकी उपस्थिति विवेच्य काल में दृष्टिगत होती है। परन्तु मध्यम वर्ग एवं जन साधारण अधिकाधिक

संख्या में यहाँ निवास करते थे। सामान्य मुसलमान भी हिन्दुओं की भाँति शोषित था। वह भी अच्छा वस्त्र एवं भोजन प्राप्त करने में सफल नहीं हो पा रहा था। जजिया एवं धर्मयात्रा कर के अतिरिक्त मुसलमानों को भी कर देना पड़ता था।

सल्तनत काल में दास प्रथा प्रचलन में थी। मुस्लिम समाज में खरीदे हुए, दान अथवा उपहार में प्राप्त, युद्ध बन्दी दास एवं आत्म विक्रेता दास प्रचलन में थे। यद्यपि 'दास' व्यवस्था की निन्दा प्रत्येक काल में की गयी है, तथा उनके प्रति अनादरपूर्ण व्यवहार किये जाने का उल्लेख है, तथापि सल्तनत काल मे दासों को पर्याप्त सम्मान प्राप्त था। ऐबक, इल्तुतमिश, कुबाचा आदि दास ही थे। अवध में इस काल में एक दास की नियुक्ति सूबेदार के रूप में की गयी थी। शाही दासों की स्थिति सूबेदार से अच्छी होती थी।

सल्तनत काल में हिन्दुओं की स्थिति अत्यन्त खराब हो चुकी थी। जाति, वर्ण-व्यवस्था का स्वरूप भी बहुत विकृत हो चुका था। जातियों की अनेक उपजातियाँ अस्तित्व में थी। यह व्यवस्था सुलतानपुर में दृष्टिगत होती है। जादू-टोना एवं कर्मकाण्ड अत्यन्त दुरूह रूप धारण कर चुका था। धर्मार्थ आत्महत्या, बाल-विवाह, पर्दाप्रथा प्रभृति कुप्रथाएँ प्रचलित थीं। इसके मूल में मुसलमानों का हिन्दुओं पर अत्याचार उत्तरदायी था। सल्तनत काल में हिन्दू लोगों के पास खाने के लिए अन्य एवं पहनने के लिए कपड़े भी उपलब्ध नहीं हो पा रहे थे। इतनी दयनीय स्थिति का कारण उन पर आरोपित विविध प्रकार के केन्द्रीय एवं स्थानीय शासकों के कर थे। यहाँ तक कि जमींदार एवं अमीरों के घर की स्त्रियाँ भी मुसलमानों के यहाँ घरेलू काम करने जाती थीं।

हिन्दुओं में ब्राह्मणों को सर्वाधिक आदरणीय स्थान प्राप्त था। शूद्र की स्थिति अत्यन्त निम्न थी। तत्कालीन सुलतानपुर में ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों एवं शूद्रों की अनकों जातियाँ अस्तित्व में आ गयी थी। शूद्रों के मध्य विभाजन स्पृश्य एवं अस्पृश्य शूद्र के रूप में दिखलायी पड़ता है। इस समय सुलतानपुर में कायस्थ नामक जाति

भी निवास कर रही थी। विवाह प्रायः समाजन जाति में ही किया जाता था, परन्तु अन्तर्जातीय विवाह भी प्रचलन में था। पति का स्थान परिवार में सर्वाधिक था। बहुपत्नी प्रथा इस युग में प्रचलन में थी। सुलतानपुर के सन्दर्भ में विवेच्च है कि – उच्चवर्गीय क्षत्रिय/राजपूत एवं सम्पन्न ब्राह्मण तथा वैश्य भी एक से अधिक पत्नियाँ रखते थे। यहाँ पर स्त्रियों की स्थिति सामान्य थ। विधवा स्त्री सर्वाधिक हेय थी। माँ को परिवर में सम्मानित स्थान प्राप्त था। पुरुष प्रायः धोती–कुर्ता तथा स्त्रियाँ धोती, ब्लाऊज, पेटीकोट धारण करती थी। ब्लाऊज का आकार वर्नमान से थोड़ा अलग अगरखा (झुलवा) की भांति था। हिन्दू प्रायः शाकाहारी थे। क्षत्रिय एवं शूद्र माँस आदि का सेवन करते थे।

सुलतानपुर में सल्तनत काल में विविध मेले, तमाशे, द्वन्द युद्ध (नाग पंचमी के अवसर पर प्रत्येक गाँव मे किया जाने वाला) शिकार, पशु–पक्षियों के युद्ध आदि मनोरंजन के प्रमुख साधन थे।

यह उल्लेखनीय है कि सल्तनत काल की ही भाँति मुगलकाल में भी सुलतानपुर की सामाजिक व्यवस्था पूर्ववत थी। यह परिवर्तन अवश्य ही देखने को मिलता है कि– अधिकांश मुगलशासक हिन्दुओं के प्रति अपेक्षाकृत सल्तनत काल के अनुसार थे। अकबर, जहाँगीर एवं शाहजहाँ के शासनकाल में जजिया कर हिन्दुओं को नहीं देना पड़ता था। ऊनी, सूती, रेशमी वस्त्र इस युग में यहाँ भी धारण किये जाते थे।

तृतीय अध्याय

सुलतानपुर का आर्थिक इतिहास

(1206 ई0 से 1707 ई0 तक)

सुलतानपुर का आर्थिक इतिहास
(1206 ई० से 1707 ई० तक)

सुलतानपुर के आर्थिक इतिहास के अध्ययन के लिए भारत के सन्दर्भ में सामान्य आर्थिक सर्वेक्षण एवं सुलतानपुर से प्राप्त राजस्व के अलावा सुलतापुर के कृषि, पशुपालन एवं उच्चावचन का अध्ययन अपेक्षित है।

1206 ई० से 1707 ई० के मध्य सामान्य आर्थिक सर्वेक्षण–

मध्ययुगीन बादशाहों के भारत पर आक्रमण करने के अनेक कारणों में भारत की आर्थिक समृद्धि भी एक प्रमुख कारण था। उस समय भारत अपनी अपार धन–सम्पदा के लिए विख्यात था। शायद इसलिए प्रारम्भिक आक्रमणकारी महमूद गजनवी ने भारत पर सत्रह आक्रमण किये, यहाँ की धन–सम्पदा को लूटा, और मन्दिरों को ध्वंस किया तथा गजनी लौट गया। परन्तु मुहम्मद गोरी ने एक भिन्न उद्देश्य से भारत में प्रवेश किया। उसका उद्देश्य केवल धन लूटना ही नहीं था, अपितु वह स्थायी मुस्लिम राज्य की स्थापना का इच्छुक था। अतः उद्देश्यों में अन्तर के साथ–साथ नीतियों में भी परिवर्तन हुआ। विजयों, लूटपाट एवं हत्याकाण्ड से अलग कालान्तर में तथाकथित दास–वंश के शासकों के युग में व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योग–धन्धों के विकास की ओर भी ध्यान दिया गया।

बलबन सल्तनतकालीन सुल्तानों में प्रथम शासक था जिसने विस्तारवादी नीति को नहीं अपनाया। उसकी नीति सुदृढ़ीकरण की थी। शान्ति और व्यवस्था के इस युग में व्यापार और उद्योग–धन्धों के विकास की जो प्रक्रिया प्रारम्भ हुई, वह उत्तरोत्तर विकसित होती रही। आर्थिक साधनों से सम्पन्न मुस्लिम शासक विलास–प्रेमी और साजसज्जा प्रेमी थे, अतः उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए देशी उद्योग–धन्धों के साथ–साथ विभिन्न वस्तुओं के आयात को प्रोत्साहन मिला। विनिमय का साधन सिक्के थे, जो सोना, चाँदी व ताँबे के बने होते थे। मध्य–काल

में अनेक कारखाने बादशाहों द्वारा संचालित किये जाते थे।

आइन–ए–अकबरी में अबुल फजल ने भी कारखानों का वर्णन किया है। सत्रहवीं शताब्दी में बर्नियर ने मुगल राजधानी में अनेक कारखानों को देखा था जिनके सम्बन्ध में उसने लिखा है : "किले के अन्दर अनेक स्थानों पर बड़े कमरे हैं जो कारखानों अथवा कारीगरों की उद्योगशाला कहे जाते हैं। एक बड़े कमरे में कसीदा काढ़ने वाले कार्य में लगे हुए थे .... दूसरे में सुनारों को, तीसरे में रंगरेजों, चौथे में वार्निश करने वालों .... और अन्य कमरों में दर्जियों, मोचियों, सिल्क, जरी और बारीक मलमल वालों को कार्य करते देखा।"[1]

वस्त्र उद्योग –

सल्तनतकाल में वस्त्र उद्योग अत्यन्त उन्नत था। सूती, ऊनी व रेशमी तीनों प्रकार के वस्त्र बनाये जाते थे। सूती वस्त्रों के लिए कपास देश में ही उपलब्ध हो जाती थी। रेशम बंगाल से तथा ऊन पहाड़ी प्रदेशों से प्राप्त की जाती थी। समस्त प्रकार के वस्त्रों पर कढ़ाई वा कासीदाकारी का कार्य भारत के विभिन्न नगरों में किया जाता था। वस्त्रों पर रँगाई और छपाई का कार्य भी वस्त्र उद्योग से सम्बन्धित था। धनी व्यक्तियों के लिए निर्मित वस्त्रों और निर्धन लोगों के वस्त्रों में काफी अन्तर होता था। साटन, जरी व मलमल के स्थान पर वे मोटे सूती वस्त्रों का प्रयोग करते थे। उत्तर में दिल्ली वस्त्र–उद्योग का बड़ा केन्द्र था। अन्य प्रसिद्ध केन्द्रों में देवगिरि, बंगाल, ढाका, सुनारगाँव और खम्भात, जौनपुर की गणना की जाती थी। सूती वस्त्र उद्योग सुलतानपुर में भी सीमित मात्रा में प्रचलित था।

वारिसगंज (सुलतानपुर)

मुगलकाल में वस्त्र–उद्योग में आश्चर्यजनक विकास हुआ। भारत में

---

1. *डॉ० के०एल० खुराना, मध्य कालीन भारतीय संस्कृति, पृ० 51*

वस्त्र–उद्योग के उन्नत स्वरूप के सम्बन्ध में जॉर्ज फॉस्टर ने लिखा है: "सम्पूर्ण भारत में सर्वाधिक सुन्दर कपड़ा सोनारगाँव में बनाया जाता था। छींट बुरहानपुर, गोलकुण्डा व सिरोंज में तैयार की जाती थी।"[2] मुगलकाल में आगरा, **काशी एवं अवध,** फतेहपुर सीकरी, अमृतसर, कश्मीर और मुल्तान ऊनी वस्त्रों के लिए प्रख्यात थे। अकबर के उदार संरक्षण ने वस्त्र–उद्योग की उन्नति का मार्ग उन्मुख किया।

ग्रामीण एवं शहरी आर्थिक व्यवस्था –

तुर्क–अफगान आक्रमण के समय भारतवर्ष अत्यन्त समृद्ध एवं धनधान्य से परिपूर्ण देश था। **इसीलिए भारतवर्ष को सोने की चिड़िया के नाम से जाना जाता था।** भारत की आर्थिक सम्पदा से आकर्षित होकर अनेक आक्रमणकारियों ने यहाँ पर आक्रमण किये और यहाँ की अपार सम्पत्ति लूटकर अपने साथ ले गये परन्तु देश फिर भी आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न बना रहा। मध्यकालीन शासकों व सामन्तों का विलासितापूर्ण जीवन इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। विदेशी आक्रमणकारियों के बाद भी भारत में उत्पादन के साधन पूरी तरह से नष्ट नहीं हुए और न ही देश का आर्थिक ढाँचा चरमराया। इस आर्थिक सम्पन्नता के कारण ही इतिहास ने शाहजहाँ के काल को मध्यकाल का स्वर्णयुग लिखा है जिसमें उसके द्वारा निर्मित करायी इमारतों का विशेष योगदान है। वास्तव में मध्यकालीन अर्थव्यवस्था पूरी तरह से कृषि, लघु उद्योग-धन्धे, वाणिज्य और व्यापार पर निर्भर थी। तत्कालीन सुलतानपुर के आर्थिक व्यवस्था का मुख्याधार ग्रामीण जीवन (कृषि एवं कुटीर उद्योग था)

ग्रामीण जीवन –

मध्ययुग विलासिता का काल था। शासकों, सामन्तों और अमीरों का जीवन अत्यन्त वैभवपूर्ण और सम्पन्नता का जीवन था। वे शहरों में अत्यन्त शानदार जीवन

---

2. *डॉ० के०एल० खुराना, मध्य कालीन भारतीय संस्कृति, पृ० 51*

व्यतीत करते थे परन्तु गाँवों में रहने वालों की स्थिति सन्तोषजनक नहीं थी। कई बार तो मध्यकालीन शासकों ने शानदार इमारतों के निर्माण में इतना अधिक धन व्यय किया कि उसका बोझ व प्रभाव जनसाधारण पर पड़ा। नगरवासियों की तुलना में सुलतानपुर के ग्रामवासियों का जीवन सादा एवं कम खर्चीला था। निम्न श्रेणी के लोग चाहे वे ग्राम में रहते हों अथवा शहर में कदाचित् न तो सम्पन्न थे न तो सुखी। गाँव व नगरों में रहने वाले निम्न श्रेणी के लोगों तथा किसानों की स्थिति ऐसी ही थी जैसी आधुनिक समय में है। वे प्रायः छप्पर की झोंपड़ियों में रहते थे।

सम्पूर्ण मध्यकाल में गाँव के निवासी सादा जीवन व्यतीत करते थे। सम्राट जहाँगीर ने भी स्वयं अपनी आत्मकथा **'तुजुके-जहाँगीरी'** में जनसाधारण के मकानों के कच्चा होने का उल्लेख किया है।[3] पेलसर्ट[4] ने भी उनके सन्दर्भ में लिखा है : "दो चारपाइयों के अतिरिक्त उनके घरों में साज-सज्जा की सामग्री या तो बहुत कम है या बिलकुल नहीं।"

सुलतानपुर के मजदूर, किसान आदि बहुत कम वस्त्र धारण करते थे। बाबर ने अपनी आत्मकथा में साधारण श्रेणी के व्यक्तियों द्वारा पहने जाने वाले लंगोट का उल्लेख किया है। मीरबाकी के अयोध्या के समय अनेक सुलतानपुर के गाँव नष्ट कर दिये गये थे। अबुल फजल ने भी गाँव की गरीब जनता का वर्णन करते हुए अवध के स्त्री व पुरुषों द्वारा बहुत कम वस्त्र पहने जाने का उल्लेख किया है।

अबुल फजल ने लिखा है कि तिनकों की बनी बड़ी चटाई, कुछ सूती वस्त्र व खाना पकाने के चन्द मिट्टी के बर्तन ही उनका सामान था।

सुलतानपुर के लोगों का भोजन अत्यन्त साधारण था। वे चपाती, चावल

---

3. *तुजुके जहाँगीरी, डॉ० खुराना, वही पृ० 53 पर उद्धृत*
4. *डॉ० खुराना, वही, पृ० 53*

और खिचड़ी का प्रयोग करते थे। बहुत-से लोग एक समय भोजन करते थे। उनका जीवन अत्यन्त संघर्षमय था। अक्सर अमीर व सामन्त उनसे बेगार लेते थे और उन्हें अपने जीविकोपार्जन के लिए निरन्तर श्रम करना पड़ता था। **सर टामस रो** ने ग्रामीणों के शोषण के सन्दर्भ में लिखा है: "**भारतवर्ष में बड़े छोटों को लूटते थे और बादशाह सबको लूटता था।**"[5] मध्यकाल में जनसाधारण के हितों से सम्बन्धित योजनाओं की ओर कभी ध्यान नहीं दिया गया। शासकों ने अपना समस्त धन सैनिक शक्ति को सुदृढ़ करने में लगाकर गरीबों के हितों की पूर्ण अवहेलना की। सल्तनत कालीन सुलतानपुर के सन्दर्भ में उपर्युक्त तथ्य पूर्णतया तर्क संगत प्रतीत होते हैं।

गाँव में अधिकांश लोग कृषि कार्य पर निर्भर थे। समय-समय पर मध्यकालीन शासकों ने कृषि के विकास की ओर ध्यान दिया था अमेठी के राजाओं ने सिंचाई के अच्छे साधन जुटाये थे। जिसके कारण सम्पूर्ण मध्यकाल में कृषि की स्थिति खराब नहीं हुयी। परन्तु देश के राज्य कर्मचारियों ने गरीब किसानों का मनमाने ढंग से शोषण करके उनका उत्पीड़न किया और सुल्तानों ने भी कभी-कभी मनमाना लगान वसूल करके तथा अवांछनीय करों को वसूल करके उनको और अधिक विपन्न बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। सुलतानपुर के काफी नागरिक कर की अधिकता के कारण धर्म परिवर्तन का बाध्य हो गये।

मुगलकाल में सल्तनतकाल की तुलना में गाँवों की स्थिति में तुलनात्मक सुधार हुआ था। अकबर का व्यवहार ग्रामीणों के प्रति उदार था और राजा की ओर से उनकी स्थिति को सुधारने के लिए विशेष ध्यान दिया जाता था। सरकारी कर्मचारी ग्रामीणों के साथ सल्तनतकाल की भाँति बर्बरता का व्यवहार नहीं करते थे। किन्तु अकबर के बाद इस स्थिति में पुनः परिवर्तन आया और शाहजहाँ के

5. *डॉ० ईश्वरी प्रसाद, मध्यकालीन भारत, पृ० 61*

शासनकाल के अन्तिम वर्षों में पुनः राज्य कर्मचारियों व पदाधिकारियों द्वारा ग्रामीणों का उत्पीड़न होने लगा।

औरंगजेब के समय तक आते-आते किसानों की स्थिति और भी खराब हो गयी। जिसका उल्लेख करके श्रीवास्तव ने लिखा है: "औरंगजेब के शासनकाल में निरन्तर युद्धों व शासन व्यवस्था के निकम्मेपन के कारण कृषि उद्योग और व्यापार पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा था।"[6] परन्तु सुलतानपुर को औरंगजेब ने कर संग्रह मुक्त क्षेत्र घोषित कर दिया था।[7]

कृषि से सम्बन्धित ग्राम्य उद्योग

कृषि उत्पादन से सम्बन्धित अनेक कुटीर उद्योगों के गाँव में विकसित होने का वर्णन मिलता है। परन्तु इन कार्यों को सम्पादित करने वाले लोगों का सामाजिक स्तर एवं उपलब्ध सीमित पूँजी उन्हें निश्चित सीमा के अन्दर ही उन्नति करने का अवसर प्रदान करती थी। सुलतानपुर के उद्योगों में खाण्डसारी, सुगन्धित तेल, स्प्रिट और धम्मौर में मूर्ति कला एवं वंधुआ कला का पीतल उद्योग विशेष रूप से उल्लेखनीय है। गन्ने के रस, जौ व चावल के पानी से शराब बनाये जाने का उल्लेख भी मिलता है। धान के माध्यम से तरह-तरह के तेलों का बनाया जाना भी प्रचलित था।[8]

कुटीर उद्योगों में कढ़ाई व बुनाई एक उन्नतशील गृह उद्योग था और अन्य सूक्ष्म उद्योगों में टोपी बनाना, जूता बनाना, कृषि से सम्बन्धित यन्त्रों को बनाना, तथा हथियारों का बनाया जाना भी उल्लेखनीय है। अमेठी एवं अल्देमऊ लोहार व

---

6. *डॉ० खुराना वही, पृ० 54*
7. *बैजनाथ त्रिपाठी, अमेठी राज्य के हिन्दी कवि, शोध प्रबन्ध, आगरा विश्वविद्यालय, 1970, पृ० 87*
8. *डॉ० खुराना, वही, पृ० 73*

बढ़ई इस काल में व्यस्ततम व्यक्ति थे। चूंकि यह क्षेत्र राजपूतों के अधीन था। वे लड़ाकू थे, उनके लिए लोहे को पिघलाकर विभिन्न वस्तुएँ बनाने में लोहार पारंगत थे। बढ़ई कृषि सम्बन्धी कार्यों में प्रयोग किये जाने वाले औजारों को बनाने एवं यातायात के लिए तथा सामान ढ़ोने के लिए गाड़ी के निर्माण में निपुण थे। इस काल में सोने चाँदी एवं अन्य धातुओं के आभूषण बनाने वालों ने भी प्रसिद्धि हासिल कर ली थी। क्योंकि सभी वर्ग की महिलाएँ अपनी स्थिति के अनुसार आभूषणों का प्रयोग करती थीं। कृषि से सम्बन्धित उद्योगों के साथ-साथ अन्य कई उद्योगों का भी उदय हुआ जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कृषि से सम्बन्धित थे।

कृषि से सम्बन्धित एक अन्य प्रसिद्ध उद्योग पशुपालन था। कृषि कार्य हेतु किसानों को अनेक प्रकार के पशुओं की आवश्यकता होती थी, जिसके कारण वह पशुपालन करते थे। पशुओं को प्रयोग खेती का सहायक कर्मी व्यवसाय के रूप में किया जाता था। दूध देने वाले पशुओं को अपने व्यक्तिगत प्रयोग के साथ-साथ दूध विक्रय हेतु भी पाला जाता था। इस समय में पशुपालन की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। चूँकि प्राकृतिक विपत्तियों के कारण जब खेती नष्ट हो जाती थी तब पशु ही किसान के ज्यादा सहायक होते थे। सम्पूर्ण मध्यकाल में पशुओं के दाम कम थे और उनकी विभिन्न नस्लें प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थीं। यह उल्लेखनीय है कि सुलतानपुर में कृषि उपयोगी एवं दूध देने वाले पशु ही पाले जाते थे।

मूल्य

सल्तनकाल एवं मुगलकाल में सामान्यतया वस्तुओं के भाव कम थे, परन्तु कभी-कभी असाधारण परिस्थितियों में भाव अधिक हो जाते थे। जलालुद्दीन खलजी के समय में अनाज एक जीतल प्रति सेर था परन्तु मोहम्मद तुगलक के शासन में भीषण अकाल के कारण भाव 16 और 17 जीतल प्रति सेर हो गया था, परन्तु किसी व्यक्ति के भूखों मरने का वर्णन प्राप्त नहीं होता है। **अकबर के शासनकाल में भी वस्तुओं के भाव कम थे, परन्तु अलाउद्दीन के समय के भावों से अधिक थे।** एक

साधारण व्यक्ति की मासिक आय पाँच टंका प्रति मास होने पर भी वह सुविधापूर्वक निर्वाह कर सकता था। वस्तुओं के भाव कम होने के कारण मजदूर को दो दाम प्रतिदिन की दर से प्राप्त हो पाते थे तथा फिर भी वह सुगमता से जीवनयापन कर सकता था। इतिहासकार स्मिथ का मत है: "भूमिहीन अनुबन्धित मजदूर की स्थिति अकबर व जहाँगीर के समय में सम्भवतः आज से अधिक अच्छी थी।"[9]

अकाल

सल्तनकाल और मुगलकाल में समय-समय पर अत्यधिक अथवा न्यूनतम वर्षा के कारण अन्न उत्पन्न नहीं होता था। अत्यधिक मार-काट के कारण महामारियाँ फूट पड़ती थीं जिसके परिणामस्वरूप असंख्य लोग असमय ही काल का शिकार हो जाते थे। ऐसे अवसरों पर मुस्लिम शासकों ने राज्य की ओर से किसानों व गरीब जनता को समय-समय पर सहायता दी और अकाल-पीड़ित जनता की कठिनाइयों को कम करने का प्रयास किया। शासन की ओर से लगान माफ करके किसानों को ऋण दिया जाता था। सल्तनतकाल में खलजी-युग और तुगलक-युग में अकाल पड़ने के उल्लेख मिलते हैं। अकबर के सत्तारूढ़ होते ही 1555 – 56 ई. में एक भयंकर अकाल पड़ा। औरंगजेब के समय में भी अकाल पड़ने का विवरण मिलता है परन्तु ये तुलनात्मक दृष्टि से कम भयानक थे। शाहजहाँ के शासनकाल (1630-32 ई.) में दक्षिण में एक भयानक अकाल पड़ा जिसका वर्णन **अब्दुल हमीद लाहौरी ने किया:**[10] **"मनुष्य एक दूसरे को खाने लगे। पुत्र के प्रेम के स्थान पर उसके माँस को अधिक अच्छा समझा जाता था।"** मुस्लिम शासक इन प्राकृतिक एवं मानवजनित कठिनाइयों का कोई स्थायी हल नहीं ढूँढ़ सके।

---

9. *V.A. Smith, "The hired landless labourer in the time of Akbar and Janangir had probably more to eat than he has now".*

10. *डॉ० खुराना, वही, पृ० 74*

मुद्रा एवं बैकिंग

मध्यकाल में विनिमय के साधन सिक्के थे। इस युग में अनेक प्रकार के सिक्कों अथवा मुद्राओं का प्रचलन था। ये सिक्के सोने, चाँदी अथवा ताँबे के बनाये जाते थे, परन्तु कुछ राज्यों में (बंगाल) कौड़ी का भी प्रचलन था। गुप्त-शासन के पतन के बाद कौड़ी विनिमय का प्रमुख साधन बन गयी थी। सल्तनतकालीन सुल्तानों ने मुद्रा-सुधार सम्बन्धी अनेक प्रयास किये। इल्तुतमिश ने नवीन मुद्रा के प्रचलन के द्वारा मुस्लिम राज्य को स्थायित्व प्रदान किया। उसने चाँदी के टंके एवं दौकानी नामक एक छोटे सिक्के को चलाया था। तुगलककाल में मोहम्मद तुगलक ने मुद्रा के क्षेत्र में एक नवीन प्रयोग किया किन्तु टकसाल के अधिकारियों की लापरवाही के कारण उसकी सांकेतिक मुद्रा के प्रचलन की योजना असफल हो गयी। मुद्रा के क्षेत्र में किये गये नवीन प्रयोग के कारण इतिहासकारों ने मोहम्मद तुगलक को **'धनवानों का राजकुमार'** की उपाधि से विभूषित किया था।[11] सल्तनत काल में सुलतानपुर मुद्रा टकसाल का केन्द्र था- राधेश्याम, मध्यकालीन समाज एवं प्रशासन।

मुगलकाल में शेरशाह और अकबर ने भी मुद्रा को नियमित करने का प्रयास किया था। अकबर महान् के शासनकाल में सोने, चाँदी व ताँबे के सिक्कों का प्रचलन था। प्रान्तीय राज्यों, जैसे अहमदाबाद, सूरत, पटना, **जौनपुर**, लाहौर और बंगाल में अलग-अलग टकसालें थीं। दिल्ली में एक केन्द्रीय टकसाल भी थी जिसके द्वारा सम्भवतः प्रान्तीय टकसालों पर नियन्त्रण स्थापित किया जाता था। इस समय भिन्न-भिन्न वजन एवं भिन्न-भिन्न कीमत के लगभग **26 प्रकार** के सिक्कों का प्रचलन था।

अकबर ने अपने शासनकाल में चाँदी का एक वर्गाकार सिक्का चलाया था जिसे **'जलाली'** कहा जाता था। **'दाम'** अथवा **'पैसा'** नामक एक अन्य सिक्का भी

---

11. *डॉ० खुराना, वही, पृ० 75*

इस समय प्रचलन में था। लेन-देन में सुविधा के लिए इस सिक्के को 25 जीतल में विभाजित किया गया था। यह सिक्का समान रूप से धनवान और निर्धन के प्रयोग में आता था। साम्राज्य का व्यापार सम्बन्धी हिसाब गोल 'मुहरों', रुपयों और दामों में होता था। मध्यकाल में टका नामक एक स्वर्ण मुद्रा भी प्रचलन में थी। **तुलनात्मक दृष्टि से अकबरकालीन मुद्रा को धातु की विशुद्धता, वजन की पूर्णता और कलात्मकता में 'सर्वश्रेष्ठ' स्वीकार किया जाता है।**

कर व्यवस्था-

राज्य के कार्यों के सम्पादन हेतु धन की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति करों के द्वारा की जाती है। **मध्यकाल में भी शासन की आय के साधन के रूप में कुछ कर लगाये जाते थे। कुछ कर मुस्लिम शरियत के अनुसार वसूल किये जाते थे।** तत्कालीन कर-व्यवस्था के अध्ययन से यह सरलता से अनुमान लगाया जा सकता है कि शासक उदार था अथवा अनुदार। कर वसूल करने की पद्धति भी सामान्यतः शासक की प्रवृत्ति पर निर्भर करती थी। मध्यकाल में अग्रलिखित चार कर वसूल किये जाते थे। इन करों के अतिरिक्त जो कर दिल्ली सल्तनतकालीन सुल्तानों अथवा मुगल-शासकों द्वारा वसूल किये जाते थे वे उनकी स्वेच्छाचारिता और निरंकुशता के प्रतीक थेः

1. **खम्स**
2. **जजिया**
3. **खिराज**
4. **जकात**

खम्स

'खम्स' शब्द संख्या का द्योतक है जिसका अर्थ 1/5 है। इससे तात्पर्य यह है कि सेना द्वारा आक्रमण के समय लूटी गयी सम्पत्ति का राज्य एवं सैनिकों में बँटवारा किया जाता था, जिसका अनुपात 1/5 व 4/5 होता था, अर्थात् लूट की कुल द

इसलिए लिया जाता है कि उन्हें मृत्यु दण्ड नहीं दिया जाता है। जजिया अदा करके गैर-मुस्लिम अपने प्राणों को खरीद लेते हैं।'' जजिया के सम्बन्ध में प्रो. यू. एन. डे की मान्यता है: ''प्रारम्भ में जजिया मुस्लिम राज्य में अपमान के प्रतीक, सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए क्षतिपूर्ति एवं सैनिक सेवा में मुक्ति के रूप में लिया जाता था, ... परन्तु बाद में इसके क्षेत्र को विकसित कर दिया गया और इसमें मूर्तिपूजकों को व काफिरों को भी सम्मिलित कर लिया गया। डॉ. आर. सी. त्रिपाठी की मान्यता है कि ''जजिया केवल काफिरों पर उनके कुफ्र के दण्ड के रूप में लगाया जाता था।''[13]

सर्वप्रथम जजिया कर मुहम्मद बिन कासिम ने लगाया था। कुरान के अनुसार मूर्तिपूजकों के लिए केवल दो विकल्प थे – या तो वह इस्लाम स्वीकार कर लें अथवा उनका वध कर दिया जाये। अपने देबल पर किये गये अभियान में मुहम्मद बिन कासिम ने इसी सिद्धान्त को अपनाया था। परन्तु उसके बाद उसने जजिया लगाने का विचार इसलिए किया था कि इस्लाम स्वीकार करने की अनिच्छुक अधिकांश हिन्दू जनता की हत्या के बाद शासन-कार्य कैसे सम्पादित होगा तथा शासन किस पर किया जायेगा। प्रारम्भ में जजिया वसूल करने में किसी अपमान अथवा बल का प्रयोग नहीं किया जाता था परन्तु बाद में इस कर के साथ अमानवीय व्यवहार और उत्पीड़न जोड़ दिया गया, जिसके कारण हिन्दू सदैव इस कर को अदा करने का विरोध करते रहे।

जजिया कर देने वालों को तीन श्रेणियों में बाँट दिया गया था:

1. **उच्च श्रेणी –**

इसमें वे लोग आते थे जिनकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी होती थी। इन्हें 48 दिरहम वार्षिक जजिया देना पड़ता था।

---

13. डॉ० खुराना, वही, पृ० 76

2. मध्यम श्रेणी –

ये सामान्य आर्थिक स्थिति के व्यक्ति थे। **इन्हें कर के रूप में 24 दिरहम** वार्षिक देने पड़ते थे।

3. निम्न श्रेणी –

तीसरी श्रेणी कम आय के लोगों की थी। इनसे **जजिया कर 12 दिरहम** वार्षिक वसूल किया जाता था।

डॉ. त्रिपाठी ने लिखा है: "धनी व्यक्ति वे हैं जिनके पास 10, 000 या इससे अधिक दिरहम हैं। निर्धन व्यक्ति वे हैं जिनके पास 200 दिरहम से कम हैं। इन दोनों वर्गों के बीच में मध्यम वर्ग के मनुष्य हैं। अबू यूसुफ के अनुसार निर्धन व्यक्तियों से अभिप्राय मजदूरों से है।[14]

मुस्लिम धर्मशास्त्रों के अनुसार जजिया एक न्यायसंगत कर था जो हिन्दुओं पर लगाया जाता था। परन्तु यदि इसे केवल साधारण कर के रूप में ही वसूल किया जाता रहता तब इसका इतना विरोध नहीं होता। इसके साथ संलग्न अत्याचार और हीनता की भावना के कारण यह कर हिन्दुओं पर एक बोझ था और तत्कालीन मुस्लिम शासकों की पक्षपातपूर्ण नीति एवं धार्मिक संकीर्णता का प्रतीक था। डॉ. श्रीवास्तव ने लिखा है: "यह स्पष्ट है कि जजिया पर धर्म की छाप लगी हुई थी। सम्पूर्ण मुस्लिम इतिहास के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह कहना अनुचित होगा कि जजिया धर्म-निरपेक्ष कर था।"[15]

---

14. *डॉ० खुराना, वही, पृ० 77*
15. *"It is obvious that Jaziya had religious colour about it. It will be too much in view of facts of history of the entire period to maintain that Jaxiya was a secular tax."*

खिराज –

यह भूमि कर के रूप में वसूल किया जाने वाला कर था, जो **हिन्दू और मुसलमान** दोनों से वसूल किया जाता था। यह कर भिन्न-भिन्न शासकों के काल में अलग-अलग दर से वसूल किया जाता था। किसान इसे नकद अथवा अनाज, किसी भी रूप में राजकीय कोष में जमा कर सकता था। जब स्थिति सामान्य रही तब मध्यकालीन शासकों ने साधारणतः खिराज उपज के 1/3 भाग के रूप में वसूल किया; किन्तु ऐसा भी वर्णन मिलता है कि अलाउद्दीन ने इसे बढ़ाकर 1/2 भाग कर दिया था। मोहम्मद तुगलक के शासन में दोआब के किसानों पर खिराज बढ़ाये जाने का भी वर्णन मिलता है, किन्तु बाद में किसानों की दयनीय स्थिति को देखकर उसे क्षमा कर दिया गया था तथा किसानों को तकावी ऋण और आर्थिक सहायता देकर उन्हें फिर से बसाने के प्रयास किये गये थे। परन्तु किसी भी दशा में खिराज 1/2 भाग से अधिक वसूल नहीं किया जा सका था।

जकात –

यह **केवल मुसलमानों से वसूल किया जाने वाला धार्मिक कर था,** जिसकी वसूलयाबी के निश्चित सिद्धान्त थे; अर्थात्

1. जकात बलपूर्वक वसूल नहीं किया जाता था।
2. अल्पवयस्क, दास, विक्षिप्त, ऋणी एवं गैर मुसलमान इस कर से मुक्त थे।
3. 'निसाब' (Taxable minimum) से कम होने पर यह कर नहीं लिया जाता था।
4. आवश्यक वस्तुएँ कपड़ा, मकान, भोजन, पुस्तकें, सवारी, नौकर, कृषि के लिए पशु, फर्नीचर व आभूषण (सोने-चाँदी के अतिरिक्त) इस कर से मुक्त थे।

इसके अतिरिक्त, **'सदका कर'** (Sadaqa Tax) का भी उल्लेख स्मृतिकारों ने किया है जो प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सम्पत्ति पर लगता था। यह नकद अथवा वस्तु किसी

भी रूप में वसूल किया जा सकता था। 20 दिरहम से कम कीमत की वस्तुएँ कर से मुक्त थीं। सोने पर 20 मिसकल और चाँदी पर 200 दिरहम 'निसाब' था। 'सदका' करों में से एक कर '**टिथे**' (Tirhe) भी था। यह खिराज के समान न होकर उससे भिन्न था। 'टिथे' भूमि की वास्तविक उपज पर लगता था और खिराज भूमि की अनुमनित उपज पर लगाया जाता था। 'टिथे' विशेष परिस्थितियों में क्षमा भी किया जा सकता था, किन्तु 'खिराज' हर स्थिति में देय होता था। 'टिथे' से प्राप्त आय को धार्मिक कार्यों में ही व्यय किया जाता था, जबकि 'खिराज' को किसी भी मद में खर्च किया जा सकता था।

उपर्युक्त कर-व्यवस्था के अवलोकन से स्पष्ट है कि मध्यकालीन शासकों ने राज्य की आवश्यकतानुसार जनता पर विभिन्न कर लगाये थे; परन्तु खम्स, जजिया, खिराज व जकात राज्य की आय के प्रमुख साधन थे। यह भी उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त कर आलोच्य काल में सुलतानपुर पर भी आरोपित होते थे, परन्तु स्वतंत्र रूप से उनकी वास्तविक स्थिति का परिज्ञान नहीं होता। चूंकि यह क्षेत्र राजपूतों के नियंत्रण में था अतः वे इस कर का संग्रह नहीं करते थे।

अकबर के शासन काल में सुलतानपुर से प्राप्त राजस्व

बेलहरी महल–

आइन–ए–अकबरी के अनुसार – 'बेलहरी महल में कुल 15,859 बीघा[16] भूमि पर खेती होती थी तथा यहाँ से 8,15,8,31 दाम[17] राजस्व मुगल सम्राट अकबर को प्राप्त होता था।

---

16. *अबुल फजल, आइन–ए–अकबरी, भाग–1, अंग्रेजी अनुवाद एच ब्लोचमान (कलकत्ता, 1939) पृ० 438*

17. *वही*

किसनी महल :-

अबुल फजल के अनुसार किसनी महल में 25,674 बीघा[18] भूमि पर खेती होती थी जिनसे 13,39,286 दाम[19] राजस्व अकबर को प्राप्त होता था।

सुलतानपुर महल–

सुलतानपुर महल एक बड़ा महल था जिसके 80,154 बीघा[20] भूमि पर कृषि कार्य किया जाता था। यहाँ से 1600,741 दाम[21] राजस्व मुगल सम्राज्य को प्राप्त होता था।

भदॉव महल–

भदॉव में कृषि योग्य भूमि 44,401 बीघा[22] थी और यहाँ से 3,85,008 दाम[23] राजस्व की प्राप्ति होती थी।

इसौली महल –

इसौली महल में 16,70,093 बीघा[24] जमीन थी। इस कृषि योग्य भू–भाग से 42,08,046 दाम[25] राजस्व की प्राप्ति होती थी।

18. *अबुल फजल, वही, भाग–2 पृ० 185*
19. *वही*
20. *वही*
21. *वही*
22. *वही*
23. *वही*
24. *वही, पृ० 188*
25. *वही*

अमेठी महल –

अमेठी महल में कुल 1,17,381 बीघा[26] कृषि योग्य भूमि थी, यहाँ से 30,76,480 दाम[27] राजस्व की प्राप्ति मुगल साम्राज्य को होती थी।

अकबरी महल (परगना जायस) –

अकबरी महल में कुल 9,456 बीघा[28] कृषि योग्य भूमि थी। यहाँ से 5,14,909 दाम[29] राजस्व की प्राप्ति मुगल साम्राज्य को प्राप्त होती थी।

कथोड़ महल–

कथोड़ महल आरम्भ में अकबरी महल का ही अंग था। अतः इसका राजस्व अकबरी महल के साथ ही मुगल साम्राज्य को प्राप्त होता रहा होगा।[30]

चाँदा परगना (महल)–

चाँदा परगना में कुल 17,590 बीघा[31] कृषि योग्य भूमि थी। यहाँ से कुल 9,89,286 दाम[32] राजस्व की प्राप्ति अकबर को होती थी।

26. *अबुल फजल, वही, भाग–2 पृ० 188*
27. *वही*
28. *वही, पृ० 176*
29. *वही*
30. *वही*
31. *अबुल फजल, वही, भाग–1, पृ० 576*
32. *वही*

अल्देमऊ परगना –

यद्यपि अल्देमऊ परगना[33] एक बड़ा परगना था परन्तु इसके भू–भाग एवं राजस्व का उल्लेख आइने अकबरी में नहीं हुआ है।

सुलतानपुर का उच्चावचन एवं प्रमुख व्यवसाय

भू–तत्त्व–

मिट्टी कृषि का मुख्य आधार होती है, जो जल तथा वायु के संयोग से पौधों को पनपने में सहायता प्रदान करती है, जिससे न केवल मनुष्य को अपितु पशुओं को भी भोजन प्राप्त होता है। सम्पूर्ण सुलतानपुर अमेठी क्षेत्र की मिट्टी गंगा–गोमती दोआब का अंश होने के कारण समतल एवं उपजाऊ तो है।[34] किन्तु यहाँ ऊसर की भी कमी नहीं है। सुलतानपुर जनपद के अखण्ड नगर, दोस्तपुर, कादीपुर, बल्दीराय, मुसाफिरखाना, गौरीगंज एवं अमेठी आदि उस बाहुल्य क्षेत्र है।[35]

सम्भवतः अमेठी क्षेत्र में उसर सर्वाधिक है। अमेठी के ऊसर क्षेत्र की अधिकता होने के कारण यहाँ कहावत प्रचलित है कि यदि अमेठी में ऊसर न होता तो यहाँ का राजा ईश्वर का दूसरा रूप होता।[36]

सुलतानपुर में मुख्यतया चिकनी मिट्टी सबसे महीन होती है और यह प्रायः निचले समतल तालाबी क्षेत्रों में पायी जाती है, यही नहीं बलुई मिट्टी ऊँचे भागों में नदियों के समीप मिलती है। दोमट मिट्टी प्रायः समतल भागों में पायी जाती है। इस प्रकार चिकनी, बलुई एवं दोमट मिट्टी यहाँ से प्राप्त होती है। यह उल्लेखनीय

---

33. *अबुल फजल, वही, भाग–1, पृ० 576*
34. *डॉ० सुखनाथ सिंह, नवीन भूगोल, जिला–सुलतानपुर, सुलतानपुर, 1964, पृ० 25*
35. *सुलतानपुर जनपद, लखनऊ, 1983, पृ० 10*
36. *सुखनाथ सिंह, वही, पृ० 14–15*

है कि विवेच्य काल में भी सुलतानपुर का महत्व इसी प्रकार था। अबुल फजल ने इस क्षेत्र को उसर बाहुल्य बलताया है।

प्राकृतिक वनस्पति–

सुलतानपुर कि वनस्पति को दो भागों में बाँट सकते हैं–चौड़ी पत्ती वाली वनस्पति और कंटीली वनस्पति।[37] चौड़ी पत्ती वाली वनस्पति में ढाक, पीपल, बरगद, आम, महुआ, जामुन, कटहल, बरगद, ढाक, केला आदि तथा कंटीली वनस्पतियों में बबूल विचेच्य युग में थे। अमेठी, अल्देमऊ एवं कूड़ मुसाफिरखाना में कादू का नाला आदि जंगल बाहुल्य क्षेत्र थे। यहाँ से उपरोक्त प्रकार की वनस्पतियाँ प्राप्त होती है।

मानव सभ्यता एवं संस्कृति का विकास अतीत काल में वनों में ही हुआ था। इस परिप्रेक्ष्य में जंगल राजनगर का अत्यधिक महत्व है। 1206 से 1707 ई० के मध्य प्रारम्भ में इस भू–भाग में एक विशाल वन फैला हुआ था। वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ में भी इस क्षेत्र में जंगल का अत्यधिक विस्तार था। इस क्षेत्र का अधिकांश भाग जंगलों से आवृत्त था और जंगल रामनगर के नाम से सम्बोधित किया जाता था।[38]

कृषि–

सुलतानपुर क्षेत्र का मुख्य संसाधन आदिकाल से कृषि ही रहा है। यहाँ की जनता 90 प्रतिशत से भी अधिक जनता कृषि कार्य में संलग्न थी। विवेच्य युग में 131 वर्गमील भूमि उपजाऊ थी।[39] खरीफ की फलस जुलाई में बोकर अम्टूबर में काटी जाती थी। धान, जड़हन, ज्वार, बाजरा, मक्का, सांवा, कोदो, उड़द, तिली, मूंग सुलतानपुर की प्रमुख फसल थी।[40] अरहर भी खरीफ के साथ काटी जा सकती

---

37. सुखनाथ सिंह, वही, पृ० 17

38. भारत सरकार द्वारा प्रकाशित भू–पत्रक, 1914–15 के आधार पर

39. गजेटियर आफ अवध, भाग–1, दिल्ली, 1978, पृ० 43

40. सुखनाथ सिंह, वही, पृ० 15

है। गन्ना की फसल विशेष रूप से मुद्रादायिनी फसल होती थी। रबी या चैती की फसल अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह में बोकर अप्रैल में काटी जाती थी। गेहूँ, चना, जौ, मटर, तिलहन आदि प्रमुख उपजें थी।[41] प्रायः किसान आलू पैदाकर उससे काफी रकम कमाता था। सुलतानपुर मूलतः कृषि प्रधान भू-भाग था।

सिंचाई के साधन–

कृषि कार्य में सिंचाई का बड़ा ही महत्व होता है। सुलतानपुर में केवल चार माह ही वर्षा होती थी, जो कृषि के लिए पर्याप्त नहीं होती थी। इसके लिए सिचाई के अन्य ही साधन प्रयुक्त होते थे। सुलतानपुर में सिंचाई के प्रमुख साधन थे- तालाब एवं कुँआ। कुछ झीलों के द्वारा भी सिंचाई होती है। तत्कालीन प्रमुख झीलें निम्नलिखित हैं:-

1. **भटगवाँ के पश्चिम में एक झील है, जो गौरीगंज तहसील में है।**
2. **झील राजा का बांध**
3. **झील कटरारानी**
4. **कटियावां की झील**
5. **विशेसरगंज की झील**
6. **कालिकन और जयरामपुर का सागर**
7. **भुंजबा और रूद्रशाह का बाँध**
8. **धमरूआ का सागर**
9. **पिपरी तालाब**
10. **लोदी का नाला (गौरीगंज में)**

पशुपालन–

कृषि का मुख्य आधार पशु होता है। इनमें गाय तथा बैलों का सबसे अधिक

---

41. *सुखनाथ सिंह, वही, पृ० 16*

महत्व होता है। सुलतानपुर मे विवेच्च युग में दो प्रकार के पशु पाये जाते थे[42] – पालतू और जंगली। पालतू पशुओं में गाय, बैल, भैंस, बकरी, घोड़ा, हाथी, भेड़ आदि प्रमुख थे। जंगली पशुओंमें हिरन, भेड़िया, नीलगाय, बन्दर, खरगोश, गीदड़, लोमड़ी आदि पाये जाते हैं। हिन्दुओं में गाय को माँ का दर्जा प्राप्त था। कुछ पक्षी इस क्षेत्र में पाये जाते थे। इनमें तोता, कबूतर, बुलबुल आदि पाले जाते हैं। साथ ही साथ चील, कौआ, गिद्ध, नीलकण्ड भी मिलते हैं। जलाशयों में मछलियाँ तथा बगुले आदि जलपक्षी भी मिलते हैं।[43]

व्यवसाय–

अमेठी के निवासियों का मुख्य व्यवसाय कृषि है, किन्तु इसके अतिरिक्त कुछ लोग अन्य व्यवसाय भी करते थे। इस काल में भी बन्धुआ कला पीतल के बर्तन बनाने का प्रमुख केन्द्र था तथा धम्मौर में उत्कृष्ट कोटि की मूर्तियाँ निर्मित की जाती थीं। वारिसगंज का सूती कपड़ा उद्योग भी स्वयं को सुरक्षित किये हुए है, यहाँ प्राचीन काल में भी सूती वस्त्रों का निर्माण किया जाता था। कुटीर उद्योग–धन्धों की प्रमुखता है। जगह–जगह पर बढ़ई, लोहार, मोची आदि अपना कार्य करते रहते हैं। जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है –

1. **लोहार–** यह वर्ग गुप्तकाल में ही वर्ग का रूप धारण कर चुका था। यह निम्नवर्ग का सदस्य माना जाता था परन्तु शूद्रों से इसकी स्थिति कुछ उच्च थी, यह लकड़ी आदि से विभिन्न वस्तुओं यथा– कुर्सी, मेज, बैलगाड़ी आदि का निर्माण कर अपना जीवन यापन कर रहे थे। सुलतानपुर क्षेत्र जंगल बाहुल्य क्षेत्र था अतः इनके उत्कर्ष का पर्याप्त अवसर यहाँ प्राप्त था। विशेसरगंज की खड़ाऊँ, टाटपट्टी और

---

42. *सुखनाथ सिंह, वही, पृ० 16*

43. *वही, पृ० 17*

कालीन प्रसिद्ध हैं।[44]

2. **कुम्हार–** मिट्टी से बर्तन बनाने का कार्य करने वाला वर्ग था। इनके लिए मिट्टी खोदने की व्यवस्था वर्तमान की भांति तत्कालीन समय में सम्बन्धित शासक करता था। 1206 से 1707 ई॰ के मध्य भी ये वर्तमान की भांति सुलतानपुर के विभिन्न भू-भागों पर अवस्थित थे।

3. **धोबी–** बौद्ध ग्रन्थों में धोबियों के लिए रजक शब्द प्रयुक्त है। इनका कार्य स्वयं के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों के परिधानों को स्वच्छ करना था। मूलतः ये सेवा कार्य ही करते थे। बदले में इन्हें समाज से जीवन यापन करने भर की सामग्री उपलब्ध हो जाती थी।

4. **नाई–** नाई का अस्तित्व आदिकाल से ही देखने को मिलता है, इनका कार्य लोगों के केशों का विन्यास करना है, ततकालीन समय में ये सुलतानपुर के भू-भागों पर सम्मानित अवस्था में कार्य कर रहे थे। कुल मिलाकर इनकी स्थिति संतोषप्रद थी। धार्मिक अवसरों पर इन्हें पर्याप्त सम्मान दिया जाता था।[45]

वारिसगंज का सूती कपड़ा उद्योग भी स्वयं को सुरक्षित किये हुए है। वधुवां कला का पीतल उद्योग एवं धम्मौर का मूर्ति उद्योग आज भी अपने को स्थापित किये हुए है। लोहा कुम्हार, धोबी, नाई वधुवां कला का पीतल उद्योग का धम्मौर का मूर्तिक कला केन्द्र है।

---

44. *सुखनाथ सिंह, वही, पृ॰ 18*
45. *डॉ॰ हेरम्ब चतुर्वेदी, द सोसायटी आफ नार्थ इण्डिया इन 16 सेन्चुरी एज डिपेक्टेड टू कन्टेमप्रोरी हिन्दी लिट्रेचर (शोध प्रबन्ध) स्वीकृत।*

★★★

चतुर्थ अध्याय

सुलतानपुर का धार्मिक इतिहास

(1206 ई0 से 1707 ई0 तक)

चतुर्थ अध्याय

सुलतानपुर का धार्मिक इतिहास

(1206 ई0 से 1707 ई0 तक)

सुलतानपुर की धार्मिक स्थिति

(1206 ई. से 1707 ई. तक)

भारत आदि काल से ही धर्म प्रधान केन्द्र रहा है तथा भारतीय संस्कृति धर्म साहिष्णुण संस्कृति। यद्यपि भारत का अपना धर्म वैदिक/ब्राह्मण धर्म रहा है, तथापि यहाँ विरोधी धर्मों को भी उत्कर्ष करने का अवसर प्राप्त हुआ है। विवेच्य काल ब्राह्मण धर्म का संकटग्रस्त काल था। 1206 ई. में मुसलमानों के स्थायित्व प्राप्त करने के उपरान्त भारतीय धर्मों को पर्याप्त संकट का सामना करना पड़ा। सम्पूर्ण भारत में मंदिरों को ध्वस्त किया गया। मूर्तिपूजकों पर तरह-तरह के धार्मिक कर आरोपित किये गये। परन्तु हिन्दू (भारतीय) धर्म विनष्ट हो गया हो? यह देखने को नहीं मिलता है। अनेक अवरोधों के बाद भी सम्पूर्ण भारत (सुलतानपुर) में ब्राह्मण, बौद्ध, कबीर पंथी एवं इस्लाम धर्म के जनसामान्य में प्रचलित था।

विवेच्य युगीन सुलतानपुर की धार्मिक प्रवृत्तियों को विवरण निम्नलिखित है-

ब्राह्मण धर्म –

वैदिक धर्म का परिवर्तित स्परूप ब्राह्मण धर्म था। वैदिक धर्म जहाँ युवा एवं कर्मकाण्ड प्रधान था, वही ब्राह्मण धर्म विशुद्ध कर्मकाण्ड परक एवं मूर्तिपूजक। यह भी उल्लेखनीय है कि – वैदिक धर्म के अधिकांश देव ही मनुष्य स्परूप प्राप्त कर ब्राह्मण धर्म के उपास्य के रूप में प्रतिष्ठित हुए। कतिपय अन्य देवताओं को भी ब्राह्मण धर्म में स्थान दिया गया। वास्तव में ब्राह्मण धर्म किसी एक देवता की उपासना से सम्बन्धित न होकर विविध देवों की उपासना से सम्बन्धित था।

वैष्णव धर्म –

ब्राह्मण धर्म का सर्वाधिक प्रचलित सम्प्रदाय वैष्णव सम्प्रदाय था। वैष्णव धर्म विष्णु की उपासना से सम्बन्धित है। वैष्णच धर्म का विकास विष्णु के अवतारों के परिणाम स्वरूप हुआ। विष्णु के सातवें अवतार राम एवं नवें अवतार बुद्ध का सुलतानपुर

से अत्यन्त गहरा सम्बन्द्ध था। राम के गनगमन के समय जगद्जननी सीता ने सुलतानपुर में गोमती नदी के किनारे स्थित कुंड में स्नान किया था। इस कुण्ड को बाद में सीता – कुंड[1] के नाम से जाना गया।

इसके अतिरिक्त रावण वध के उपरान्त राम ने अपने पापमोचन के लिए गोमती नदी में धोपाप (कादीपुर तहसील) नामक स्थान पर भगवान श्रीराम ने स्नान किया था।[2] राम के सेवक हनुमान से भी यह जनपद सम्बद्ध है। कालनेभि का वध हुनमान ने विजेथुआ (महावीरन) नामक स्थान पर किया था।[3] यही नहीं श्रीराम के बड़े पुत्र कुश की राजधानी के रूप में भी यह नगर प्रतिष्ठित था।[4] आज भी इस जनपद में विष्णु की उपासना राम के चरितचित्रण के आधार पर की जाती है।

विष्णु के नवें अवतार महात्मा बुद्ध थे। ये भी सुलतानपुर यात्रा किया करते थे। बुद्ध के आरम्भिक उस आलार–कलाम की पवित्र भूमि यही थी यहाँ आज भी बौद्ध धर्म/वैष्णव धर्म से सम्बन्धित लोग रहते हैं।[5] तमाम प्रतिरोध के बाद भी सुलतानपुर में 1206 ई. से 1707 ई. के मध्य वैष्णव धर्मानुयायी विष्णु की उपासना किया करते थे।

1206 ई. से 1707 ई. के मध्य सुलतानपुर में शैव, शाक्त धर्म के साथ सौर सम्प्रदाय, बौद्ध धर्म भी प्रचलन में था, साथ ही निर्गुण उपासक (कबीरपंथी) साई सम्प्रदाय भी हिन्दू–धर्म की भाँति लोक प्रिय था। मुस्लिम धर्म भी तत्कालीन सुलतानपुर में प्रचलित था।

विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों के उपासना स्थल –

1206 ई. से 1707 ई. तक के प्रमुख उपासना स्थल एवं उपास्य देव का विवरण

---

1. *डॉ० एस०आर० पाण्डेय, हमारा जनपद और समाज, सुलतानपुर, पृ० 46*
2. *वही*
3. *वही*
4. *वही*
5. *वही, 45–46*

निम्नालिखित हैं -

धोपाप –

धोपाप गोमती नदी के तट[6] पर लम्भुआ से 6 किमी. उत्तर एवं कादीपुर से 7 किमी. पश्चिम दक्षिण में अवस्थित है। ऐमी मान्यता है कि – रावण के वध के उपरान्त राम पर ब्रहमहत्या का पाप आरोपित हो गया था। इससे मुक्ति हेतु राम के गुरु वशिष्ठ ने सुझाव दिया कि – "एक कौआ गोमती के विभिन्न स्थलों पर नहलाया जाय जहाँ यह कौआ सफेद हो जायेगा, वहीं स्नान करने से तुम्हें पाप से मुक्ति मिलेगी। राम ने ऐसा ही किया वह कौआ धोपाप में जाकर सफेद हुआ। राम वहीं स्नान कर पाप मुक्त हुए।[7] तब से आज तक वह वैष्णव धर्म का प्रधान केन्द्र बना हुआ है। देश–विदेश से लोग यहाँ स्नान करने आते हैं।

जेष्ट शुदी दशमी को यहाँ विशाल मेला लगता है। शर्की शासकों ने धोपाप के कुछ भू–भाग का कर माफ कर दिया था, धोपाप के घरों के निर्माण के लिए कुछ धनराशि[8] भी प्रदान किया था।

लुटिया या लोटिया –

लुटिया धोपाप के सन्निकट गोमती के दाहिने किनारे अवस्थित है। ऐसी मान्यता है कि – स्नान हेतु भगवान राम ने यहाँ से लोटा प्राप्त किया था।[9] यहाँ भी उपर्युक्त तिथि को मेला लगता है। मुस्लिम शासन में भी यह स्थल धोपाप के समान पूज्य था।

---

6. *डॉ० एस०आर० पाण्डेय, हमारा जनपद और समाज, सुलतानपुर पृ० 45–46*
7. *वही*
8. *डॉ० राजेश्वर सिंह, सुलतानपुर इतिहास के आइने में, दैनिक जनमोर्चा, पृ० 7*
9. *स्थानीय नागरिकों के वैयक्तिक विचारों पर आधारित*

सुलतानपुर –

वर्तमान सुलतानपुर शहर में मुस्लिम शासन में क्वार की विजयदशमी को राम की विजय का उल्लास अत्यन्त धूम–धाम से मनाया जाता था। ऐसी मान्यता है कि राम ने बनवास से प्रत्यावर्तन के समय अयोध्या में प्रवेश करने के पूर्व एक रात्रि विश्राम किया था।[10] कुश की राजधानी भी इसी को माना जाता है।

श्वेतवराह –

यहाँ पर विष्णु के वराहावतार से सम्बन्धित मन्दिर एवं मूर्ति प्राप्त होती है। इस मन्दिर की स्थापना अमेठी के राजा द्वारा तेरहवी शदी में कराई गयी थी। यह किसनी के पास कोटवा नामक स्थान पर निर्मित है।[11] यहां डण्डेश्वर महादेव का मन्दिर एवं अक्षय वट है। इन मन्दिरों की खर्चे के लिए 12 गांव मिले थे।

विजेथुआ –

कादीपुर तहसील से 12 किमी. पूरब सूरापुर से 3 किमी. दक्षिण विजेथुआ महावीरन में हनुमान जन्मोत्सव[12] दीपावली की पूर्व संध्या पर हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। ऐसी मान्यता है कि राम भक्त हुनमान ने संजीवनी लेने जाते समय रावण द्वारा भेजे गये राक्षस कालनेमि[13] का वध यहीं किया था। शेरशाह सूरी के शासनकाल में यही पर एक युद्ध हुआ था।

---

10. *स्थानीय नागरिकों के वैयक्तिक विचारों पर आधारित*
11. *डा० एस०आर० पाण्डेय, हमारा जनपद और समाज, पृ० 47*
12. *विजेथुआ महावीरन मे उमाड़ा श्रद्धालुओं का जनसैलाब, हिन्दुस्तान दैनिक, सुलतानपुर, पृ० 4*
13. *डा० एस०आर० पाण्डेय, वही, 46*

सीताकुंड –

सुलतानपुर नगर के उत्तर गोमती तट पर सीताकुंड का मनोरम घाट बना है। ऐसी कहावत है कि बनवास जाते समय जगद्जननी सीता ने इसी घाट पर स्नान किया था।[14]

दुर्गन भवानी –

सूचना एवं पर्यटन विभाग के अनुसार – "गौरीगंज तहसील से दक्षिण 7 किमी. दूर भवनशाहपुर, राधीपुर में दुर्गा (आदि दुर्गा) का मन्दिर आदि प्राचीन काल से अस्तित्व में है। इसकी स्थापना सोलहवीं शताब्दी में अमेठी के तत्कालीन शासक द्वारा करायी गयी थी। हफ्ते के प्रत्येक सोमवार को यहां मेला लगता है एवं नवरात्रि मे दूर-दूर से लोग पूजन करने आते हैं।

कालपी –

गौरीगंज से अठेहा मार्ग पर 2 किमी. दूर सड़क के पूरब में अति प्राचीन मन्दिर प्राप्त हुआ है। इस मन्दिर का पुनःनिर्माण जगदीश पियूष द्वारा करवाया गया। इसकी खुदाई से माँ दुर्गा की छोटी-छोटी मूर्तियाँ प्राप्त हुई थी। द्वारिकापुरी के शंकराचार्य के अनुसार – इस मन्दिर की मूर्तियाँ 14 वीं शती. की हैं।[15] प्रत्येक सोमवार को यहां मेला लगता है।

देवी पाटन –

देवीपाटन की स्थापना 998 ई. को अमेठी-गौरीगंज मार्ग पर अमेठी से एक किमी. की दूरी पर तत्कालीन अमेठी के राजा सोड़देव द्वारा करायी गयी थी।[16] इस

14. *वही*
15. *शंकराचार्य द्वारा पुनर्निर्माण की पूर्णता के अवसर पर दिये गये वक्तव्य पर आधारित।*
16. *गढ़ अमेठी का इतिहास, पृ० 220*

मन्दिर में मां दुर्गा की मूर्ति स्थापित है। इस क्षेत्र मे यह शक्ति पीठ के रूप में मान्यता प्राप्त है। अमेठी के तत्कालीन राजा ने यहां के लोगों के पानी पीने के लिए कुएँ एवं लोगों के रूकने के लिए मुसाफिरखाने का निर्माण कराया था।

कालिकन भवानी –

कालिकन में महाकाली का प्रसिद्ध मन्दिर है। विष्णुपुराण के अनुसार – "महर्षि च्यवन का आश्रम यहीं पर था।[17] जनश्रुति है कि यहां का दर्शन करने से पागल ठीक हो जाते हैं। प्रत्येक सोमवार को मेला लगता है। यहां शाक्त धर्म के लोग अपने तन्त्र–मन्त्र की साधना करते हैं।

समसेरियन भवानी का मन्दिर –

मुसाफिर खाना तहसील में नंद नहर से ढ़ेड किमी. की दूरी पर आदि शक्ति दुर्गा की अति प्रसिद्ध मन्दिर है। यह प्रत्येक नवरात्र में मेला लगता है।

पाली का सुर्य मन्दिर –

यह स्थल मुसाफिर खाना तहसील में पाली अवस्थित है। वर्तमान में इसे पलिया भी कहा जाता है। इस मन्दिर में सूर्य की अति प्राचीन सुन्दर मूर्ति है।[18] मन्दिर भी प्राचीन वास्तुकला के आधार पर निर्मित है। इससे प्रमाणित होता है कि सुलतानपुर में सूर्य धर्मावलम्बी भी थे।

नंद नहर –

भगवान श्रीकृष्ण के पालक पिता नंद का मन्दिर यही पर अवस्थित बतलाया जाता है। जनश्रुति के अनुसार अयोध्या जाते वक्त नंद एक रात यहां ठहरे थे। यहाँ पर

17. कल्याण, संत अंक, पृ०

18. डॉ० एस०आर० पाण्डेय, वही, पृ० 46

कार्तिक की पूर्णिमा एवं प्रत्येक मंगल का मेला लगता है।[19] अपने पशुओं से दुग्ध की सम्पन्नता हेतु अहीर वर्ग के लोग मंगल को दूध चढ़ाते है। यहाँ पर बलि एवं पवरिया की उपासना की जाती है। यहां ऐसी मान्यता है कि यहां के दर्शन से भूत–प्रेत की बाधाऐं समाप्त हो जाती हैं।

साई सम्प्रदाय –

कुड़वार तहसील में चन्दौर नामक स्थान पर अवस्थित साई सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र आस्था एवं विश्वास का प्रतीक बतलाया जाता है। इसे अत्यन्त सिद्ध स्थल बतलाया जाता है। यहां पर प्राचीन साईयों की मजारें प्राप्त होती है। यह उत्तरी भारत में साई सम्प्रदाय का मुख्यालय था। उत्तरी भारत के समस्त साई यहीं से नियुक्त होते हैं।

बंधुआ कला का रामसनेही सम्प्रदाय –

अमेठी तहसील के अन्तर्गत बंधुआ कला नामक स्थान पर, जामो ब्लाक में स्वामी सिद्धदास द्वारा स्थापित राम सनेही सम्प्रदाय का केन्द्र है। बाबा को तुलसीदास का समकालीन बतलाया जाता है। यह वैष्णव केन्द्र है।[20]

महन्थन का पुरवा–

अलीगंज से कुड़वार रोड पर पाँच किसी दूर कबीर पंन्थियों का प्राचीन मुख्यलाय अवस्थित है। यहाँ के अधिकाधिक नागरिक ब्राह्मण हैं एवं कबीर के अनुयायी हैं।[21]

काहे वीरन–

गौरीगंज–जामो मार्ग पर, नरौली ग्राम में शिव मन्दिर अति प्राचीन मंदिर है।

---

19. *सुखनाथ सिंह, नवीन भूगोल, जिला सुलतानपुर, पृ० 25*
20. *दैनिक हिन्दुस्तान के अनुसार, सुखनाथ सिंह, वही*
21. *स्थानीय नागरिक राधिका प्रसाद के साक्षात्कार पर आधारित।*

विलवागढ़–

विलवागढ़ भीटा वर्तमान दखिनवारा गांव के उत्तर में उसी से सटा हुआ स्थित है। प्रचलित किम्वदिन्तयों के अनुसार यह भरों का किला था। अनेक स्थलों पर पकी हुई लाखोरी ईंटों की नींव अभी भी स्पष्ट रूप से दिखायी देती है। इसका मूलस्वरूप बहुत अंशों में अब परिवर्तित हो गया है। यह स्थल ग्राम पंचायत द्वारा वन विभाग को सौंप दिया जा चुका है। जिसमें उसने वृक्षारोपण कर लिया है। इसके पश्चिमोत्तर के भाग में वर्तमान समय में पूजा–पाठ करते हैं। एक प्राचीन विष्णु मूर्ति भी टूटी हुई अवस्था में यहां मन्दिर के बाहर रखी है। यहां से एक प्राचीन ताबें का सिक्का प्राप्त हुआ है।

मदुक नाथ–

गौरगंज से 7 कि.मी. दूर ताला ग्राम में मदुक नाम (शिव) का प्राचीन मंदिर है। ऐसी मान्यता है कि– मुहम्मद तुगलक का सूबेदार यहाँ के लिंग को खुदवा रहा था। परन्तु लिंग की गहरायी से घबराकर अपने खुदायी का कार्य स्थगित करवा दिया।

केसपुत्र–

महात्मा बुद्ध के आरम्भिक गुरु आलार कलाम[22] यहीं के निवासी थे। महात्मा बुद्ध की इस स्थल पर व्याख्यान करने आये थे। इसे वर्तमान कुड़वार से समीकृत किया जाता है।

मराड़ी शाह–

मुस्लिम पीर एवं फकीर मराड़ीशाह की मजार है। ये सूफीसंत थे। इन्हें मुस्लिम कालीन बताया जाता है। यह जामों ब्लाक के धातमपुर ग्राम में स्थित है। अनुश्रुति है कि चमत्कार लड़की की मृत्यु के सन्दर्भ– कल्याणपुर।

---

22. *डा० राजेश्वर सिंह, वही*

पाँचो पीरन–

सुलतानपुर में सीताकुण्ड के पास पाँचों पीर की मजार है। इसे तेरहवीं शदी ई. का बतलाया जाता है।[23] यहाँ पर प्रतिवर्ष आज भी चादर चढ़ाते हैं।

जायसी–

मलिक मुहम्मद जायसी की जन्मभूमि जायस एवं मजार सुलतानपुर जिले के रामनगर में (अमेठी) हैं। ये सूफी सम्प्रदाय के प्रमुख संत हैं। इन्हें निजामुद्दीन औलिया की परम्परा का बतलाया जाता है।[24] इन्होंने पद्मावत महाकाव्य की रचना किया है। चिस्ती सम्प्रदाय सूफीत्यव के रूप में प्रसिद्ध अमेठी नरेश राम सिंह ने संरक्षण दिया था।

प्रमुख त्योहार–

उपासना स्थलों के अतिरिक्त सम्पूर्ण जनपद में हिन्दुओं एवं मुसलमानों के अनेक त्योहार भी हर्षोल्लास से मनाये जाते हैं, जिनका विवरण निम्नलिखित है–

ऐसा धार्मिक कृत्य या स्नान जो किसी शुभ दिन अवसर पर नदी, तालाब या पवित्र पोखरों मे सामूहिक स्नान के साथ आयोजित किया जाय, पर्व कहलाता है। प्रायः पर्व ईश्वर या आध्यात्म से सम्बन्धित दिवसों में पुण्यलाभ के निमित्त आयोजित किया जाता है।

रामनवमी

सुलतानपुर परिक्षेत्र में यह त्योहार अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित था, विवेच्च काल में भी इसे श्रद्धा एवं उल्लास के साथ मनाया जाता था। चैत्र मास की दूसरी महत्वपूर्ण तिथि है नवमी, जो शुक्ल पक्ष में होती है और जिस दिन विष्णू के

---

23. *दैनिक जनमोर्चा, 15 अक्टूबर*

24. *वही*

सातवें अवतार राम की जयन्ती मनायी जाती है और उस दिन रामनवमी व्रत किया जाता है। इस विषय में हेमाद्रि निर्णयसिन्धु, मुकुन्दवन यति के शिष्य आनन्दवन यति की अगस्त्यसंहिता एवं रामार्चनचन्द्रिका आदि निबन्धों में विस्तार के साथ वर्णन मिलता। प्रतीत होता है, राम-सम्प्रदाय की प्रसिद्धि कृष्ण-सम्प्रदाय के उपरान्त हुई। अमरकोश ने विष्णु, नारायण, कृष्ण, वासुदेव, देवकीनन्दन एवं दामोदर को एक-दूसरे का पर्याय माना है। यहाँ हर रामनवमी का संक्षिप्त उल्लेख करेंगे। रामार्चनचन्द्रिका एवं व्रतार्क में प्रतिपादित है कि इसका सम्पादन सभी लोग कर सकते हैं, यहाँ तक कि इसके आधिकारी चाण्डाल भी हैं।

अगस्तसंहिता[25] में आया है कि राम का जन्म चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी को मध्याहग् में हुआ था, उस समय पूनर्वसु नक्षत्र में चन्द्र था, चन्द्र और वृहस्पति दोनों समन्वित थे, पाँच ग्रह अपनी उच्च अवस्था में थे, लग्न कर्कटक था और सूर्य मेष राशि में था। माधव के कालनिर्णय[26] में आया है – 'जब नवमी दो तिथियों में हो, तब यदि वह पहली तिथि के मध्याहग् में हो तो व्रत उसी दिन होना चाहिए। किन्तु यदि नवमी दोनों दिनों के मध्याहग् में पड़ती हो, या जब किसी भी दिन मध्याहग् को नवमी न हो तो दशमी से युक्त नवमी में व्रत होना चाहिए, न कि अष्टमी से युक्त नवमी में। यदि नवमी पुनर्वसु से संयुक्त हो तो वह तिथि अत्यन्त पुनीत ठहरती है। यदि अष्टमी, नवमी एवं पुनर्वसु एक स्थान पर हों तब भी नवमी दूसरे दिन (अर्थात् दशमी से संयुक्त नवमी) होनी चाहिए। अन्य विस्तरों को हम यहीं छोड़ते हैं।

ऐसा कुछ लोगों का मत है कि रामनवमी नित्य ब्रत है और सब के लिए है, किन्तु कुछ अन्य लेखकों के मत से यह केवल राम-भक्तों के लिए नित्य है और अन्य लोगों के लिए, जो विशिष्ट फल (पाप-मुक्ति या संसार-निवृति या मुक्ति) चाहते हैं, काम्य है। अगस्त्यसंहिता में आया है – यह सब के लिए है, यह संसारिक आनन्द एवं

---

25. *हेमाद्रि, व्रत, भाग 1, पृ० 941*

26. *पृ० 229-230*

मुक्ति के लिए है। वह व्यक्ति भी, जो अशुद्ध है, पापिष्ठ है, यह सर्वोत्तम व्रत करके सब से सम्मान पाता है, और ऐसा हो जाता है मानो साक्षात् राम हो। जो व्यक्ति रामनवमी के दिन भोजन करता है वह कुम्भीपाक में धोर कष्ट पाता है। जो व्यक्ति एक रामनवमी व्रत भी कर लेता ह उसकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती है और उसके पाप कट जाते हैं। और भी आया है – उस दिन सदा उपवास करना चाहिए, राम-पूजा करनी चाहिए, उसे रात्रि भर पृथिवी पर बैठकर ज़ागरण करना चाहिए। यहाँ 'सदा' शब्द से प्रकट होता है कि यह 'नित्य' व्रत है किन्तु अन्य लोगों के मत से यह 'काम्य' है, क्योंकि यहाँ पाप से मुक्ति का फल भी मिलता है। निर्णयसिन्धु एवं मिथितत्व जैसे ग्रन्थों का निष्कर्ष है कि यह 'नित्य' एवं 'काम्य' दोनों है, जैसा कि "संयोगपृथक्त्व" नामक मीमांसा का न्याय कहता है; 'अग्निहोत्र' के प्रकरण में वेद का कहना है – 'वह अग्नि में दीघ का होम करता है'; वहीं दूसरा वचन है – 'जो शारीरिक शक्ति चाहता है उसे अग्नि में दीध का होम करना चाहिए।' अर्थ यह है कि दो भिन्न वाक्यों में 'दीध' शब्द अलग-अलग वर्णित है, अतः दीध के साथ होत नित्य भी है और कास्य भी।

रामनवमी व्रत[27] की विधि इस प्रकार है – चैत्र के शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन भक्त को स्नान करना चाहिए, सन्ध्या करनी चाहिए, एक ऐसे ब्राह्मण को आमन्त्रित कर सम्मानित करना चाहिए जो वेदज्ञ हो, शास्त्रज्ञ हो, राम की पूजा में भक्ति रखता हो, राम-भक्तों की विधि जानता हो, और उससे प्रार्थना करनी चाहिए, 'मैं राम की प्रतिमा का दान करना चाहता हूँ'। इसके उपरान्त शरीर में लगाने के लिए उस ब्राह्मण को तेल देना चाहिए और स्नान कराना चाहिए, श्वेत वस्त्र पहनना चाहिए, पुष्प देना चाहिए, उसे सात्विक भोजन देना चाहिए और स्वयं भी वही खाना चाहिए तथा सदा राम का ध्यान करना चाहिए। उस दिन रात्रि में उसे एवं आचार्य (सम्मानित ब्राह्मण) को बिना भोजन किये रहना चाहिए, दिन भर राम-कथाएँ सुननी चाहिए और स्वर्य तथा आचार्य को पृथिवी पर हीं सुलाना चाहिए (खाट पर नहीं)।

---

27. हेमादि (व्रत, भाग 1, पृ० 941-946), नि० सि० (पृ० 83-86), कृ० त० वि० (पृ० 96-98), व्रतराज (पृ० 319-21), व्रतार्क (172-182) में

दूसरे दिन प्रातः काल उठकर, स्नान, सन्ध्या-वन्दन करना चाहिए, चार द्वारों वाले ध्वजासंयुक्त मण्डप का निमार्ण करना चाहिए, और तोरण, ध्वजा एवं पुष्पों से अलंकृत करना चाहिए। पूर्व द्वार पर शंख, चक्र एवं गरुड़, दक्षिण में धनुष एवं बाण, पश्चिम में गदा, तलवार एवं केयूर, उत्तर में कमल, स्वस्तिक-चिन्ह एवं नीले रत्न रखने चाहिए। उसे ब्राह्मणों से आशीवार्द ग्रहण करना चाहिए और तब संकल्प करना चाहिए कि 'मैं रामनवमी के दिन उपवास करूगाँ और राम-पूजा में संलग्न राम की स्वर्ण-प्रतिमा बनबा कर राम को प्रसन्न करने के लिए उसका दान करूगाँ; इसके उपरान्त वह कहे - 'मेरे गम्भीर पापों को राम दूर करें।' राम की मूर्ति को आधार पर रखना चाहिए, इस मूर्ति के दो हाथ होने चाहिए; जानकी की मूर्ति राममूर्ति की दाहिनी जाँघ पर होनी चाहिए। मूर्ति को पंचामृत से स्नान कराना चाहिए। इसके उपरान्त मूलमन्त्र का पाठ होना चाहिए और न्यासों की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। उत्सव या पूजा मध्याह्न् में की जाती है। ऋग्वेद के सोलह मन्त्रों[28] एवं पौराणिक मन्त्रों के साथ सोलह उपचारों से राम की प्रतिमा का पूजन करना चाहिए, प्रतिमा के विभिन्न अंगों की भी पूजा करनी चाहिए (श्री रामभद्राय नमः पादौ पूजयामि आदि)। इसके उपरान्त मूल मन्त्र के साथ वेदिका पर या कुण्ड में होम करना चाहिए और पुनः साध ारण अग्नि में घृत या पायस (दूध एवं शक्कर में पकाये हुए चावल) की 108 आहुतियाँ देनी चाहिए। इसके उपरान्त आचार्य को कंकण, कुण्डल, अँगूठी, पुष्पों, वस्त्रों आदि से सम्मानित करना चाहिए और निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करना चाहिए - 'हे राम, आज मैं आप से अनुग्रह प्राप्त करने के लिए आपकी इस स्वर्ण-प्रतिमा को, जो अलंकारों एवं वस्त्रों से सज्जित है, दान-रूप में दूगाँ।' उसे आचार्य को दक्षिणा तथा अन्य ब्राह्मणों को सोना, गाय, वस्त्रों का जोड़ा, अन्न यथाशक्ति देना चाहिए और ब्राह्मणों के साथ भोजन करना चाहिए। ऐसा करने से वह ब्राह्मण-हत्या जैसे महापातकों एवं जघन्य पापों से छुटकारा पा लेता है। जो व्यक्ति यह व्रत करता है

---

28. वही

मानो अपने हाथ में मुक्ति धारण कर लेता है और सूर्यग्रहण पर कुरुक्षेत्र में तुलापुरुष के दान का पुण्य प्राप्त करता है (देखिए तुलापुरुष महादान के लिए इस महाग्रन्थ का खण्ड दो)। हेमाद्रि में अपेक्षाकृत संक्षिप्त उल्लेख है, किन्तु तिथितत्व[29] व्रतार्क ने अगस्त्यसंहिता से अधिक ग्रहण कर विस्तार के साथ उल्लेख किया है। उनके मत से राम-प्रतिमा के पार्श्व में भरत, शत्रुघ्न एवं लक्ष्मण की (हाथ में धनुष के साथ) एवं दशरथ की मूर्तियां भी दाहिनी ओर हों तथा कौसल्या की प्रतिमा की भी पूजा होनी चाहिए जिसके साथ पौराणिक मन्त्र कहे जाने चाहिए। रामार्चनचन्द्रिका ने दस एवं पाँच आवरणों की पूजा की भी चर्चा की है।

रामनवमी का व्रत चैत्र के मलमास में नहीं किया जाता। यही बात जन्माष्टमी एवं अन्यव्रतों के साथ भी पायी जाती है।

वर्तमान समय में बहुत से लोग रामनवमी पर उपवास नहीं करते और कदाचित् ही कोई होत या प्रतिमा-दान करता है, किन्तु मध्याहग् काल में राम-मन्दिरों उत्सव किये जाते हैं। आजकल नासिक, तिरुपति, अयोध्या एवं रामेश्वर में बड़ी धूमध ाम के साथ यह उत्सव मनाया जाता है और सहस्रों व्यक्ति वहाँ जाते हैं। आजकल 'राम' नाम से बढ़कर कोई अन्य नाम हिन्दुओं की चिह्वा पर नहीं पाया जाता।

परशुराम जयन्ती

सुलतानपुर परिक्षेत्र में यह त्योहार अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित था, विवेच्च काल में भी इसे श्रद्धा एवं उल्लास के साथ मनाया जाता था। वैशाख के शुक्ल पक्ष की तृतीया को परशुराम जयन्ती भी मनायी जाती है। इसका सम्पादन रात्रि के प्रथम प्रहर में होता है। स्कन्द० एवं भविष्य में आया है कि वैशाख शुक्ल पक्ष की तृतीया को रेणुका के गर्भ से विष्णु उत्पन्न हुए, उस समय नक्षत्र पुनर्वसु था, प्रहर प्रथम था, छह ग्रह उच्च थे और राहु मिथुन राशि में था। परशुराम की प्रतिमा की पूजा की जाती है

---

29. पृ० 61-62), नि० सि० (पृ० 85),

और 'जमदग्निसुतो वीरः क्षत्रियान्तकरः प्रभो। गहाणार्ध्य मया दतं कृप्या परमेश्वर।।'[30] नामक मन्त्र के साथ अर्घ्य दिया जाता है। यदि तृतीया 'शुद्धा' (अन्य तिथि से न मिली हुई) हो तो उस दिन उपवास करना चाहिए, किन्तु यदि तृतीया दो दिनों वाली हो, प्रथम प्रहर वाली थोड़ी भी सन्ध्याकाल में हो तो उपरान्त वाले दिन को व्रत किया जाना चाहिए, नहीं तो (यदि तृतीया विद्धा हो और रात्रि के प्रथम प्रहर से आगे न बढ़े) तो दो दिनों में पहले वाले दिन उपवास करना चाहिए। परशुराम के कुछ मन्दिर भी हैं, विशेषतः कोंकण में, यथा चिप्लून में, जहाँ परशुराम जयन्ती बड़ी धूमधाम से मनायी जाती है। भारत के बहुत से भागों में यह जयन्ती नहीं मनायी जाती। किन्तु दक्षिण में इसका सम्पादन होता है। सुलतानपुर के मुसाफिरखाना क्षेत्र में यह जयंती धूमधाम से मनायी जाती है।

नागपंचमी

सुलतानपुर परिक्षेत्र में यह त्योहार अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित था, विवेच्च काल में भी इसे श्रद्धा एवं उल्लास के साथ मनाया जाता था। श्रावण मास नें बहुत से महत्वपूर्ण व्रत किये जाते हैं, जिनमें शुक्ल पक्ष की पंचमी को किया जाने वाला नागपंचमी व्रत प्रसिद्ध है। भारत के सभी भागों में नागपंचमी विभिन्न प्रकार से सम्पादित होती है। कुछ लोगों के मत से वर्ष भर के सर्वोत्तम शुभ 3 1/2 दिनों में नागपंचमी 1/2 शुभ दिन है। किन्तु कुछ लोग यह महत्व अक्षयतृतीया को देते हैं, जैसा कि हमने इस भाग के चौथे अध्याय में देख लिया है। भविष्य[31] में नागपंचमी का विस्तार के साथ उल्लेख है। संक्षेप में यहाँ उल्लेख किया जाता है – जब लोग पंचती को दूध से वासुकि, तक्षक, कालिय, मणिभद्र, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक एवं घनञ्जय नामक सर्पों को नहलाते हैं तो ये नाग उनके कुटुम्बों को अभयदान दे देते हैं। भविष्य०

---

30. *धर्मसिन्धु, पृ० 46*
31. *ब्रह्म पर्व, 32/1-39)*

में यह कथा आयी है – नागों की माता कद्रू ने अपनी बहिन विनता से बाजी लगायी कि इन्द्र के घोड़े उच्चैःश्रवा की पूँछ काली है। विनता के अनुसार पूँछ एवं शरीर दोनो सफेद थे, किन्तु कद्रू कहती थी कि पूँछ काली है किन्तु घोड़ा श्वेत है। कद्रू ने अपने पुत्रों से पूँछ में लिपट जाने को कहा जिससे वह काली दृष्टिगोचर हो, किन्तु उन्होंने इस धोखेबाजी से अपने को विलग रखा, जिस पर कद्रू ने उन्हे शाप दिया कि तुम्हें अग्नि जला डालेगी (जनमेजय के सर्पसत्र में)। लोगों को चाहिए कि वे नागों की सोने, चाँदी या मिट्टी की प्रतिमाएँ बनाये और करवीर एवं जाती पुष्पों तथा गंधादि से उनकी पूजा करें। पूजा का परिणाम होगा सर्प–दंश से मुक्ति। सौराष्ट्र में नागपंचमी श्रावण कृष्ण पक्ष में सम्पादित होती है।

बंगाल एवं दक्षिण भारत में (महाराष्ट्र में नहीं) मनसा देवी–पूजन होती है जो अपने घर के आँगन में स्नुही (थूहर) की टहनी पर श्रावण के कृष्ण पक्ष की पंचमी को किया जाता है। देखिए राजमार्तण्ड, समयप्रदीप, कृत्यरत्नाकर, तिथितत्व आदि। सर्वप्रथम सर्प–भय से दूर रहने के लिए मनसा देवी–पूजन का संकल्प होता है, तब गन्ध, पुष्प, धूप, दीप एवं नैवेद्य दिया जाता है और तब अनन्त एवं अन्य नागों की पूजा होती है जिसमें प्रमुख रूप से दूध–घी का नैवेद्य चढ़ाया जाता है। घर में नीम की पत्तियाँ रखी जाती हैं, स्वयं व्रती उन्हें खाता है और ब्राह्मणों को भी खिलाता है। ब्रह्मवैवर्तपुराण[32] ने मनसा देवी के जन्म, उसकी पूजा, स्तोत्र (प्रशंसा) के विषय में उल्लेख किया है।

नवरात्र या दुर्गोत्सव

सुलतानपुर परिक्षेत्र में यह त्योहार अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित था, विवेच्य काल में भी इसे श्रद्धा एवं उल्लास के साथ मनाया जाता था। सम्पूर्ण भारत में आश्विन शुक्ल पक्ष की प्रथम तिथि से लेकर नवमी तक दुर्गापूजा का उत्सव, जिसे

---

32. 2/45–46)

नवरात्र भी कहते हैं, किसी-न-किससी रूप में मनाया जाता है। दुर्गोत्सव शरद (आश्विन शुक्ल) एवं बसन्त (चैत्र शुक्ल) दोनों में अवश्य किया जाना चाहिए। किन्तु आश्विन का दुर्गोत्सव ही धूमधाम के साथ मनाया जाता है, विशेषतः बंगाल, बिहार एवं कामरूप में। सुलतानपुर के सभी क्षेत्रों में यह मनाया जाता है। सुलतानपुर मे विशेष पीठ, दुर्गा भवानी, गौरीगंज, सम सेरिया भवानी, मुसाफिरखाना, कालपी, गौरीगंज कालिकन भवानी (मिश्रौली) अमेठी है।

यदि व्यक्ति 9 दिनों तक यह उत्सव करने में असमर्थ हो तो उसे आश्विन शुक्ल सप्तमी से आरम्भ कर तीस दिनों तक कर लेना चाहिए। तिथितत्व ने दुर्गा पूजा की अवधियों के बारे में कई विकल्प दिये हैं – (1) पूर्णिमान्त आश्विन के कृष्णपक्ष की नवमी में आश्विन शुक्ल की नवमी तक; (2) आश्विन शुक्ल की प्रथमा से नवमी तक; (3) षष्टी से नवमी तक; (4) सप्तमी से नवमी तक; (5) महाष्टमी से नवमी तक; (6) केवल महाष्टमी पर; (7) केवल महानवमी पर। इन विकल्पों में बहुत से कालिका एवं अन्य पुराणों में भी हैं।

दुर्गोत्सव पर विशाल साहित्य है, व्रतों, तिथियों एवं पूजा पर लिखने वाले सभी निबन्धों ने विशद प्रकाश डाला है। कुछ ग्रन्थ तो केवल इसी पर लिखित हैं, यथा शूलपाणि का दुर्गोत्सवविवेक; दुर्गापूजाप्रयोगतत्व, जिसका रघुनन्दन लिखित दुर्गार्चनपद्धति एक अंश है; विद्यापति की दुर्गाभक्तितरंगिणी; विनायक (नन्दपण्डित) कृत नवरात्र-प्रदीप; उदयसिंह (15 वीं शती का अर्धांश) की दुर्गोत्सवपद्धति। इनके अतिरिक्त मार्कण्डेयपुराण[33] में 'देवीमाहात्म्य' (या सप्तसती या चण्डी) भी है, जिसमें विष्णु, शंकर, अग्नि एवं देवों से संगृहीत तेजों से उत्पन्न देवी का स्वरूप, उसके द्वारा शिव से त्रिशूल, विष्णु से चक्र, इन्द्र से वज्र की प्राप्ति तथा महिषासुर, चण्ड, मुण्ड, शुम्भ एवं निशुम्भ नामक दानवों का वध एवं विजय प्राप्ति वर्णित है। कालिकापुराण,

---

33. अध्याय 78-90

बृहन्नंदिकेश्वरपुराण एवं देवीपुराण ने भी दुर्गा एवं उसकी पूजा का विशद वर्णन उपस्थित किया है।

यह पूजा मित्य एवं काम्य दोनों है। कालिकापुराण[34] ने व्यवस्था दी है कि जो प्रमाद, छल, मत्सर या मूर्खता के वश में आकर दुर्गोत्सव नहीं करता उसकी सभी कांक्षाएँ क्रुद्ध देवी द्वारा नष्ट हो जाती हैं। यह काम्य भी है, क्योंकि दुर्गोत्सव करने से फलों की प्राप्ति भी होती है। सभी को देवी की पूजा करनी चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से अतुलनीय महत्ता प्राप्त होती है और धर्म, अर्थ काम एवं मोक्ष पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है। भवानी को प्रसन्न करने के लिए, उस वर्ष में आनन्द के लिए, भूत–पिशाचों के नाश के एवं स्व–प्रसन्नता के लिए भवानी–पूजा करनी चाहिए। देवीपुराण में आया है – 'यह एक महान् एवं पवित्र व्रत है जो महान् सिद्धियाँ देता है, सभी शत्रुओं को नष्ट करता है, सभी लोगों का उपकार करता है विशेषतः आति वृष्टियों में। यह पुनीत यज्ञों के लिए ब्राह्मणों द्वारा, भूमिपालन के लिए क्षत्रियों, गोधन के लिए वैश्यों, पुत्रों एवं सुखों के लिए शुद्रों, सौभाग्य के लिए नारियों, अधिक धन के लिए धनिकों द्वारा सम्पादित होता है, यह शंकर आदि द्वारा सम्पादित हुआ था। आगे चलकर यह पूजा सामान्य सीमा पर उतर आयी, जैसाकि मार्कण्डेय पुराण[35] में आया है – 'वार्षिक महापूजा में जो शरत्काल में होती है, मेरे माहात्म्य को भक्तिपूर्वक सुनने से व्यक्ति सभी प्रकार की बाधा से निर्मुक्त एवं मेरे प्रसाद से धनधान्य से समन्वित हो जाता है।' भविष्य पुराण से दुर्गा पूजा की आतिशयोक्तिपूर्ण महता प्रकट हो जाती हैं – 'अग्निहोत्र आदि कर्म, दक्षिणा से युक्त वेद–यज्ञ चण्डिकापूजा के सामने लाख का एक अंश भी नहीं है।'

यह दुर्गापूजा सभी लोगों द्वारा सम्पादित की जा सकती है। न–केवल चारों वर्णों के लोग ही इसे कर सकते हैं, प्रत्युत इसे अन्य लोग भी जो जातियों के बाहर हैं,

---

34. *63/12–12*

35. *89/11–12*

कर सकते हैं। दुर्गापूजा का सामूहिक रूप भी है, यह केवल धार्मिक व्रत ही नहीं है, इसका सामाजिक महत्व है (यथा मित्रों को निमन्त्रित कर उनको खिलान-पिलाना)। 'इसका सम्पादन विन्ध्य पर्वत में (विन्ध्यवासिनी देवी के मन्दिर में), सभी स्थानों, नगरों, गृहों, ग्रामों एवं वनों में ब्राह्मणों, क्षत्रियों, राजाओं, वैश्यों, शूद्रों द्वारा, भक्तों द्वारा, उनके द्वारा जिन्होंने स्नान कर लिया है, जो प्रमुदित एवं हर्षित हैं, म्लेच्छों तथा अन्य लोगों (प्रतिलोम आदि) द्वारा तथा नारियों द्वारा हो सकता है।' दुर्गापूजा म्लेच्छों आदि द्वारा, दस्युओं (चोरी करने वालो, निष्काषित हिन्दुओं) द्वारा, अंग, बंग एवं कलिंग के लोगों द्वारा, किन्नरों, बर्बरों एवं शकों द्वारा की जाती है। पश्चात्कालीन निबन्धों में यह सावधानीपूर्वक आया है कि म्लेच्छों को मन्त्रों के साथ जप या होम या पूजा का अधिकार नहीं हैं, जैसा कि शूद्र ब्राह्मण द्वारा ऐसा करते हैं, किन्तु वे लोग देवी के लिए पशुओं की बलि या सुरा-दान मानसिक रूप में कर सकते हैं।

चण्डिका-पूजा के तीन प्रकार हैं - सात्त्विकी, राजसी एवं तामसी, जिनमें सात्त्विकी पूजा में जप होता है, नैवेद्य दिया जाता है किन्तु मांस का प्रयोग नहीं होता; राजसी में बलि एवं नैवेद्य होता है और मांस का प्रयोग होता है; किन्तु तामसी में सुरा एवं मांस का प्रयोग होता है, किन्तु जप एवं मन्त्रों का प्रयोग नही होता। इस अन्तिम प्रकार का सम्पादन किरातों (वनवासी आदि) द्वारा होता हे। रघुनन्दन ने प्रायश्चिततत्व में लिखा है कि दुर्गापूजा में सुरा का प्रयोग कलियुग की प्रथा नहीं है।

हमने देख लिया है कि आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा से पूर्णिमा तक प्रमुख देव चार मासों के लिए शयन आरम्भ करते हैं। दुर्गा इन दिनों में आषाढ़ शुक्ल अष्टमी को शयन करने जाती हैं। अतः आश्विन में वे सोती रहेंगी। अतः उनके बोधन के लिए वचनों के लिए वचनों की व्यवस्था हुई है। किन्तु यहाँ भी मतैक्य नहीं है। तिथितत्व में आया है कि यदि अठारह भुजाओं वाली देवी की पूजा करनी हो तो आश्विन के शुक्लपक्ष के पूर्व कृष्णपक्ष की नवमी तिथि पर देवी को जगाना चाहिए, किन्तु यदि दस भुजाओं वाली देवी की पूजा करनी हो तो आश्विन शुक्लपक्ष षष्ठी को बोधन कराना चाहिए।

किन्तु रघुनन्दन इस बात को अमान्य ठहराते हैं और कहते हैं कि दस भुजा वाली देवी का बोधन पिछले कृष्णपक्ष की नवमी को या शुक्लपक्ष की षष्ठी को होना चाहिए। यदि बोधन नवमी की हो तो संकल्प इस प्रकार का होना चाहिए – 'अमुकदेवशर्मा अतुलविभूतिकामः संवत्सरसुखकामो दुर्गाप्रीतिकामो वा वार्षिकशरत्कालीन दुर्गामहापूजामहं करिष्ये'। व्रती आश्विन शुक्लपक्ष की प्रथमा को भी आरम्भ कर सकता है और बोधन शुक्लपक्ष की षष्ठी को हो सकता है। संकल्प के उपरान्त ऋग्वेद का पाठ होता है। इसके उपरान्त घट की प्रतिष्ठा होती है जिसमें जल, आम्रपल्लव या अन्य वृक्षों की टहनियाँ डाली जाती हैं और दुर्गा की पूजा 16 या 5 उपचारों से की जाती है। इसके उपरान्त चन्दन-लेप एवं त्रिफला (केशों को पवित्र करने के लिए) एवं कंघी चढ़ायी जाती है। द्वितीया तिथि को केशों को ठीक स्थान पर रखने के लिए रेशम की पट्टी दी जाती है। तृतीया को पैरों को रंगने के लिए अलक्तक, सिर के लिए सिन्दूर, देखने के लिए दर्पण दिया जाता हे। चतुर्थी तिथि को देवी को मधुपर्क दिया जाता है, मस्तक पर तिलक के लिए चाँदी का एक टुकड़ा तथा आखों के लिए अंजन दिया जाता है। पंचमी तिथि को अंगराग एवं शक्ति के अनुसार आभूषण दिये जाते हैं।

यदि दुर्गापूजा षष्टी को (ज्येष्ठा नक्षत्र से संयुक्त हो या न हो) हो तो व्रती को प्रातःकाल बेल के वृक्ष के पास जाना चाहिए और संकल्प करना चाहिए, वेदमन्त्र कहना चाहिए, घट-स्थापना करना चाहिए और बिल्प वृक्ष को दुर्गा के समान पूजना चाहिए। यदि पूजा प्रतिपदा को ही आरम्भ कर दी गयी हो तो व्रती को बेल वृक्ष के पास सायंकाल (चाहे ज्येष्ठा हो या न हो) जाना चाहिए और देवी का बोधन मन्त्र के साथ करना चाहिए – 'रावण के नाश के लिए एवं राम पर अनुग्रह करने के लिए ब्रह्मा ने तुम्हें अकाल में जगाया, अतः मैं भी तुम्हें आश्विन की षष्ठी की सन्ध्या में जगा रहा हूँ।' दुर्गा-बोधन के उपरान्त व्रती को चाहिए कि वह बेल वृक्ष से यह कहे – 'हे बेल वृक्ष, तुमने श्रीशैल पर जन्म लिया है और तुम लक्ष्मी के निवास हो, तुम्हें ले चलना है, चलो, तुम्हारी पूजा दुर्गा के समान करनी है।' इसके उपरान्त व्रती बेल वृक्ष पर मही (मिट्टी), गंध, शिला, धान्य, दूर्बा, पुष्प, फल, दही, घृत, स्वस्तिक-सिन्दूर आदि को प्रत्येक के

साथ मन्त्र का उच्चारण करके रखता है और उसे दुर्गा के शुभ निवास के योग्य बनाता है। इसके उपरान्त वह दुर्गा-पूजा के मण्डप में आता है, आचमन करता है और उपराजिता लता को या नौ पौधों की पत्तियों को एक में गूँथता है। नव पत्रिका हैं कदली, दाड़िमी, धान्य, हरिद्रा, माणक, कचु, बिल्व, अशोक, जयन्ती। प्रत्येक के साथ विशिष्ट मन्त्र का पाठ होता है। इसी दिन दुर्गा की मिट्टी की प्रतिमा बिल्व की शाखा के साथ घर में लायी जाती है और पूजित होती है। अन्य विवरण हम यहाँ नहीं दे पा रहे हैं।

सप्तमी तिथि को, चाहे वह मूल-नक्षत्र से युक्त हो या रहित हो, व्रती स्नान करके बिल्व (बेल) वृक्ष के पास जाता है, पूजा करता है, हाथ जोड़कर कहता है – 'हे सौभाग्यशाली बिल्व, तुम सदा शंकर के प्यारे हो, तुमसे एक शाखा लेकर मैं दुर्गा पूजा करूगाँ; हे प्रभु, टहनी से कष्ट का अनुभव न करना; हे बिल्व, तुम पेड़ों के राजा हो, मैं तुम्हे नमस्कार करता हूँ।' इस प्रकार महकर वह दक्षिण-पश्चिम या उत्तर-पश्चिम दिशा को छोड़कर कहीं से कोई शाखा काट लेता है। उस शाखा में फल हो सकते हैं या नहीं भी हो सकते हैं। काटते समय मन्त्र-पाठ होता है। इसके उपरान्त उस शाखा को व्रती पूजा-मण्डप में लाता है और एक पीढ़े पर रख देता है।[36]

दुर्गापूजा में पशु-बलि के विषय में बहुत कुछ लिखा गया है। कुछ बातें यहां दी जा रही हैं। कालिका-पुराण[37] में दुर्गा एवं भैरव के सम्मान में बलि दिये जाने वाले जीवों का उल्लेख है – पक्षी, कच्छप (कछुआ), ग्राह, मछली, नौ प्रकार के मृग, भैंस, गंवय, बैल, बकरी, नेवला, शूकर, खड्ग, कृष्ण हरिण, शरभ, सिंह, व्याघ्र, मानव, व्रती का रक्त। किन्तु इनमें मादा जीवों का निषेघ है और लिखा हुआ है कि जो मादा की बलि देता है, वह नरक में जाता है। बलि के पशु के कान कटे हुए नहीं होन चाहिए। सामान्यतः बकरे एवं भैंसे काटे जाते हैं। ऐसा आया है कि विन्ध्यवासिनी देवी पुष्प,

---

36. कालिकापुराण (61/11-20); मत्स्य० (260/56-66)

37. 71/3-4 एवं 95-96

धूप, विलेपन तथा अन्य पशुओं की बलिसे उतनी प्रसन्न नहीं होतीं जिती भेड़ों एवं भैसों की बलि मे देवी को घोड़ा या हाथी की बलि कभी नहीं देना चाहिए; यादि कोई ब्राह्मण सिंह, व्याघ्र या मनुष्य की बलि करता है तो वह नरक में पड़ता है और इस लोक में भी अल्प जीवन पाता है तथा सुख एवं समृद्धि से वंचित रह जाता है; यदि कोई ब्राह्मण अपना रक्त देता है तो वह आत्महत्या का अपराधी होता है; यदि कोई ब्राह्मण सुरा चढ़ाता है तो वह ब्राह्मण-स्थिति खो देता है। यदि सुरा-दान करना ही हो तो काँसे के पात्र में नारियल-जल देना चाहिए या ताम्रपात्र में मधु देना चाहिए। किन्तु कुछ मत उपर्युक्त कथन के विरोध में पड़ते हैं। कालिकापुराण में अज, महिष एवं नर क्रम से बलि, महाबलि एवं अतिबलि घोषित हैं। यद्यपि पशु की बलि होती है किन्तु देवी को सामान्यतः उसका रक्त एवं सिर चढ़ाया जाता है। कालिका पुराण में आया है कि मन्त्रपूत (मन्त्र के साथ चढ़ाया हुआ) शोषित (रक्त) एवं शीर्ष (सिर) अमृत कहे जाते हैं। देवी पूजा में कुशल व्रती मांस बहुत ही कम चढ़ाता है, केवल रक्त एवं सिर का प्रयोग होता है जो अमृत हो जाता हैं। कालिका० में पुनः आया है कि शिवा (दुर्गा) बलि का सिर एवं मांस दोनों ग्रहण करती हैं, किन्तु व्रती को केवल रक्त एवं सिर ही पूजा में चढ़ाना चाहिए, समझदार लोगों को चाहिए कि वे मांस का प्रयोग होम एवं भोजन में करें। दुर्गार्चनपद्धति[38] में बलि किये जाने एवं रक्त-शीर्ष चढ़ाने के विषय में विस्तार के साथ लिखा है, जिसे हम स्थान-संकोच से यहाँ नहीं दे रहे हैं। अन्य बातों के लिए देखिए कालिकापुराण। कुछ लोगों के हृदय पशु-बलि से द्रवित हो उठते हैं अतः कालिका० ने अन्य व्यवस्थाएँ दी हैं, यथा कूष्माण्ड-बलि; ईख, मद्य, आसव (गुड, पुष्पों एवं औषधियों से प्राप्त)। इस विषय में और देखिए अहल्याकामनधेनु। (इस समय नर-बलि अवैध घोषित है।)

ऐसा विश्वास बहुत प्राचीन काल से रहा है कि बलि के जीव स्वर्ग में जाते हैं।

---

38. पृ० 669-671

देवी को प्रसन्न करने के लिए जो पशु बलि होते हैं वे स्वर्ग को चले जाते हैं और उन्हें मारते हैं वे पापी नहीं होते।

यहाँ तक विषयान्तर रहा। वास्तव में बलि नवमी तिथि को की जाती हे। अभी अप्टमी तिथि के कृत्य का वर्णन करना शेष है। पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र से युक्त या विहीन अष्टमी तिथि को, जिसे महाष्टमी कहा जाता है, व्रती स्नान एवं आचमन करके पूर्व या उत्तर की ओर मुख होकर दर्भों के आसन पर बैठता है और अपने को पवित्र करता है। इसके उपरान्त वह प्राणायाम करता है और अपेन विभिन्न अंगों (सिर से पैर तक) का न्यास करता है।

महाष्टमी पूजा के दिन व्रती उपवास करता हे। किन्तु पुत्रवान् व्रती ऐसा नहीं करता। अष्टमी तिथि को पूजा, नवमी तिथि को बलि, दशमी तिथि को देवी का विसर्जन आदि कृत्य किये जाते हैं।

अष्टमी तिथि को कुमारियों एवं ब्राह्मणों को खिलाया जाता है। देवीपुराण में आया है कि 'दुर्गा होम, दान एवं जप से उतनी प्रसन्नता नहीं व्यक्त करतीं जितनी कुमारियों को सम्मान देने से।' कुमारियों को दक्षिणा भी दी जाती है। और देखिए स्कन्द० जहाँ कुमारियों का विभाजन किया गया है – कुमारिका (दो वर्ष की), त्रिमूर्ति (तीन वर्ष की), कल्याणी, रोहिणी, काली, चण्डिका, शाम्भवी, दुर्गा, सुभद्रा। इनका वर्णन हम यहाँ नहीं करेंगे।

अब हम संक्षेप में नवमी तिथि (महानवमी) का वर्णन करेंगे। नवमी को चाहे उत्तरापाषाढ़ा नक्षत्र हो या न हो, महाष्टमी के समान ही पूजा की जाती है। पुरानी क्रियाओं का ही पुनरार्वन होता रहता है, अन्तर केवल यह होता है कि इस दिन अधिक पशुओं की बलि की जाती है। इस विषय में विस्तार के लिए देखिए राजनीतिप्रकाश[39] जहाँ देवीपुराण से लम्बे उद्धरण लिये गये हैं।

---

39. पृ० 439-444

दशमी तिथि को स्नान, आचमन के उपरान्त 16 उपचारों के साथ पूजा की जाती है। बहुत से कृत्यों के उपरान्त, यथा मूर्ति से विभिन्न वस्तुओं को हटाकर, किसी नदी या तालाब के पास जाकर संगीत, गान एवं नृत्य के साथ मन्त्रोच्चारण करके प्रतिमा को प्रवाहित कर दिया जाता है। ऐसी प्रार्थना की जाती है – 'हे दुर्गा, विश्व की माता, आप अपने स्थान को चली जायें और एक वर्ष के उपरान्त पुनः आयें।' इसके उपरान्त शबरोत्सव होता है। इसका अर्थ यह है कि दशमी तिथि को देवी-प्रतिमा के जल-प्रवाह के उपरान्त शबरों (वनवासी, भील आदि) से सम्बन्धित कृत्य (दुर्गापूजा के उपरान्त आनन्दाभिव्यक्ति के रूप में) किये जाने चाहिए। कालविवेक में आया है कि लोग विसर्जन के उपरान्त शबरों की भाँति पत्तियों से देह को ढँककर, कीचड़ आदि से शरीर को पोतकर नृत्य, गान एवं संगीत में प्रवृत्त हो आनन्दातिरेक से प्रभावित हो जायें। और देखिए कालिकापुराण जहाँ क्रीड़ाकौतुक, मंगल एवं शबरोत्सव आदि का उल्लेख है। शबरोत्सव से यही अर्थ निकाला जा सकता है कि देवी की दृष्टि में सभी लोग बराबर हैं, अतः दशमी तिथि में सबको एक साथ मिलकर आजकल प्रचलित नहीं है।

प्रतिमा के लिए दो-एक बातें लिख देना आवश्यक है। ऐसी ही प्रतिमा का पूजन होता है जिसमें देवी सिंह एवं महिषासुर के साथ निर्मित हुई हों। देवी महिषासुर के गले पर चढ़ गयीं, उसे अपने त्रिशूल से मारा तथा भारी तलवार से उसके सिर को काट डाला और उसे भूमि पर गिरा दिया। आजकल देवी की प्रतिमा के साथ लक्ष्मी एवं गणेश की प्रतिमाएँ दाहिनी ओर तथा सरस्वमी एवं कार्तिकेय की प्रतिमाएँ बायीं ओर बनी रहती हैं। प्रतिमा सोने, चाँदी, मिट्टी, धातु, पाषाण आदि की बन सकती है, या केवल देवी का चित्र मात्र हो सकता है। देवी की पूजा लिंग में, वेदिका पर या पुस्तक में, पादुकाओं पर, प्रतिमा में, चित्र में त्रिशूल में, तलवार में या जल में हो सकती है।

दुर्गा के बाहुओं के विषय में मतैक्य नहीं है। वराह पुराण[40] में देवी के 20 हाथ एवं 20 हथियार हैं। हेमाद्रि ने आठ एवं दस हाथों का उल्लेख किया है।

'नवरात्र' शब्द के विषय में कई मत हैं। कुछ लोगों के अनुसार नवरात्र का तात्पर्य है '9 दिन एवं रात्रि'। यह केवल समय का द्योतक है जिसमें व्रत किया जाता है, यह कर्म का नाम नहीं है। किन्तु कुछ लोग इसे व्रत से सम्बन्धित मानते हैं, जो आठ दिनों तक चल सकता है जब कि तिथि-क्षय हो, या 10 दिनों तक, यदि पहले दिन से नवें दिन तक तिथि की कोई वृद्धि हो। पहला मत कालतत्वविवेक में तथा दूसरा पुरुषार्थचिन्तामणि में प्रकाशित है। हम इसके विवेचन में यहाँ नहीं पड़ेगे।

नवरात्र में दुर्गापूजा के प्रमुख विषय चाहे वे 3 दिनों (सप्तमी से प्रारम्भ होकर) तक चलें, या 9 दिनों (प्रथम से नवमी) तक चलें, चार हैं, यथा स्नपन (प्रतिमा-स्नान), पूजा, बलि एवं होम। ऊपर हमने स्थानाभाव से स्नपन का विवेचन नहीं किया है। इस विषय में देखिए दुर्गार्चनपद्धति, व्रतराज एवं अन्य निबन्ध। इन चारों कृत्यों में पूजा सबसे महत्वपूर्ण है और उपवास केवल पूजा का अंग है।

एक अन्य प्रश्न है – पूजा का समय क्या होना चाहिए? समयमयूख ने प्रातः काल, निर्णयसिन्धु ने रात्रि काल माना है। किन्तु देवीपुराण एवं कालिकापुराण से व्यक्त होता है कि प्रातः, मध्याहन् एवं रात्रि तीनों ठीक हैं। इस प्रश्न के विषय में हम अन्य मतमतान्तरों का उल्लेख नहीं करेंगे।

ऊपर कलश या घट के विषय में संकेत किया जा चुका है। पूर्ण कलश पवित्रता एवं समृद्धि का प्रतीक है, ऐसा वैदिक काल से ही प्रकट है[41] यह दिन में किया ज़ाता है न कि रात्रि में। पवित्र मिट्टी का घट रख दिया जात है, उसमें जल भरा जाता है। उपर्युक्त सभी कृत्यों के साथ वैदिक मन्त्रों का पाठ होता है और उस पर वरुण-पूजा

---

40. *95/41*

41. *ऋ० 3/32/15 'आपूर्णो अस्य कलशः'*

की जाती है। इसके उपरान्त घट में दुर्गा का आवाहन किया जात है, सभी देवों की प्रतिष्ठा होती है, उपचार किये जाते हैं, प्रार्थना की जाती है। अन्य बातें विस्तार-भय से छोड़ दी जा रही हैं।

हेमाद्रि[42] ने देवीपुराण से उद्धरण देकर अश्वों के सम्मान का उल्लेख किया है। दुर्गापूजा सबकी है। राजा या जिनके पास घोड़े होते हैं उन्हें द्वितीया तिथि से नवमी तक घोड़ों का सम्मान करना चाहिए। इसमें दुर्गाष्टमी व्रत की चर्चा है, जिसके विषय में हेमाद्रि भी कुछ अन्तरों के साथ विवेचन उपस्थित किया है।

दुर्गापूजा की प्राचीनता के विषय में हमने इस महाग्रन्थ के खण्ड दो में पढ़ लिया है। यहाँ कुछ विशेष बातों का उल्लेख हो रहा है। तै० सं०[43] में अम्बिका को शिव की बहिन कहा गया हे, किन्तु तै० आ० में शिव को अम्बिका या उमा का पति कहा गया है। वन०[44] में दुर्गा को यशोदा एवं नन्द की लड़की कहा गया है और उसे वासुदेव की बहिन कहा गया है और काली, महाकाली एवं दुर्गा की संज्ञा से विभूषित किया गया है। जब कृष्ण के कहने पर अर्जुन ने दुर्गास्तोत्र का पाठ किया तो कई नामों का उल्लेख हुआ, यथा कुमारी, काली, कपाली, कपिला, भद्रकाली, महाकाली, चण्डी, कात्यायनी, कौशिकी, उमा। किन्तु महाभारत की इन उक्तियों की तिथियों के समय के विषय में कुछ निश्चित निर्णय देना सम्भव नहीं है। साहित्यिक ग्रन्थों एवं सिक्कों से दुर्गा-पूजा की प्राचीनता पर कुछ निश्चित तालिका उपस्थित होती है। रघुवंश (सर्ग 2) में पार्वती द्वारा लगाये गये देवदारुवृक्ष की रक्षा के निमित्त नियुक्त एक सिंह का उल्लेख है। कुमारसम्भव में शिव का अर्धनारीश्वर स्वरूप भी उल्लिखित है । उसी ग्रन्थ में माताओं, काली (मुण्डों का आभूषण धारण किये) के नाम आये हैं। मालतीमाधव (अंक 5) में चामुण्डा को पाद्मवती नगरी में मानव-बलि दिये जाने का उल्लेख है।

---

42. *व्रत, भाग 1, पृ० 906*
43. *1/8/6/1*
44. *अध्याय 6*

मृच्छकटिक (6/27) में शुम्भ एवं निशुम्भ का दुर्गा द्वारा मारा जाना उल्लिखित है। यदि कालिदास का समय 350-450 ई० है तो दुर्गापूजा 300 ई० के पहले से अवश्य प्रचलित है। इस पर सिक्कों से भी प्रकाश पड़ता है। गुप्तकुल के सम्राट चन्द्रगुप्त प्रथम (305-325 ई०) के सिक्कों पर सिंहवाहिनी देवी का चित्र है। तत्पूर्णकालीन कुषाण राजा 'कनिष्क' के सिक्कों पर भी चन्द्र एवं (बायी ओर झुके हुए) सिंह के साथ देवी का चित्र है, देवी के हाथ में पाश एवं राजदण्ड है। पाश एवं वाहन सिंह से प्रकट होता है कि वह दुर्गा है न कि लक्ष्मी। इससे हम प्रथम या दूसरी शताब्दी तक पहुँच जाते हैं। दिल्ली से प्राप्त सिक्कों पर एक तरफ लक्ष्मी का चित्र एवं दूसरी तरफ मु० बिन साम के सिक्के मिलते हैं। यह सिक्के 12 वीं एवं 12वीं शताब्दी के हैं।

दो नवरात्रों (चैत्र एवं अश्विन) की व्यवस्था क्यों की गयी है? यहाँ केवल अनुमान लगाने से कुछ प्रकाश मिल सकता है। यह सम्भव है कि ये दोनों पूजाएँ वसन्त एवं शरद् कालीन नवारात्रों से सम्बन्धित रहीं हों। दुर्गापूजा पर शाक्त सिद्धान्तों एवं प्रयोगों का प्रभाव पड़ा है। घोष ने अपने ग्रन्थ 'दुर्गापूजा' में कल्पना की है कि वैदिक काल की उषा ही पौराणिक एवं तान्त्रिक दुर्गा है। किन्तु यह अमान्य है। कहाँ वेदकाल की सुन्दर एवं शोभनीय उषा और कहाँ कालिकापुराण की भयंकर दुर्गा? दोनों के बीच में जोड़ने वाली कोई कड़ियाँ नहीं हैं। दुर्गा का सम्बन्ध ज्योतिष की (पांचवी-छठी राशि) सिंहवाहिनी दुर्गा से हो सकता है, किन्तु इससे भी कोई विशिष्ट प्रकाश नहीं पड़ता।

इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली[45] में श्री एन० जी० बनर्जी ने उदयसिंह की दुर्गोत्सवपद्धति की ओर निर्देश किया है, जिसमें जय के लिए महानवमी एवं संकल्प से आरम्भ हुआ है और अन्त किया गया है घोड़ों के प्रयाण करने के विवरण से, जो दशमी को होता है। इससे उन्होंने कहा है कि यह दुर्गापूजा आरम्भ में सैनिक कृत्य था जो आगे चलकर धार्मिक हो गया। उन्होंने अपनी स्थापना के लिए रघुवंश का हवाला

---

45. जिल्द 21, पृ० 227-231

दिया है जिसमें शरद् के आगमन पर रघु द्वारा आक्रमण करने के लिए शान्ति कृत्य (अश्वनीराजना) किया गया है। यह बात बृहत्संहिता से भी सिद्ध की गयी है जहाँ घोड़ों, हाथियों एवं सैनिकों का नीराजन करना आश्विन या कार्तिक के शुक्ल पक्ष की अष्टमी, द्वादशी या पूर्णिमा तिथियों में कहा गया है। किन्तु यह धारणा भ्रामक है, क्योंकि ऐसा बहुधा पाया गया है कि बहुत-से उत्सव समान तिथियों में होते हैं, यथा उत्तर भारत में रामलीला का उत्सव नवरात्र से संयुक्त हो दस दिनों तक चलता है। रामलीला एवं नवरात्र दोनों स्वतन्त्र कृत्य हैं।[46]

कृष्णजन्माष्टमी

सुलतानपुर परिक्षेत्र में यह त्योहार अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित था, विवेच्च काल में भी इसे श्रद्धा एवं उल्लास के साथ मनाया जाता था। श्रावण (अमान्त) कृष्णपक्ष की अष्टमी को कृष्णजन्माष्टमी या जन्माष्टमी व्रत एवं उत्सव प्रचलित है, जो भारत में सर्वत्र मनाया जाता है और सभी व्रतों एवं उत्सवों में श्रेष्ठ माना जाता है। कुछ पुराणों में ऐसा आया है कि यह भाद्रपक्ष के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को मनाया जाता है। इसकी व्याख्या यों है कि पौराणिक वचनों में मास पूर्णिमान्त हैं तथा इन मासों में कृष्ण पक्ष प्रथम पक्ष है।

कृष्ण-पूजा की प्राचीनता एवं कृष्ण के विषय में संक्षेप में कुछ कह देना आवश्यक है। छान्दोग्योपनिषद् में आया है कि कृष्ण देवकीपुत्र ने घोर आंगिरस से शिक्षाएँ ग्रहण कीं। कृष्ण नाम के एक वैदिक कवि थे जिन्होंने अश्विनों से प्रार्थना की है । जैन परम्पराओं में कृष्ण 22 वें तीर्थंकर नेमिनाथ के समकालीन माने गये हैं ओर जैनों के पाक्-इतिहास के 63 महापुरुषों के विवरण में लगभग एक-तिहाई भाग कृष्ण के सम्बन्ध में ही है। महाभारत में कृष्ण-जीवन भरपूर है। महाभारत में वे यादव राजकुमार कहे गये हैं, वे पाण्डवों के सबसे गहरे मित्र थे, बड़े भारी योद्धा थे, राजनीतिक एवं दार्शनिक थे। कतिपय स्थानों पर वे परमात्मा माने गये हैं और स्वयं

---

46. वही

विष्णु कहे गये हैं।

पाणिनी[47] से प्रकट होता है कि इनके काल में कुछ लोग वासुदेवक एवं अर्जुनक भी थे, जिनका अर्थ है क्रम से वासुदेव एवं अर्जुन के भक्त। पतञ्जलि के महाभाष्य के वार्तिकों में कृष्ण-सम्बन्धी व्यक्तियों एवं घटनाओं की ओर संकेत है। अधिकांश विद्वानों ने पतञ्जलि को ई० पू० दूसरी शताब्दी का माना है। कृष्ण-कथाएँ इसके बहुत पहले की हैं। आदि० एवं सभा० में कृष्ण को वासुदेव एवं परमब्रह्म एवं विश्व का मूल कहा गया है। ऐण्टीक्वेरी[48] में कृष्ण को 'भागवत एवं सर्वेश्वर' कहा गया है। यही बात नानाघाट अभिलेखों (ई० पू० 200 ई०) में भी है। बेसनगर के गरुडध्वज अभिलेखों में वासुदेव को 'देव-देव' कहा गया है। ये प्रमाण सिद्ध करते हैं कि ई० पू० 500 के लगभग उत्तरी एवं मध्य भारत में वासुदेव पूजा प्रचलित थी। अधिक प्रकाश के लिए देखिए श्री आर० जी० भण्डारकर कृत 'वैष्णविज्म, शैविज्म' आदि जहाँ वैष्णव सम्प्रदाय एवं इसकी प्राचीनता के विषय में विवेचन उपस्थित किया गया है।

यह आश्चर्यजनक है कि कृष्णजन्माष्टमी पर लिखे गये मध्यकालिक ग्रन्थों ने भविष्य०, भविष्योत्तर०, स्कन्द०, विष्णुधर्मोत्तर०, नारदीय एवं ब्रह्मवैवर्त पुराणों से उद्धरण तो लिये हैं किन्तु उन्होंने उस भागवत पुराण को अछूता छोड़ रखा है जो पश्चात्कालीन मध्य एवं वर्तमानकालीन वैष्णवों का 'वेद' माना जाता है। भागवत में कृष्ण-जन्म का विवरण संदिग्ध एवं साधारण है। वहाँ ऐसा आया है कि जन्म के समय काल सर्वगुणसम्पन्न एवं शोभन था, दिशाएँ स्वच्छ एवं गगन निर्मल एवं उडुगण युक्त था, वायु सुखस्पर्शी एवं गन्धवाही था और जब जनार्दन ने देवकी के गर्भ से जन्म लिया तो अर्धरात्रि थी तथा अन्धकार ने सबकों ढँक लिया था।

भविष्योत्तर पुराण [49] में कृष्ण द्वारा कृष्णजन्माष्टमी व्रत के बारे में युधिष्ठिर से

---

47. 4/3/98

48. 61, पृ० 203

49. 44/1-69

स्वयं कहलाया गया है – मैं वसुदेव एवं देवकी से भाद्र कृष्ण अष्टमी को उत्पन्न हुआ था, जबकि सूर्य सिंह राशि में था, चन्द्र वृषभ में था और नक्षत्र रोहिणी था (74–75 श्लेक)। जब श्रावण के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को रोहिणी–नक्षत्र होता है तो वह तिथि जयन्ती कहलाती है, उस दिन उपवास करने से सभी पाप जो बचपन, युवावस्था, वृद्धावस्था एवं बहुत से पूर्वजन्मों में हुए रहते हैं, कट जाते हैं। इसका फल यह है कि यदि श्रावण कृष्णपक्ष की अष्टमी को राहिणी हो तो न यह केवल जन्माष्टमी होती है, किन्तु जब श्रावण की कृष्णाष्टमी से रोहिणी संयुक्त हो जाती है तो जयन्ती होती है।

अब प्रश्न यह है कि 'जन्माष्टमी व्रत' एवं 'जयन्ती व्रत' एक ही हैं या ये दो पृथक् व्रत हैं। कालनिर्णय ने दोनों को पृथक् माना है, क्योंकि दो पृथक् नाम आये हैं, दोनों के निमित्त (अवसर) पृथक् हैं (प्रथम कृष्णपक्ष की अष्टमी है और दूसरी रोहिणी से संयुक्त कृष्णपक्ष की अष्टमी), दोनों की विशेषताएँ पृथक् हैं, क्योंकि जन्माष्टमी व्रत में शास्त्र ने उपवास की व्यवस्थादी है और जयन्ती व्रत में उपवास, दान आदि की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त जन्माष्टमी व्रत नित्य है (क्योंकि इसके न करने से केवल पाप लगने की बात कही गयी हैं) और जयन्ती व्रत नित्य एवं काम्य दोनों है, क्योंकि उसमें इसके न करने से न केवल पाप की व्यवस्था है प्रत्युत करने से फल प्राप्ति की बात भी कही गयी है। एक ही श्लोक में दोनों के पृथक् उल्लेख भी हैं। हेमाद्रि, मदनरत्न, निर्णयसिन्धु आदि ने दोनों को भिन्न माना है। नि० सि० ने यह भी लिखा है कि इस काल में लोग जन्माष्टमी व्रत करते हैं न कि जयन्ती व्रत। किन्तु जयन्तीनिर्णय का कथन है कि लोग जयन्ती मनाते है न कि जन्माष्टमी। सम्भवतः यह भेद उत्तर दक्षिण भारत का है।

वराहपुराण एवं हरिवंश में दो विरोधी बातें हैं। प्रथम के अनुसार कृष्ण का जन्म आषाढ़ शुक्ल द्वादशी को हुआ था। हरिवंश के अनुसार कृष्ण–जन्म के समय अभिजत् नक्षत्र था और विजय मुहूर्त था। सम्भवतः इन उक्तियों में प्राचीन परम्पराओं की छाप हैं

मध्यकालिक निबन्धों में जन्माष्टमी व्रत के सम्पादन की तिथि एवं काल के विषय में भी विवेचन पाया जाता हैं ।

सभी पुराणों एवं जन्माष्टमी सम्बन्धी ग्रन्थों से स्पष्ट होता है कि कृष्णजन्म के सम्पादन का प्रमुख समय है श्रावण कृष्णपक्ष की अष्टमी की अर्धरात्रि (यदि पूर्णिमान्त होता है तो भाद्रपद मास में किया जाता है)। यह तिथि दो प्रकार की है - (1) बिना रोहिणी नक्षत्र की तथा (2) रोहिणी नक्षत्र वाली। निर्णयामृत[50] में 18 प्रकार हैं, जिनमें 8 शुद्धा तिथियाँ; 8 विद्धा तथा अन्य 2 हैं (जिनमें एक अर्धरात्रि में रोहिणी नक्षत्र वाली तथा दूसरी रोहिणी से युक्त नवमी, बुध या मंगल को)। यहाँ पर विभिन्न मतों के विवेचन में हम नहीं पड़ेगे। केवल तिथितत्व से संक्षिप्त निर्णय दिये जा रहे हैं- यदि जयन्ती (रोहिणीयुक्त अष्टमी) एक दिन वाली है, तो उसी दिन उपवास करना चाहिए, यदि जयन्ती न हो तो उपवास रोहिणी युक्त अष्टमी को होना चाहिए, यदि रोहिणी से युक्त दो दिन हों तो उपवास दूसरे दिन किया जाता है, यदि रोहिणी नक्षत्र न हो तो उपवास अर्धरात्रि में अवस्थित अष्टमी को होना चाहिए या यदि अष्टमी अर्द्ध रात्रि में दो दिनों वाली हो या यदि वह अर्धरात्रि में न हो तो उपवास दूसरे दिन किया जान चाहिए।

यदि जयन्ती बुध या मंगल को हो तो उपवास महापुण्यकारी होता है और करोड़ों व्रतों से श्रेष्ठ माना जाता है और जो व्यक्ति बुध या मंगल से युक्त जयन्ती पर उपवास करता है वह जन्म-मरण से सदा के लिए छुटकारा पा लेता हैं।

जन्माष्टमी व्रत में प्रमुख कृत्य हैं उपवास, कृष्ण-पूजा, जागर (रात का जागरण, स्त्रोत्र-पाठ एवं कृष्ण जीवन-सम्बन्धी कथाएँ सुनना) एवं पारण।

समयमयूख, व्रतराज[51], धर्मसिन्धु ने भविष्योत्तर० (अध्याय 55) के आधार पर जन्माष्टमी व्रत-विधि पर लम्बे-लम्बे विवेचन उपस्थित किये हैं। यहाँ हम प्रथम दो से संक्षेप में विधि पर प्रकाश डालते हैं, क्योंकि दोनों में बहुत सीमा तक साम्य है।

व्रत के दिन प्रातः व्रती को सूर्य, सोम (चन्द्र), यम, काल, दोनों सन्धयाओं

---

50. पृ० 56-58

51. पृ० 274-277

(प्रातः एवं सायं), पंच भूतों, दिन, क्षप (रात्रि), पवन, दिक्पालों, भूमि, आकाश, खचरों (वायु-दिशाओं के निवासियों) एवं देवों का आह्वान करना चाहिए, जिससे वे उपस्थित हों। उसे अपने हाथ में जलपूर्ण ताम्र पात्र रखना चाहिए, जिसमें कुछ फल, पुष्प, अक्षत हो और मांस आदि का नाम लेना चाहिए और संकल्प करना चाहिए – 'मैं कृष्णजन्माष्टमी व्रत कुछ विशिष्ट फल आदि तथा अपने पापों से छुटकारा पाने के लिए करूगाँ।' तब वह वासुदेव को सम्बोधित चार मन्त्रों का पाठ करता है जिसके उपरान्त वह पात्र में जल डालता है। उसे देवकी के पुत्र-जनन के लिए प्रसूति-गृह का निमार्ण करना चाहिए, जिसमें जल से पूर्ण शुभ पात्र, आम्रदल, पुष्पमालाएँ आदि रखना चाहिए, अगरु जलाना चाहिए और शुभ वस्तुओं से अलंकरण करना चाहिए तथा षष्ठी देवी को रखना चाहिए। गृह या उसकी दीवारों के चतुर्दिक् देवों एवं गन्धर्वो के चित्र बनबाने चाहिए (जिनके हाथ जुड़े हुए हों), वसुदेव (हाथ में तलवार से युक्त), देवकी, नन्द, यशोदा, गोपियों, कंस-रक्षकों, यमुना नदी, कालिय नाग तथा गोकुल की घटनाओं से सम्बन्धित चित्र आदि बनवाने चाहिए। प्रसूति-गृह में परदों से युक्त बिस्तर तैयार करना चाहिए। व्रती को किसी नदी (या तलाब या कहीं भी) में तिल के साथ दोपहर में स्नान करके यह संकल्प करना चाहिए – 'मैं कृष्ण की पूजा उनके सहगामियों के साथ करूगाँ'। उसे सोने या चाँदी आदि की कृष्ण-प्रतिमा बनबानी चाहिए, प्रतिमा के गालों का स्पर्श करना चाहिए और मन्त्रों के साथ उनकी प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिए। उसे मन्त्र के साथ देवकी व उनके शिशु श्री कृष्ण का ध्यान करना चाहिए तथा वसुदेव, देवकी, नन्द, यशोदा, बलदेव एवं चण्डिका की पूजा स्नान, धूप, गन्ध, नैवेद्य आदि के साथ एवं मन्त्रों के साथ करनी चाहिए। तब चन्द्रोदय (या अर्धरात्रि के थोड़ी देर उपरान्त) के समय किसी वेदिका पर अर्घ्य देना चाहिए, यह अर्घ्य रोहिणी युक्त चन्द्र को भी दिया जा सकता है, अर्घ्य में शंख से जल-अर्पण होता है जिसमें पुष्प, कुश, चन्दन-लेप डाले हुए रहते हैं, यह सब एक मन्त्र के साथ होता है। इसके उपरान्त व्रती को चन्द्र का नमन करना चाहिए और दण्डवत झुक जाना चाहिए तथा वसुदेव के विभिन्न नामों वाले श्लोकों का पाठ करना चाहिए और अन्त में

प्रार्थनाएँ करनी चाहिए। व्रती को रात्रि भर कृष्ण की प्रशंसा के स्तोत्रों, पौराणिक कथाओं, गानों एवं नृत्यों में संलग्न रहना चाहिए। दूसरे दिन प्रातः काल के कृत्यों के सम्पादन के उपरान्त, कृष्ण–प्रतिमा का पूजन करना चाहिए, ब्राह्मणों को भोजन देना चाहिए, सोना, गौ, वस्त्रों का दान 'मुझ पर कृष्ण प्रसन्न हों' शब्दों के साथ करना चाहिए। उसे "यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत्। भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः॥ सुजन्म–वासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च। शान्तिरस्तु शिवं चास्तु" का पाठ करना चाहिए तथा कृष्ण –प्रतिमा किसी ब्राह्मण को दे देनी चाहिए और पारण करने के उपरान्त व्रत को समाप्त करना चाहिए।

अकबर के शासन काल में इसे सामूहिक रूप से मनाने की व्यवस्था थी, स्वयं अकबर भी इन त्योहारों में अपनी सक्रिय भागीदारी प्रस्तुत करता था।

मकर–संक्रान्ति

सुलतानपुर परिक्षेत्र में यह त्योहार अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित था, विवेच्च काल में भी इसे श्रद्धा एवं उल्लास के साथ मनाया जाता था। यह एक आति महत्वपूर्ण धार्मिक कृत्य एवं उत्सव है। आज से लगभग 80 वर्ष पूर्व, उन दिनों के पंचांगों के अनुसा, यह 12 वीं या 13 वीं जनवरी को पड़ती थी, किन्तु अब विषुवतों के अग्रगमन (अयनचलन) के कारण 13 वीं या 14 वीं जनवरी को पड़ करती हैं। 'संक्रान्ति' का अर्थ है सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में जाना, अतः वह राशि जिसमें सूर्य प्रवेश करता है, संक्रान्ति की संज्ञा से विख्यात है। जब सूर्य धनु राशि को छोड़कर मकर राशि में प्रवेश करता है तो मकरसंक्रान्ति होती है। राशियाँ बारह हैं, यथा मेष, वृषम, मिथुन, कर्कट, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन। मलमास पड़ जाने पर भी वर्ष में केवल 12 राशियाँ होती हैं। प्रत्येक संक्रान्ति पवित्र दिन के रूप में ग्राह्य है। मत्स्य०[52] ने संक्रान्ति–व्रत का वर्णन किया है। एक दिन पूर्व व्यक्ति (नारी या पुरुष) को

---

52. अध्याय 98

केवल एक बार मध्याह्न में भोजन करना चाहिए और संक्रान्ति के दिन दाँतों को स्वच्छ करके तिलयुक्त जल से स्नान करना चाहिए। व्यक्ति को चाहिए कि वह किसी संयमी ब्राह्मण गृहस्थ को भोजन सामग्रियों से युक्त तीन पात्र तथा एक गाय यम, रुद्र एवं ध र्म के नाम पर दे और चार श्लोकों को पढ़े, जिनमें एक यह है 'यथा भेदं' न पश्यामि शिवविष्णवर्कपद्मजान्। तथा ममास्तु विश्वात्मा शंकरः शंकरः सदा।।' अर्थात् 'मैं शिव एवं विष्णु तथा सूर्य एवं ब्रह्मा में अन्तर नहीं करता, वह शंकर, जो विश्वात्मा है, सदा कल्याण करने वाला हो' (दूसरे 'शंकर' शब्द का अर्थ है – शं कल्याणं करोति)। यदि हो सके तो व्यक्ति को चाहिए कि वह ब्राह्मण को आभूषणों, पर्यंक, स्वर्णपात्रों (दो) का दान करे। यदि वह दरिद्र हो तो ब्राह्मण को केवल फल दे। इसके उपरान्त उसे तैल-विहीन भोजन करना चाहिए और यथाशक्ति अन्य लोगों को भोजन देना चाहिए। स्त्रियों को भी यह व्रत करना चाहिए। संक्रान्ति, ग्रहण, अमावास्या एवं पूर्णिमा पर गंगा-स्नान महापुण्यदायक माना गया है, और ऐसा करने पर व्यक्ति ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। प्रत्येक संक्रान्ति पर सामान्य जल (गर्भ नहीं किया हुआ) से स्नान करना नित्यकर्म कहा जाता है, जैसा कि देवीपूराण[53] में घोषित है – 'जो व्यक्ति संक्रान्ति के पवित्र दिन पर स्नान नहीं करता वह सात जन्मों तक रोगी एवं निर्धन रहेगा; संक्रान्ति पर जो भी देवों को हव्य एवं पितरों को कव्य दिया जाता है, वह सूर्य द्वारा भविष्य के जन्मों में लौटा दिया जाता है।'

प्राचीन ग्रन्थों में ऐसा लिखित है कि केवल सूर्य का किसी राशि में प्रवेश मात्र ही पुनीतता का द्योतक नहीं है, प्रत्युत सभी ग्रहों का अन्य नक्षत्र या राशि में प्रवेश पुण्यकाल माना जाता है। 'सूर्य के विषय में संक्रान्ति के पूर्व या पश्चात 16 घटिकाओं का समय पुण्य समय है; चन्द्र के विषय में दोनों ओर एक घटी 13 पल पुण्यकाल है; मंगल के लिए 4 घटिकाएँ एवं एक पल; बुध के लिए 3 घटिकाएँ एवं 14 पल; बृहस्पति के लिए चार घटिकाएँ एवं 37 पल; शुक्र के लिए 4 घटिकाएँ एवं एक पल तथा शनि के लिए 82 घटिकाएँ एवं 7 पल।'

---

53. का० वि०, पृ० 380 का० नि०, पृ० 333 आदि में उद्धृत

ग्रहों की भी संक्रान्तियाँ होती हैं, किन्तु पश्चात्कालीन लेखकों के अनुसार 'संक्रान्ति' शब्द केवल रवि-संक्रान्ति के नाम से ही द्योतित है।

वर्ष भर की 12 संक्रान्तियाँ चार श्रेणियों में विभक्त हैं - (1) दो अयन-संक्रान्तियाँ (मकर-संक्रान्ति, जब उत्तरायण का आरम्भ होता है एवं कर्कट-संक्रान्ति, जब दक्षिणायन का आरम्भ होता है), (2) दो विषुव-संक्रान्तियाँ (अथ्रत् मेष एवं तुला संक्रान्तियाँ, जब रात्रि एवं दिन बराबर होते हैं), (3) वे चार संक्रान्तियाँ, जिन्हें षडशीतिमुख (अर्थात् मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन) कहा जाता है तथा (4) विष्णुपदी या विष्णुपद (अर्थात् वृषभ, सिंह, वृश्चिक एवं कुम्भ) नामक संक्रान्तियाँ।

आगे चलकर संक्रान्ति का देवीकरण हो गया और वह सक्षात् दुर्गा कही जाने लगी। देवीपुराण[54] में आया है कि देवी वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन आदि के क्रम से सूक्ष्म-सूक्ष्म विभाग के कारण सर्वगत विभु रूप वाली है। देवी पुण्य तवं पाप के विभागों के अनुसार फल देने वाली हैं। संक्रान्ति के काल में किये गये एक कृत्य से भी कोटि-कोटि फलों की प्राप्ति होती है। धर्म से आयु, राज्य, पुत्र, सुख आदि की वृद्धि होती है, अर्धम से व्याधि, शोक आदि बढ़ाते हैं। विषुव (मेष एवं तुला) संक्रान्ति के समय जो दान या जप किया जाता है या अयन (मकर एवं कर्कट संक्रान्ति) में जो सम्पादित होता है, वह अक्षय होता है। यही बात विष्णुपद एवं षडशीति-मुख के विषय में भी है।

मकर संक्रान्ति का उद्गम बहुत प्राचीन नहीं है। ईसा के कम-से कम एक सहस्त्र वर्ष पूर्व ब्राह्मण एवं औपनिषदिक ग्रन्थों में उत्तरायण के छः मासों का उल्लेख है।[55]

---

54. *हे०, काल, पृ० 418-419; कृ० र०, पृ० 614-615 एवं कृत्यकल्प, पृ० 361)*
55. *शतपथ ब्राह्मण, 2/1/3/1, 3 एवं 4; छान्दोग्योपनिषद्, 4/15/5 एवं 5/10/1-2।*

ऋग्वेद में 'अयन' शब्द आया है, जिसका अर्थ है 'मार्ग' या 'स्थल'। गृह्यसूत्रों में 'उदगयन' उत्तरायण का ही द्योतक है । जहाँ स्पष्ट रूप से उत्तरायण आदि कालों में संस्कारों के करने की विधि वर्णित है। किन्तु प्राचीन श्रौत, गृह्य एवं धर्म सूत्रों में राशियों का उल्लेख नहीं है। राशियों के विषय में हम काल एवं मुहुर्त के प्रकरण में अध्ययन करेंगे। 'उदगयन' बहुत शताब्दियों पूर्व से शुभ काल माना जाता रहा है, अतः मकरसंक्रान्ति, जिससे सूर्य की उत्तरायण गति आरम्भ होती है, राशियों के चलन के उपरान्त पवित्र दिन मानी जाने लगी। मकर-संक्रान्ति पर तिल को इतनी महत्ता क्यों प्राप्त हुई, कहना कठिन है। सम्भवतः मकर-संक्रान्ति के समय जाड़ा होने के कारण तिल जैसे पदार्थों का प्रयोम सम्भव है। चाहे जो हो, ईसवी सन् के आरम्भकाल से अधि क प्राचीन मकर-संक्रान्ति नहीं है।

आजकल के पंचांगों में मकर-संक्रान्ति का देवीकरण भी हो गया है; वह देवी मान ली गयी है। संक्रान्ति किसी वाहन पर चढ़ती है, उसका प्रमुख वाहन हाथी जैसे वाहन-पशु है; उसके उपवाहन भी हैं; उसके वस्त्र काले, श्वेत या लाल आदि रंगों के होते हैं; उसके हाथ में धनुष या शूल रहता है, वह लाल या गोरोचन जैसे पदार्थों का तिलक करती है; वह युवा, प्रौढ़ या वृद्ध है; वह खड़ी या बैठी हुई वर्णित है; उसके पुष्पों, भोजन, आभूषण का उल्लेख है; उसके दो नाम (सात नामों में) विशिष्ट हैं; वह पूर्व आदि दिशाओं से आती है और पश्चिम आदि दिशाओं में चली जाती है, और तीसरी दिशा की ओर झाँकती है; उसके अधर झुके हैं, नाक लम्बी है, उसके 9 हाथ हैं। उसके विषय में अग्र सूचनाएँ ये हैं – संक्रान्ति जो कुछ ग्रहण करती है उसके मूल्य बढ़ जाते हैं या वह नष्ट हो जाता है; वह जिसे देखती है, वह नष्ट हो जाता है, जिस दिशा से वह आती है वहाँ के लोग सुखी होते हैं, जिस दिशा को वह चली जाती है वहाँ के लोग दुखी हो जाते हैं।

महाशिवरात्रि

सुलतानपुर परिक्षेत्र में यह त्योहार अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित था,

विवेच्च काल में भी इसे श्रद्धा एवं उल्लास के साथ मनाया जाता था। किसी मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी शिवरात्रि कही जाती है, किन्तु माघ (फाल्गुन, पूर्णिमान्त) की चतुर्दशी सबसे महत्वपूर्ण है और महाशिवरात्रि कहलाती है। गरुड़[56] स्कन्द[57] आदि पुराणों में उसका वर्णन है। कहीं-कहीं वर्णनों में अन्तर है किन्तु प्रमुख बातें एक-सी हैं। सभी में इसकी प्रशंसा की गयी है। जब व्यक्ति उस दिन उपवास करके बिल्प-पत्तियों से शिव की पूजा करता है और रात्रि भर 'जागर' (जागरण) करता है, शिव उसे नरक से बचाते हैं और आनन्द एवं मोक्ष प्रदान करते हैं और व्यक्ति स्वयं शिव हो जाता है। दान, यज्ञ, तप, तीर्थयात्राएँ, व्रत इसके कोटि अंश के बराबर भी नहीं हैं। गरुड़पुराण में इसकी गाथा है – आबू पर्वत पर निषादों का राजा सुन्दरसेनक था, जो एक दिन अपने कुत्ते के साथ शिकार खेलने गया। वह कोई पशु मार न सका और भूख-प्यास से व्याकुल वह गहन बन में तालाब के किनारे रात्रि भर जागता रहा। एक बिल्व (बेल) के पेड़ के नीचे शिवलिंग था, अपने शरीर को आराम देने के लिए उसने अनजाने में शिवलिंग पर गिरी बिल्व-पत्तियाँ, नीचे उतार लीं। अपने पैरों की धूल को स्वच्छ करने के लिए उसने तालाब से जल लेकर छिड़का और ऐसा करने से जल-बूदें शिवलिंग पर गिरी, उसका एक तीर भी उसके हाथ से शिवलिंग पर गिर पड़ा और उसे उठाने में उसे लिंग के समक्ष झुकना पड़ा। इस प्रकार उसने अनजाने में ही शिवलिंग को नहलाया, छुआ और उसकी पूजा की और रात्रि भर जागता रहा। दूसरे दिन वह अपने घर लौट आया और पत्नी द्वारा दिया गया भोजन किया। आगे चलकर जब वह मरा और यमदूतों ने उसे पकड़ा तो शिव के सेवकों ने उनसे युद्ध किया और उसे उनसे छीन लिया। वह पाप-रहित हो गया और कुत्ते के साथ शिव का सेवक बना। इस प्रकार उसने अज्ञान में ही पुण्यफल प्राप्त किया। यदि इस प्रकार कोई व्यक्ति ज्ञान में करे तो वह

---

56. 1/124

57. 1/1/32

अक्षय पुण्यफल प्राप्त करता है। अग्निपुराण[58] में सुन्दरसेनक बहेलिया का उल्लेख हुआ हैं। स्कन्द० में जो कथा आयी है, वह लम्बी है – चण्ड नामक एक दुष्ट किरात था। वह जाल में मछलियाँ पकड़ता था और बहुत से पशुओं एवं पक्षियों को मारता था। उसकी पत्नी भी बड़ी निर्मय थी। इस प्रकार बहुत से वर्ष बीत गये। एक दिन वह पात्र में जल लेकर एक बिल्व पेड़ पर चढ़ गया और एक बनैल शूकर को मारने की इच्छा से रात्रि भर जागता रहा और नीचे बहुत सी पत्तियाँ फेंकता रहा। उसने पात्र के जल से अपना मुख धोया जिससे नीचे के शिवलिंग पर जल गिर पड़ा। इस प्रकार उसने सभी विधियों से शिव की पूजा की, अर्थात् स्नापन किया (नहलाया), बेल की पत्तियाँ चढ़ायी, रात्रि भर जागता रहा और उस दिन भूखा ही रहा। वह नीचे उतरा और एक तलाब के पास जाकर मछली पकड़ने लगा। वह उस रात्रि घर न जा सका था, अतः उसकी पत्नी बिना अन्न–जल के पड़ी रही और चिन्ताग्रस्त हो उठी। प्रातः काल वह भोजन लेकर पहुँची, अपने पति को एक नदी के दूसरे तट पर देख भोजन को तट पर ही रखकर नदी को पार करने लगी। दोनों ने स्नान किया, किन्तु इसके पूर्व कि किराज भोजन के पास पहुँचे, एक कुत्ते ने भोजन को चट कर लिया। पत्नी ने कुत्ते को मारना चाहा, किन्तु पति ने ऐसा नहीं करने दिया, क्योंकि उसका हृदय पसीज चुका था। तब तक (अमावास्या का) मध्याह्न हो चुका था। शिव के दूत पति–पत्नी को लेने आ गये, क्योंकि किरात ने अनजाने में शिव की पूजा कर ली थी और दोनों ने चतुर्दशी पर उपवास किया था। दोनों शिवलोक को गये। पद्मपुराण[59] में इसी प्रकार एक निषाद के विषय में उल्लेख हुआ है।

शिवरात्रि की प्रमुख बात के विषय में मतभेद है। तिथितत्व के अनुसार इसमें उपवास प्रमुखता रखता है, उसमें शंकर के कथन को आधार माना गया है – 'मैं उस तिथि पर न तो स्नान, न वस्त्रों, न धूप, न पूजा, न पुष्पों से उतना प्रसन्न होता हूँ

---

58. 193/6

59. 6/240/32

जितना उपवास से।' किन्तु हेमाद्रि, माधव आदि ने उपवास, पूजा एवं जागरण तीनों को महत्ता दी है।

कालनिर्णय[60] में 'शिवरात्रि' शब्द के विषय में एक लम्बा विवेचन उपस्थित किया गया है। क्या यह 'रूढ़' है (यथा कोई विशिष्ट तिथि) या यह 'यौगिक' है (यथा प्रत्येक रात्रि, जब शिव से सम्बन्धित कृत्य सम्पादित हो), या 'लाक्षणिक' (यथा व्रत, यद्यपि शब्द तिथि का सूचक है) या 'योगरुढ़' है (यौगिक एवं रूढ़, यथा 'पंकज' शब्द)। निष्कर्ष यह निकाला गया है कि यह शब्द पंकज के सदृश योगरूढ़ है जो कि पंक से अवश्य निकलता है (यहाँ यौगिक अर्थ है), किन्तु वह केवल पंकज (कमल) से ही सम्बन्धित है (यहाँ रूढ़ि या परम्परा है) न कि मेढ़क से।

शिवरात्रि नित्य एवं काम्य दोनों है। यह नित्य इसलिए है कि इसके विषय में वचन है कि यदि मनुष्य इसे नहीं करता तो पापी होता है, 'वह व्यक्ति जो तीनों लोकों के स्वामी रुद्र की पूजा भक्ति से नहीं करता वह सहस्र जन्मों में भ्रमित रहता है।' ऐसे भी वचन हैं कि यह व्रत प्रति वर्ष किया जाना चाहिए – 'हे महादेवी, पुरुष या पतिव्रता नारी को प्रति वर्ष शिवरात्रि पर भक्ति के साथ महादेव की पूजा करनी चाहिए।' यह व्रत काम्य भी है, क्योंकि इसके करने से फल भी मिलता हैं।

ईशानसंहिता[61] के मत से यह व्रत सभी प्रकार के मनुष्यों द्वारा सम्पादित हो सकता है – 'सभी मनुष्यों को, यहाँ तक कि चाण्डालों को भी शिवरात्रि पापमुक्त करती है, आनन्द देती है और मुक्ति देती है।' ईशानसंहिता में व्यवस्था है – यदि विष्णु या शिव या किसी देव का भक्त शिवरात्रि का त्याग करता है तो वह अपनी पूजा (अपने आराध्यदेव की पूजा) के फलों को नष्ट कर देता हे। जो इस व्रत को करता है,

---

60. पृ० 287

61. का० नि०, पृ० 290; नि० सि०, पृ० 225; स० म०, पृ० 101; कृत्यतत्व, पृ० 461

उसे कुछ नियम मानने पड़ते हैं, यथा अहिंसा, सत्य, अक्रोध, ब्रह्मचर्य, दया, क्षमा (कापालन करना होता है), उसे शान्त मन, क्रोधहीन, तपस्वी, मत्सरहीन होना चाहिए; इस व्रत का ज्ञान उसी को दिया जाना चाहिए जो गुरुपादानुरागी हो, यदि इसके अतिरिक्त किसी अन्य को यह दिया जाता है तो (ज्ञानदाता) नरक में पड़ता है।

इस व्रत का उचित काल में रात्रि, क्योंकि रात्रि में भूत, शक्तियाँ शिव (जो त्रिशूलधारी हैं) घूमा करते हैं। अतः चतुर्दशी को उनकी पूजा होनी चाहिए। कृष्ण पक्ष की उस चतुर्दशी को उपवास करना चाहिए, वह तिथि सर्वोत्तम है और शिव से सायुज्य उत्पन्न करती है। शिवरात्रि के लिए वही तिथि मान्य है जो उस काल से आच्छादित रहती है। उसी दिन व्रत करना चाहिए जबकि चतुर्दशी अर्धरात्रि के पूर्व एवं उपरान्त भी रहे।[62] हेमाद्रि में आया है कि शिवरात्रि नाम वाली वह चतुर्दशी जो प्रदोष काल में रहती है, व्रत के लिए मान्य होनी चाहिए; उस तिथि पर उपवास करना चाहिए, क्योंकि रात्रि में जागरण करना होता है।

व्रत के लिए उचित दिन एवं काल के विषय में पर्याप्त विभेद है। निर्णयामृत ने 'प्रदोष' शब्द पर बल दिया है, तथा अन्य ग्रन्थों में 'निशीथ' एवं अर्धरात्रि पर बल दिया है। यहाँ हम निर्णयकारों के शिरोमणि माधव के निर्णय प्रस्तुत कर रहे हैं। यदि चतुर्दशी प्रदोष-निशीथ व्यापिनी हो तो व्रत उसी दिन करना चाहिए। यदि वह दो दिनों वाली हो (अर्थात् वह त्रयोदशी एवं अमावास्या दोनों से व्याप्त हो) और वह दोनों दिन निशीथ-काल तक रहने वाली हो या दोनों दिनों तक इस प्रकार न उपस्थित रहने वाली हो तो प्रदोष-व्याप्त नियामक (निश्चय करने वाली) होती है; जब चतुर्दशी दोनों दिनों तक प्रदोषव्यापिनी हो या दोनों दिनों तक उससे निर्मुक्त हो तो निशीथ में रहने वाली ही नियामक होती है; किन्तु यदि वह दो दिनों तक रहकर केवल किसी से प्रत्ये दिन (प्रदोष या निशीथ) व्याप्त हो तो जया से संयुक्त अर्थात्

---

62. *ईशानसंहिता, ति० त०, पृ० 125; नि० स०, पृ० 322।*

त्रयोदशी तिथि नियामक होती है। प्राचीन कालों में शिवरात्रि के सम्पादन का विवरण गरुड़पुराण[63] में मिलता – है –त्रयोदशी को शिव–सम्मान करके व्रती को कुछ प्रतिबन्ध मानने चाहिए। उसे घोषित करना चाहिए – 'हे देव, मैं चतुर्दशी की रात्रि में जागरण करूगाँ। हे शम्भु, मैं चतुर्दशी को भोजन नहीं करूगाँ, केवल दूसरे दिन खाऊगाँ। हे शम्भु, आनन्द एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिए आप मेरे आश्रय बनें।' व्रती को व्रत करके गुरु के पास पहुँचाना चाहिए और पंचामृत के साथ पंचगव्य से लिंग को स्नान कराना चाहिए। उसे इस मन्त्र का पाठ करना चाहिए 'ओम् नमः शिवाय।' चन्दन लेप से आरम्भ कर सभी उपचारों के साथ शिव–पूजा करनी चाहिए और अग्नि में तिल, चावल एवं घृतयुक्त भात डालना चाहिए। इस होम के उपरान्त पूर्णाहुति (पूर्ण फल के साथ आहुति) करनी चाहिए और (शिव–विषयक) सुन्दर कथाएँ एवं गान सुनने चाहिए। व्रती को पुनः अर्धरात्रि, रात्रि के तीसरे प्रहर एवं चौथे प्रहर में आहुतियाँ डालनी चाहिए। सूर्योदय के लगभग उसे 'ओम नमः शिवाय' का मौन पाठ करते हुए शिव–प्रार्थना करनी चाहिए – 'हे देव, आपेक अनुग्रह से मैंने निर्विघ्न पूजा की है, हे लोकेश्वर, हे शिव, मुझे क्षमा करें। इस दिन जो भी पुण्य मैंने प्राप्त किया और मेरे द्वारा शिव को जो कुछ भी प्रदत्त हुआ है, आज मैंने आपकी कृपा से ही यह व्रत पूर्ण किया है; हे दयाशील, मुझ पर प्रसन्न हों, और अपने निवास को जायें; इसमें कोई सन्देह नहीं कि केवल आपके दर्शन मात्र से मैं पवित्र हो चुका हूँ।' व्रती को चाहिए कि वह शिव–भक्तों को भोजन दे, उन्हें वस्त्र, छत्र आदि दे – 'हे देवाधिदेव, सर्वपदार्थाधि ापति, आप लोगों पर अनुग्रह करते हैं, मैंने जो कुछ श्रद्धा से दिया है उससे आप प्रसन्न हों।' इस प्रकार क्षमा माँग लेने पर व्रती को संकल्प करके 12 वर्ष तक इसे करना चाहिए। यश, धन, पुत्र, राज्य को प्राप्त करके वह शिवपुरी को जा सकता है। व्रती को वर्ष के 12 मासों की चतुर्दशी को जागरण करना चाहिए। व्यक्ति यह व्रत करके, 12 ब्राह्मणों को खिलाकर तथा दीपदान करके स्वर्ग प्राप्त कर सकता है।

---

63. 1/124/11–13

ऐतरेय ब्राह्मण में प्रजापति के उस पाप का उल्लेख है जो उन्होंने अपनी पुत्री के साथ किया था। वे मृग बन गये। देवों ने अपने भयंकर रूपों से रुद्र का निर्माण किया और उनसे मृग को फाड़ डालने को कहा। जब रुद्र ने मृग को विद्ध कर दिया तो (मृग) आकाश में चला गया। लोग इसे मृग (मृगशीर्ष) कहते हैं। रुद्र मृगव्याध हो गये और (प्रजापति की) कन्या रोहिणी बन गये और तीर (अपनी तीन धारों के साथ) तीन धारा वाले तारों के समान बन गया।

लिंगपुराण[64] में एक निषाद की कथा है। निषाद ने एक मृग, उसकी पत्नी और उनके बच्चों को मारने के क्रम में शिवरात्रि व्रत के सभी कृत्य अज्ञात रूप से कर डाले। वह एवं मृग के कुटुम्ब के लोग अन्त में व्याध के तारे के साथ मृगशीर्ष नक्षत्र बन गये।

ऐसा उत्सव जो सामूहिक रूप से बड़े दिन या बड़े अवसर पर मनाया जाय एवं मेले तमाशे आदि के द्वारा आयोजित किया जाये त्यौहार कहलाता है। यह किसी भी धर्म, सम्प्रदाय, संगठन से सम्बन्धित हो सकता है।

दशहरा

सुलतानपुर परिक्षेत्र में यह त्योहार अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित था, विवेच्च काल में भी इसे श्रद्धा एवं उल्लास के साथ मनाया जाता था। ज्येष्ठ के शुक्ल पक्ष की दशमी को दशहरा नामक व्रत किया जाता है। ब्रह्मपुराण[65] में आया है कि ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की दशमी को 'दशहरा' कहते है क्योंकि यह दस पापों को नष्ट करती है। मनु ने दस पापों को तीन श्रेणियों में बाँटा है, यथा कायिक, वाचिक एवं मानस। राजमार्तण्ड ने इस व्रत का वर्णन किया है। नि० सि० तथा अन्य निबन्धों में इसका अन्य आधार माना गया है, यथा ज्येष्ठ शुक्ल दशमी को मंगलवार (वराह० के अनुसार) या बुधवार (स्कन्द० के अनुसार), हस्त नक्षत्र, व्यातिपात, गर (करण),

---

64. व्रतराज, पृ० 573-586

65. 63/15

आनन्द योग पर, जबकि चन्द्र एवं सूर्य क्रमशः कन्या एवं वृषभ राशियों में हो; जब ये सब हों या इनमें आधिकांश हों, तो व्यक्ति को गंगा-स्नान करके पापमुक्त होना चाहिए। बुधवार एवं हस्त से आनन्द योग होता है। ऐसा कल्पित है कि इसी तिथि पर गंगा पृथिवी पर मंगलवार को हस्त नक्षत्र में अवतरित हुई, अतः प्रारम्भिक रूप में यह व्रत दशाश्वमेघ पर गंगा-स्नान, पूजा एवं दान से सम्बन्धित था। आगे चलकर यह किसी भी बड़ी नदी में स्नान करने, अर्घ्य, तिल एवं जल-तर्पण से सम्बन्धित हो गया। अन्य बातों के विस्तार के लिए देखिए काशीखण्ड, त्रिस्थलीसेतु, व्रतराज[66] आजकल गंगोत्सव अधिकतर कृष्णा, गोदावरी, नर्मदा एवं गंगा के तट पर अवस्थित ग्रामों एवं नगरों में किया जाता है। वाराणसी, प्रयाग, हरिद्वार, नासिक में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। यदि ज्येष्ठ में मलमास हो तो उसी मास में इसे किया जाना चाहिए।

अकबर के शासन काल में इसे सामूहिक रूप से मनाने की व्यवस्था थी, स्वयं अकबर भी इन त्योहारों में अपनी सक्रिय भागीदारी प्रस्तुत करता था।

रक्षाबन्धन

सुलतानपुर परिक्षेत्र में यह त्योहार अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित था, विवेच्च काल में भी इसे श्रद्धा एवं उल्लास के साथ मनाया जाता था। श्रावण की पूर्णिमा को अपराइन में एक कृत्य होता है जिसे रक्षाबन्धन कहते है। श्रावण की पूर्णिमा को सूर्योदय के पूर्व उठकर देवों, ऋषियों एवं पितरों का तर्पण करने के उपरान्त अक्षत, तिल, धागों से युक्त रक्षा बनाकर धारण करना चाहिए। राजा के लिए महल में एक वर्गाकार, भूमि-स्थल पर जल-पात्र रखा जाना चाहिए, राजा को मन्त्रियों के साथ आसन ग्रहण करना चाहिए, वेश्याओं से घिरे रहने पर गानों एवं आशीर्वचनों का ताँता लगा रहना चाहिए; देवों, ब्राह्मणों एवं अस्त्र-शस्त्रों का सम्मान किया जाना चाहिए, तत्पश्चात राजपुरोहित को चाहिए कि वह मन्त्र के साथ 'रक्षा' बाँधे – 'आप

---

66. पृ० 352-355

को वह रक्षा बाँधता हूँ जिससे दानवों के राजा बलि बाँधे गये थे, हे रक्षा, तुम (यहाँ) से न हटो, नहटो। सभी लोगों को, यहाँ तक कि शूद्रों को भी, यथाशक्ति पुरोहितों को प्रसन्न करके रक्षा-बन्धन बधँवाना चाहिए। जब ऐसा कर दिया जाता है तो व्यक्ति वर्ष भर प्रसन्नता के साथ रहता है। हेमाद्रि ने भविष्योत्तरपुराण का उद्धरण देते हुए लिखा है कि इन्द्राणी ने इन्द्र के दाहिने हाथ में रक्षा बाँधकर उसे इतना योग्य बना दिया कि उसने असुरों को हरा दिया। जब पूर्णिमा चतुर्दशी या आने वाली प्रतिपदा से युक्त हो तो रक्षा-बन्धन नहीं होना चाहिए। इन दोनों से बचने के लिए रात्रि में ही यह कृत्य कर लेना चाहिए।

यह कृत्य अब भी होता है और पुरोहित लोग दाहिनी कलाई में रक्षा बाँधती हैं और दक्षिणा प्राप्त करते हैं। गुजरात, उत्तर प्रदेश एवं अन्य स्थानों में नारियाँ अपने भाईयों की कलाई में रक्षा बाँधते हैं और भेटें लेती-देती हैं।

श्रावण की पूर्णिमा को पश्चिमी भारत (विशेषतः कोंकण एवं मलाबार में) न केवल हिन्दू, प्रत्युत मुसलमान एवं व्यवसायी पारसी भी, समुद्र-तट पर जाते हैं और समुद्र-देव को पुष्प एवं नारियल चढ़ाते हैं। श्रावण की पूर्णिमा को समुद्र में तूफान कम उठते है और नारियल इसीलिए समुद्र-देव (वरुण) को चढ़ाया जाता है कि वे व्यापारी जहाजों को सुविधा दे सकें।

अकबर के शासन काल में इसे सामूहिक रूप से मनाने की व्यवस्था थी, स्वयं अकबर भी इन त्योहारों में अपनी सक्रिय भागीदारी प्रस्तुत करता था।

दीपावली

सुलतानपुर परिक्षेत्र में यह त्योहार अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित था, विवेच्च काल में भी इसे श्रद्धा एवं उल्लास के साथ मनाया जाता था। दीपों के उत्सव को सम्पूर्ण भारत में मान्यता प्राप्त हैं। किन्तु इसके कृत्य विभिन्न प्रकार से विभिन्न युगों एवं विभिन्न प्रान्तों में सम्पादित होते रहे हैं। किसी देव या देवी के सम्मान में

किया गया यह केवल एक उत्सव नहीं है, जैसाकि कृष्णजन्माष्टमी या नवरात्र है। यह चार या पाँच दिनों तक चलता है और इसमें कई पृथक्-पृथक् कृत्य हैं। दीपावली के दिवस तो तीन ही हैं। इसे अधिक ग्रन्थों में दीपावली और कहीं-कहीं दीपालिका संज्ञा दी हुई है। यदि इस उत्सव के किसी एक कृत्य पर विशेष बल दिया जाता है तो उसे सुखरात्रि की संज्ञाएँ भी प्राप्त हो गयी हैं। प्रो० पी० के० गोडे ने इस उत्सव की प्राचीनता पर विद्वतापूर्ण प्रकाश डाला है। भविष्योत्तर में दो अर्थ वाला एक पद्य मिलता है। कालतत्वविवेचन[67] के अनुसार चतुर्दशी, अमावास्या एवं कार्तिक प्रतिपदा के तीन दिनों तक यह कौमुदी उत्सव होता है।

सम्भवतः आरम्भिक रूप में यह चतुर्दशी नरकचतुर्दशी कही जाती थी, क्योंकि नरक से बचने के लिए यम को प्रसन्न रखना पड़ता है। आगे चलकर प्राग्ज्योतिष नगरी (कामरूप) के राजा नरकासुर के कृष्ण द्वारा वध की कथा में संयुक्त हो गयी। जब पृथिवी का संपर्क कृष्ण के वराहावतार से हुआ तो नरकासुर की उत्पत्ति हुई। इसी कथा से नरकचतुर्दशी का मिलन हो गया। आजकल केवल नरकासुर का नाममात्र ले लिया जाता है, यमतर्पण नहीं किया जाता। विष्णुपुराण[68] एवं भागवतपुराण[69] में नरकासुर के उपप्लवों (उपद्रवों, लूटखसोट) का वर्णन है। उसने देवताओं की माता अदिति के आभूषण छीन लिये, वरुण को छत्र से वंचित कर दिया, मन्दर पर्वत के मणिपर्वत शिखर को छीन लिया, देवताओं , सिद्धों एवं राजाओं की 16100 कन्याएँ हर लीं और उन्हें प्रासाद में बन्दी बना लिया। कृष्ण ने उसे मार डाला। यादि पुराणों की बातें ऐतिहासिक तथ्य हैं तो उन्होंने कृपा कर उन कन्याओं से विवाह करके उन अभागी कन्याओं की सामाजिक स्थिति उन्नत कर दी।

वर्षक्रियाकौमुदी, धर्मसिन्धु आदि ग्रन्थों ने व्यवस्था दी है कि आश्विन कृष्णपक्ष

---

67. पृ० 315

68. 5/19

69. 10/58, उत्तरार्ध

की चतुर्दशी और अमावस्या की सन्धयाओं को मनुष्यों को अपने हाथों में उल्काएँ (मशाल) लेकर अपने पितरों को दिखाना चाहिए और इस मन्त्र का पाठ करना चाहिए – 'मेरे कुटुम्ब के वे पितर जिनका दाह-संस्कार हो चुका है, जिनका दाह-संस्कार नहीं हुआ है और जिनका दाह-संस्कार केवल प्रज्वलित अग्नि से (बिना धार्मिक कृत्य के) हुआ हे, परम गति को प्राप्त हों। ऐसे पितर लोग, जो यमलोक से यहाँ महालया श्राद्ध पर आये हैं (भाद्रपद या आश्विन के कृष्णपक्ष में, पूर्णिमान्त गणना के अनुसार) उन्हें इन उल्काओं से मार्गदर्शन प्राप्त हो और वे (अपने लोकों को) पहुँच जायें।'

मध्यकालिक निबन्धों ने आश्विन कृष्णपक्ष (अमान्त) की चतुर्दशी पर निम्न कृत्यों की व्यवस्था की है – अभ्यंग स्नान (तैल स्नान), यम तर्पण, नरक के लिए दीपदान, रात्रि में दीपदान, उल्कादान (हाथ में मशाल लेना), शिव पूजा, महारात्रि पूजा तथा केवल रात्रि में भोजन (नक्त) करना। अब केवल तीन (तैल स्नान, नरक-दीपदान एवं रात्रिदीपदान) ही प्रचलित हैं। स्नान के उपरान्त लोग नये वस्त्र एवं आभूषण धारण करते हैं, मिठाइयाँ और रात्रि में भाँति-भाँति के व्यंजन भोजन करते हैं। नि० सि०[70] में तैल-स्नान (अभ्यंग-स्नान) एवं त्रयोदशी से युक्त चतुर्दशी पर लम्बा विवेचन उपस्थित किया गया है। हम उसे यहाँ नहीं लिखेंगे। कृत्यतत्व में नरकचतुर्दशी को भूतचतुर्दशी की संज्ञा दी हुई है।

आश्विन कृष्णपक्ष चतुर्दशी, अमावास्या एवं कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को प्रातः काल तैल-स्नान (तेल लगाकर स्नान करना) व्यवस्थित किया गया है, क्योंकि इससे धन एवं ऐश्वर्य मिलता हे।

यह अमावास्या महत्वपूर्ण दिन है। इसमें प्रातः काल तैल-स्नान करके अलक्ष्मी (दुर्भाग्य एवं फटेहाली) को दूर करने के लिए लक्ष्मी-पूजा की जानी

---

70. पृ० 197

चाहिए। कुछ लोगों के मत से पीपल (अश्वत्य), उदुम्बर, प्लक्ष, आम्र एवं वट की छाल को पानी में उबाल कर स्नान करना चाहिए और स्त्रियों द्वारा अपने सामने दीपदान कराना चाहिए। आजकल यह दिन वैश्यों एवं व्यापारियों द्वारा विशेष रूप से मनाया जाता है। वे अपने बही-खातों की पूजा करते हैं, अपने मित्रों, क्रेताओं एवं अन्य व्यापारियों को निमन्त्रित करते हैं और उनका ताम्बूल एवं मिठाइयों से सत्कार करते हैं। पुराने खाते बन्द किये जाते हैं और नये खोले जाते हैं। ऐसी अनुश्रुति है कि ब्रह्मा ने ब्राह्मणों को रक्षाबन्धन (श्रावण पूर्णिमा), क्षत्रियों को दशहरा (विजयदशमी), वैश्यों को दिवाली एवं शूद्रों को होलिका के उत्सव दिये हैं। लक्ष्मी पूजा की रात्रि को सुखरात्रि कहते हैं। देखिए कृत्यतत्व[71]। इस अवसर पर लक्ष्मी पूजा के साथ-साथ कुबेर की पूजा भी होती है, जिससे सुख मिले। इससे इसी रात्रि को सुखरात्रि भी कहते हैं।

अकबर के शासन काल में इसे सामूहिक रूप से मनाने की व्यवस्था थी, स्वयं अकबर भी इन त्योहारों में अपनी सक्रिय भागीदारी प्रस्तुत करता था।

विजयादशमी

सुलतानपुर परिक्षेत्र में यह त्योहार अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित था, विवेच्च काल में भी इसे श्रद्धा एवं उल्लास के साथ मनाया जाता था। आश्विन शुक्ल की दशमी को विजयादशमी कहा जाता है। कालनिर्णय[72] के मत से शुक्ल पक्ष की जो तिथि सूर्योदय के समय उपस्थित रहती है उसे कृत्यों के सम्पादन के लिए उचित समझना चाहिए और यही बात कृष्ण पक्ष की उन तिथियों के विषय में भी पायी जाती है जो सूर्यास्त के समय उपस्थित रहती हैं।हेमाद्रि ने विद्धा दशमी के विषय में दो नियम प्रतिपादित किये हैं – वह तिथि, जिसमें श्रवण-नक्षत्र पाया जाय, स्वीकार्य

---

71. पृ० 452), व० क्रि० कौ०

72. पृ० 231-233

है तथा वह दशमी, जो नवमी मे संयुक्त हो। किन्तु अन्य निबन्धों में तिथि-सम्बन्धी बहुत से जटिल विवेचन उपस्थित किये गये हैं। दो-एक निम्न हैं। यदि दशमी नवमी तथा एकादशी से संयुक्त हो तो अपराजिता देवी की पूजा दशमी को उत्तर-पूर्व दिशा में अपराह्न में होनी चाहिए। उस दिन कल्याण एवं विजय के लिए अपराजिता-पूजा होनी चाहिए।[7] यह द्रष्टव्य है कि विजया-दशमी का उचित काल है अपराह्न, प्रदोष केवल गौण काल है। यदि दशमी दो दिनों तक चली गयी हो तो प्रथम (नवमी से संयुक्त) स्वीकृत होना चाहिए। यदि दशमी प्रदोष काल में (किन्तु अपराह्न में नहीं) दो दिनों तक विस्तृत हो तो एकादशी से संयुक्त दशमी स्वीकृत होती है। जन्माष्टमी में जिस प्रकार रोहिणी मान्य नहीं है उसी प्रकार यहाँ श्रवण निर्णीत नहीं है। यदि दोनों दिन अपराह्न काल में दशमी न अवस्थित हो तो नवमी से संयुक्त दशमी मान ली जाती हे, किन्तु ऐसी दशा में जब दूसरे दिन श्रवण-नक्षत्र हो तो एकादशी से संयुक्त दशमी मान्य होती है। ये निर्णय निर्णयसिन्धु के हैं।

विजयादशमी वर्ष की तीन अत्यन्त शुभ तिथियों में एक है, अन्य दो हैं चैत्र शुक्ल की एवं कार्तिक शुक्ल की प्रतिपदा। इसीलिए भारत में बच्चे इस दिन अक्षरारम्भ करते हैं (सरस्वती पूजन), इसी दिन लोग नया कार्य आरम्भ करते हैं, भले ही चन्द्र आदि ज्योतिष के अनुसार ठीक से व्यवस्थित न हों, इस दिन श्रावण-नक्षत्र में राजा शत्रु पर आक्रमण करते हैं और विजय तथा शान्ति के लिए इसे शुभ मानते हैं।

इस शुभ दिन के प्रमुख कृत्य हैं अपराजिता पूजन, शमी पूजन, सीमोल्लंघन (अपने ग्राम या राज्य की सीमा को लाँघना), घर को पुनः लौट आना एवं घर की नारियों द्वारा अपने समक्ष दीप घुमवाना, नये वस्त्रों एवं आभूषणों को धारण करना, राजाओं के द्वारा घोड़ों, हाथियों एवं सैनिकों का नीराजन तथा परिक्रमण कराना।

दशहरा या विजयादशमी सभी जातियों के लोगों के लिए एक महत्वपूर्ण दिन है, किन्तु राजाओं, सामन्तों एवं क्षत्रियों के लिए यह विशेष रूप से शुभ

दिन हैं।

दशहरा उत्सव की उत्पत्ति के विषय में कई कल्पनाएँ की गयी हैं। भारत के कतिपय भागों में नये अन्नों की हवि देने, द्वार पर धान की हरी अनपकी बालियों को टाँगने तथा गेहूँ आदि के अंकुरों को कानों या मस्तक या पगड़ी पर रखने के कृत्य होते हैं, अतः कुछ लोगों का मत है कि यह कृषि का उत्सव है। कुछ लोगों के मत से यह रण-यात्रा का द्योतक है, क्योंकि दशहरा के समय वर्षा समाप्त हो जाती है, नदियों की बाढ़ थम जाती है, धान आदि कोष्ठागार में रखे जाने वाले हो जाते हैं। सम्भवतः यह उत्सव इसी दूसरे मत से सम्बन्धित है। भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में भी राजाओं के युद्ध-प्रयाण के लिए यही निश्चित ऋतु थी। शमी-पूजा भी प्राचीन है। वैदिक यज्ञों के लिए शमी वृक्ष में उगे अश्वत्थ (पीपल) की दो टहनियों (अरणियों) से अग्नि उत्पन्न की जाती थी। अग्नि शक्ति एवं साहस की द्योतक है, शमी की लकड़ी के कुन्दे अग्नि-उत्पत्ति में सहायक होते हैं। जहाँ शमी एवं अग्नि की पवित्रता एवं उपयोगिता की ओर संकेत हैं। इस उत्सव का सम्बन्ध नवरात्र से भी है। क्योंकि इसमें महिषासुर के विरोध में देवी के साहसपूर्ण कृत्यों का भी उल्लेख होता है और नवरात्र के उपरान्त ही वह उत्सव होता है। दशहरा या 'दसेरा' शब्द 'दश' (दस) एवं 'अहन्' से बना है। इस शब्द एवं ऊपर वर्णित 'दुर्गोत्सव' के साथ आये 'दशहरा' में अन्तर है। उत्तर भारत में विजया दशमी को दशहरा (दसेरा) भी कहा जाता है।

होलिका

सुलतानपुर परिक्षेत्र में यह त्योहार अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित था, विवेच्च काल में भी इसे श्रद्धा एवं उल्लास के साथ मनाया जाता था। होली या होलिका आनन्द एवं उल्लास का ऐसा उत्सव है जो सम्पूर्ण देश में मनाया जाता है। बंगाल को छोड़कर होलिका दहन सर्वत्र देखा जाता है। बंगाल में फाल्गुन पूर्णिमा पर कृष्ण-प्रतिमा का झूला प्रचलित है किन्तु यह भारत के आधिकांश स्थानों में नहीं

दिखाई पड़ता। इस उत्सव की अवधि विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न है। इस अवसर पर लोग बाँस या धातु की पिचकारी से रंगीन जल छोड़ते हैं या अबीर-गुलाल लगाते हैं। कहीं-कहीं अश्लील गाने गाये जाते हैं। इसमें जो धार्मिक तत्व है वह बंगाल में कृष्ण-पूजा करना तथा कुछ प्रदेशों में पुरोहित द्वारा होलिका की पूजा करवाना। लोग होलिका-दहन के समय परिक्रमा करते हैं, अग्नि में नारियल फेंकते है, गेहूँ, जौ आदि के डंठल फेंकते हैं और इनके अधजले अंश का प्रसाद बनाते हैं। कहीं-कहीं लोग हथेली से मुख-स्वर उत्पन्न करते हैं। विभिन्न प्रान्तों की विभिन्न विधियों का वर्णन करना कोई आवश्यक नहीं है।

यह बहुत प्राचीन उत्सव है। इसका आरम्भिक शब्दरूप होलाका था[73] भारत के पूर्वी भागों में यह शब्द प्रचलित था। जैमिनि एवं शबर का कथन है कि होलाका सभी आर्यों द्वारा सम्पादित होना चाहिए। काठकगृह्य में एक सूत्र है 'राका होलाके', जिसकी व्याख्या टीकाकार देवपाल ने यों की है – 'होला एक कर्म-विशेष है जो स्त्रियों के सौभाग्य के लिए सम्पादित होता है, उस कृत्य में राका (पूर्णचन्द्र) देवता है। अन्य टीकाकारों ने इसकी व्याख्या अन्य रूपों में की है। होलका उन बीस क्रीड़ाओं में एक है जो सम्पूर्ण भारत में प्रचलित हैं। इसका उल्लेख वात्स्यायन के कामसूत्र में भी हुआ है जिसका अर्थ टीकाकार जयमंगल ने किया है। फपल्गुन की पूर्णिमा पर लोग श्रृंग से एक-दूसरे पर रंगीन जल छोड़ते हैं और सुगन्धित चूर्ण बिखेरते हैं। हेमाद्रि ने बृहद्यम का एक श्लोक उद्‌धृत किया है जिसमें होलिका-पूर्णिमा को हुताशनी (आलकज की भाँति) कहा गया है। लिंगपुराण में आया है – 'फाल्गुन पूर्णिमा को 'फाल्गुनिका' कहा जाता है, यह बाल-क्रीड़ओं से पूर्ण है और लोगों को विभूति (ऐश्वर्य) देने वाली है।' वराहपुराण में आया है कि यह 'पटवास-विलासिनी' (चूर्ण से युक्त क्रीड़ाओं वाली) है। भविष्योत्तर पुराण[74] में एक कथा दी गई है। युधिष्ठर ने कृष्ण से पूछा कि फाल्गुन-पूर्णिमा

---

73. *जैमिनि, 1/3/15-16।*

74. *132/1/51*

को प्रत्येक गाँव एवं नगर में एक उत्सव क्यों होता है, प्रत्येक घर में बच्चे क्यों क्रीड़ामय हो जाता हैं और होलका क्यों जलाते हैं, उसमें किस देवता की पूजा होती है, किसने इस उत्सव का प्रचार किया, इसमें क्या होता है और यह 'अडाडा' क्यों कही जाती है। कृष्ण ने युधिष्ठिर से राजा रघु के विषय में एक किंवदन्ती कही। राजा रघु के पास लोग यह कहने के लिए गये कि 'ढोण्ढा' नामक एक राक्षसी बच्चों को दिन-रात डराया करती हैं। राजा द्वारा पूछने पर उनके पुरोहित ने बताया कि वह मालिनी की पुत्री एक राक्षसी है जिसे शिव ने वरदान दिया है कि उसे देव, मानव आदि नहीं मार सकते हैं और न वह अस्त्र-शस्त्र या जाड़ा या गर्मी या वर्षा से मंर सकती है, किन्तु शिव ने इतना कह दिया है कि वह क्रीड़ायुक्त बच्चों से भय खा सकती है। पुरोहित ने यह भी बताया कि फाल्गुन की पूर्णिमा को जाड़े की ऋतु समाप्त होती है और ग्रीष्म ऋतु का आगमन होता है, तब लोग हँसें एवं आनन्द मनायें, बच्चे लकड़ी के टुकड़े लेकर बाहर प्रसन्नतापूर्वक निकल पड़ें, लकड़ियाँ एवं घास एकत्र करें, रक्षोघ्न मन्त्रों के साथ उसमें आग लगायें, तालियाँ बजायें, अग्नि की तीन बार प्रदक्षिण करें, हँसे और प्रचलित भाषा में भद्दे एवं अश्लील गाने गाये, इसी शोरगुल एवं अट्टहास से तथा होम से वह राक्षसी मरेगी। जब राजा ने यह सब किया तो राक्षसी मर गयी और वह दिन अडाडा या होलिका कहा गया। आगे आया है कि दूसरे दिन चैत्र की प्रतिपदा पर लोगों को होलिकाभस्म को प्रणाम करना चाहिए, मन्त्रोच्चारण करना, चाहिए,घर के प्रांगण में वर्गाकार स्थल के मध्य में काम पूजा करनी चाहिए। काम-प्रतिमा पर सुन्दर नारी द्वारा चन्दन-लेप लगाना चाहिए और पूजा करने वाले को चन्दन-लेप से मिश्रित आम्र-बौर खाना चाहिए। इसके उपरान्त यथाशक्ति ब्राह्मणों, भाटों आदि को दान देना चाहिए और 'काम देवता मुझ पर प्रसन्न हों' ऐसा कहना चाहिए। इसके आगे पुराण में आया है - 'जब शुक्ल पक्ष की 15 वीं तिथि पर पतझडत्र समाप्त हो जाता है और बसन्त ऋतु का प्रातः आगमन होता है तो जो व्यक्ति चन्दन लेप के साथ आम्र-मंजरी खाता है वह आनन्द से रहता है।'

आनन्दोल्लास से परिपूर्ण एवं अश्लील गान-नृत्यों में लीन लोग जब अन्य

प्रान्तों में होलिका का उत्सव मनाते हैं तब बंगाल में दोलयात्रा का उत्सव होता हैं देखिए शूलपाणिकृत 'दोलयात्राविवेक।' यह उत्सव पाँच या तीन दिनों तक चलता है। पूर्णिमा के पूर्व चतुर्दशी को संध्या के समय मण्डप के पूर्व में अग्नि के सम्मान में एक उत्सव होता है। गोविन्द की प्रतिमा का निर्माण होता है। एक वेदिका पर 16 खम्भों से युक्त मण्डप में प्रतिमा रखी जाती है। इसे पंचामृत से नहलाया जाता है, कई प्रकार के कृत्य किये जाते हैं, मूर्ति या प्रतिमा को इधर-उधर सात बार डोलाई या झुलाई जाती है। ऐसा आया है कि इन्द्रद्युम्न राजा ने वृन्दावन में इस झूले का उत्सव आरम्भ किया था। इस उत्सव के करने से व्यक्ति सभी पापों से मुक्त हो जाता है। शूलपाणि ने इसकी तिथि, प्रहर, नक्षत्र आदि के विषय में विवेचन कर निष्कर्ष निकाला है कि दोलयात्रा पूर्णिमा तिथि की उपस्थिति में ही होनी चाहिए, चाहे उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र हो या न हो।

किसी निश्चित उद्देश्य या अभीष्ठ की प्राप्ति हेतु निश्चित आकांक्षा से युक्त उपवास आदि रखा जाय, व्रत कहलाता है। साथ ही प्रतिज्ञा (अभीष्ठ की प्राप्ति) करना भी व्रत ही कहलाता है।

अकबर के शासन काल में इसे सामूहिक रूप से मनाने की व्यवस्था थी, स्वयं अकबर भी इन त्योहारों में अपनी सक्रिय भागीदारी प्रस्तुत करता था।

अक्षय तृतीया

सुलतानपुर परिक्षेत्र में यह व्रत अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित था, विवेच्च काल में भी इसे श्रद्धा एवं उल्लास के साथ मनाया जाता था। बैशाख मास में शुक्ल पक्ष की तृतीया एक महत्वपूर्ण तिथि है। इसे अक्षय तृतीया कहते हैं। विष्णुधर्मसूत्र में इसका अति प्राचीन उल्लेख है। मस्त्यपुराण[75], नारदीय पुराण[76] में यह उल्लिखित है।

---

75. 65/1-7

76. 1/112/10

वहाँ आया है कि इस दिन उपवास करना चाहिए, वासुदेव की पूजा अक्षत चावल से की जानी चाहिए, उनसे अग्नि में होम करना चाहिए तथा उनका दान करना चाहिए। इस प्रकार के कृत्य से व्यक्ति सभी पापों से छुटकारा पाता है, जो कुछ उस दिन दान किया जाता है, वह अक्षय हो जाता है। मत्स्य० में आया है कि उस दिन जो कुछ दिया जाता है, या जिसका यज्ञ किया जाता है या जो कुछ कहा जाता है (जप), वह फल रूप में अक्षय होता है, इस तिथि का उपवास भी अक्षय फल देने वाला होता है, यदि इस तृतीया में कृत्तिका नक्षत्र हो तो वह विशिष्ट रूप से फल देने योग्य ठहरती है। भविष्य पुराण में इसका विस्तार से उल्लेख है। उसमें आया है – ' यह युगादि तिथियों में परिगणित होती है, क्योंकि कृत युग (सत्य युग) का आरम्भ इसी से हुआ, इस दिन जो कुछ भी किया जाता है, यथा स्नान, दान, जप, अग्नि–होम, वेदाध्ययन, पितरों को जलतर्पण सभी अक्षय होते हैं।' इसमें व्यवस्था है कि इस तिथि में जल पात्रों, छत्रों एवं पादत्राणों के दान से इनमें कमी नहीं पड़ती, इसी से इसे अक्षय तृतीया कहते हैं। जब तृतीया पूर्वाहन में होती है तो उपर्युक्त धार्मिक कृत्य किये जाते हैं, किन्तु जब वह दो दिनों तक रहती है तो उनमें पश्चात्कालीन वाली व्रत के लिए उपयुक्त ठहरायी गयी है।

सावित्री व्रत

सुलतानपुर परिक्षेत्र में यह व्रत अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित था, विवेच्च काल में भी इसे श्रद्धा एवं उल्लास के साथ मनाया जाता था। ज्येष्ठ की पूर्णिमा (उत्तर में अमावस्या) को सधवा नारियाँ भारत के कतिपय भागों में आजकल भी सावित्री व्रत या वटसावित्री व्रत करती हैं। महाभारत[77] में भारतीय नारियों के समक्ष पतिव्रता के आर्दश के रूप में सावित्री की कथा बहुत ही प्रसिद्ध रही है। सावित्री एवं सत्यवान की कथा बड़ी मार्मिक है और इसका उल्लेख बड़ी सदाशयता के साथ होता रहा है। हेमाद्रि ने भविष्योत्तर से प्राप्त ब्रह्मसावित्री व्रत तथा स्कन्द० से वटसावित्री व्रत का

---

77. वन०, अध्याय 293–299

उल्लेख किया है। 'किन्तु प्रथम भाद्रपद में त्रयोदशी से लेकर पूर्णिमा तक तीन दिनों में मनाया जाता है न कि ज्येष्ठ में, और द्वितीय ज्येष्ठ की पूर्णिमा को सधवा द्वारा या पुत्रही न विधवा द्वारा किया जाता है। व्रतकालविवेक ने द्वितीय अर्थात् वटसावित्री व्रत को महासावित्री व्रत कहा है। निर्णयसिन्धु ने हेमाद्रि द्वारा उल्लिखित इस व्रत को भाद्रपद में माना है और कहा है कि यह उन दिनों प्रचलित था। व्रतप्रकाश में ब्रह्मसावित्री व्रत का उल्लेख है। किन्तु आज का प्रचलित वटसावित्री व्रत दशवीं शताब्दी के बहुत पहले से सम्पादित होता रहा होगा। अग्निपुराण[78] ने संक्षेप में एक व्रत का उल्लेख किया है जो तत्वों के आधार पर आज के वटसावित्री व्रत के समान ही है। राजमार्तण्ड का कथन है – 'ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशी को श्रद्धासमन्वित नारियाँ वैध ाव्य से छुटकारा पाने के लिए सावित्री व्रत करती हैं। दक्षिण में इसका अनुसरण होता है। नि० सि० ने भविष्य० के आधार पर कहा है कि यह व्रत अमावास्या को किया जाता है, किन्तु कृत्यतत्व एवं तिथितत्व के अनुसार यह व्रत ज्येष्ठ की पूर्णिमा के उपरान्त कृष्ण चतुर्दशी को होता है।

यदि पूर्णिमा दो दिनों वाली हो तो व्रत चतुर्दशी को पूर्णिमा से विद्धा होने की दशा में किया जाना चाहिए। यह व्रत तीन दिनों तक किया जाता है और द्वादशी या त्रयोदशी से आरम्भ किया जाता है। किन्तु यदि चतुर्दशी 18 घटिकाओं की हो और उसके उपरान्त पूर्णिमा आ जाय तो चतुर्दशी को छोड़ दिया जाता है

वट की पूजा का सम्बन्ध सम्भवतः इस बात से है कि जब सत्यवान् की मृत्यु की घड़ी आयी तो उसने वट वृक्ष की छाया का आश्रय लिया, उसकी शाखा का सहार लिया तथा अवरूद्ध श्वास से सावित्री से कहा कि मेरे सिर में पीड़ा है। व्रतराज[79] एवं अन्य मध्य काल के ग्रन्थों में विधि का वर्णन है। 'मैं अपने पति एवं पुत्रों की लम्बी आयु

---

78. 194/5-8

79. 312-320

एवं स्वास्थ्य तथा इस लोक एवं परलोक में वैधव्य से मुक्ति के लिए सावित्री व्रत करूँगी' ऐसा कहकर स्त्री इस व्रत का संकल्प करती है। उसे वट के मूल पर जल छिड़काना, चाहिए, इसके चारों ओर धागा बाँधना चाहिए, उपचारों के साथ उसकी पूजा करनी चाहिए और अपने सौन्दर्य, सद्नाम, सम्पत्ति एवं वैधव्य-मुक्ति के लिए सावित्री की पूजा (मूर्ति की या केवल मानसिक रूप से), उसके पैर से ऊपर तक का स्मरण करके करनी चाहिए। इसके उपरान्त यम एवं नारद की पूजा करनी चाहिए और पुजारी को 'वायन' अर्थात् दान देना चाहिए और दूसरे दिन उपवास तोड़ना चाहिए। बंगाल में वटसावित्री व्रत के स्थान पर ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को सावित्री चतुर्दशी मानी जाती है। यह चौदह वर्षों की होती है। यदि स्त्री तीन दिनों तक उपवास के योग्य न हो तो वह त्रयोदशी को नक्त, चतुर्दशी को अयाचित भोजन तथा पूर्णिमा को व्रत करे। सुलतानपुर में यह व्रत सधवा स्त्रियाँ पूरे उल्लास के साथ रखती हैं।

मनसापूजा

सुलतानपुर परिक्षेत्र में यह व्रत अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित था, विवेच्च काल में भी इसे श्रद्धा एवं उल्लास के साथ मनाया जाता था। बंगाल एवं दक्षिण भारत में (महाराष्ट्र में नहीं) मनसा देवी-पूजन होती है जो अपने घर के आँगन में स्नुही (थूहर) की टहनी पर श्रावण के कृष्ण पक्ष की पंचमी को किया जाता है। देखिए राजमार्तण्ड, समयप्रदीप, कृत्यरत्नाकर, तिथितत्व आदि। सर्वप्रथम सर्प-भय से दूर रहने के लिए मनसा देवी-पूजन का संकल्प होता है, तब गन्ध, पुष्प, धूप, दीप एवं नैवेद्य दिया जाता है और तब अनन्त एवं अन्य नागों की पूजा होती है जिसमें प्रमुख रूप से दूध-घी का नैवेद्य चढ़ाया जाता है। घर में नीम की पत्तियाँ रखी जाती हैं, स्वयं व्रती उन्हें खाता है और ब्राह्मणों को भी खिलाता है।

हरितालिका

सुलतानपुर परिक्षेत्र में यह व्रत अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित था, विवेच्च काल में भी इसे श्रद्धा एवं उल्लास के साथ मनाया जाता था। हरितालिका व्रत

नारियों का व्रत है। यह भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की तृतीया को सम्पादित होता है। इस व्रत का कृत्यकल्परु एवं हेमाद्रि में कोई उल्लेख नहीं हैं। पश्चात्कालीन मध्यकालिक मध यकालिक निबन्ध, यथा निर्णयसिन्धु[80] व्रतार्क एवं अहल्याकामधेनु इसका वर्णन करते हैं। राजमार्तण्ड में भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को किये जाने वाले हरितालीचतुर्थी व्रत का उल्लेख है और ऐसा लिखा गया है कि पार्वती को प्यारा (प्रीतिदायक) है। महाराष्ट्रीय नारियों में यह अत्यधिक प्रचलित है। इसका संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है। नारियों को तैल एवं त्रिफला (तिष्यफला) के लेप से स्नान कर रेशमी वस्त्र धारण करने चाहिए। तिथि आदि का नाम लेकर निम्न संकल्प करना चाहिए – 'मम समस्तपापक्षय पूर्वक सप्तजन्मराज्य खण्डित सौभाग्यादिवृद्धये उमामहेश्वरप्रीत्यर्थ हरितालिकाव्रतमहं करिष्ये। तत्रादौ गणपतिपूजनं करिष्ये' । उसे उमा एवं शिव का नमन करना चाहिए। मन्त्रों के साथ आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य आदि सोलह उपचारों के सम्पादन से उमा-पूजन करना चाहिए। पुष्प देने के उपरान्त व्रती को पाँव से लेकर सिर तक उमा के सभी अंगों की पूजा करनी चाहिए। इसके उपरान्त धूप, दीप, नैवेद्य, आचमनीय, गन्ध (कपूर, चन्दन), ताम्बूल, पूगीफल, दक्षिणा, अंलकार, नीराजन (दीप डुलाना) के कृत्य किये जाने चाहिए। इसके उपरान्त उमा के विभिन्न नामों (गौरी, पार्वती आदि) एवं शिव के विभिन्न नामों (हर, महादेव, शम्भु आदि) से पूजा होनी चाहिए; पुष्प दान करना चाहिए, उमा एवं महेश्वर की प्रतिमाओं की प्रदक्षिणा करनी चाहिए, प्रत्येक बार मन्त्र के साथ नमस्कार करना चाहिए, प्रार्थना एवं शुभ वस्तुओं के साथ पात्रों में दान करना चाहिए।

यह व्रत बंगाल, गुजरात आदि में नहीं प्रचलित है।

माघव ने व्यवस्था दी है कि यदि तृतीया तिथि द्वितीया एवं चतुर्थी से संयुक्त हो तो व्रत दूसरे दिन किया जाना चाहिए, जबकि तृतीया कम से कम एक मुहूर्त (दो घटिका) तक अवस्थित रहे और तब चतुर्थी का प्रवेश हो।

---

80. पृ० 133

वर्तमान समय में नारियाँ पार्वती, शिवलिंग एवं पार्वती की किसी सखी की मिट्टी की प्रतिमाएँ खरीद कर पूजा करती हैं।

इस व्रत का 'हरितालिका' नाम क्यों पड़ा, कहना कठिन है। व्रतराज का कथन है कि यह व्रतराज (व्रतों में राजा) है और इसका यह नाम इसलिए पड़ा कि पार्वती अपने घर से अपनी सखियों द्वारा ले जायी गयी थीं।

व्रतराज में आया है कि शिव ने अपनी वह व्रत कथा पार्वती से कही थी, जिसके द्वारा उन्हें पार्वती प्राप्त हुई थीं और उनकी अर्धांगिनी हो सकी थीं।

गणेशचतुर्थी

सुलतानपुर परिक्षेत्र में यह व्रत अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित था, विवेच्च काल में भी इसे श्रद्धा एवं उल्लास के साथ मनाया जाता था। भारत के कतिपय भागों में (किन्तु बंगाल एवं गुजरात में नहीं) भाद्रपद के शुक्लपक्ष की चतुर्थी को गणेशचतुर्थी का उत्सव किया जाता है। यह वरदचतुर्थी के नाम से भी विख्यात है। इसका सम्पादन मध्याहन में होता है। यदि चतुर्थी तिथि तृतीया और पंचमी से संयुक्त हो तथा मध याहन में चतुर्थी हो तो तृतिया से संयुक्त चतुर्थी मान्य होती है। यदि मध्याहन में चतुर्थी न हो, किन्तु दूसरे दिन पंचमी से युक्त मध्याहन में हो तो परविद्धा (आने वाली पंचमी से संयुक्त) को ही उत्सव होता है। संक्षेप में विधि यों है। आजकल मिट्टी की रंगी हुई गणेश-प्रतिमा ली जाती है, उसकी प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है, 16 उपचारों के साथ विनायक-पूजा होती है। चन्दन से युक्त दो दूर्वा-दल प्रत्येक दस नामों से समर्पित किये जाते हैं, इस प्रकार कुल 20 दूर्बादलों का प्रयोग होता है, इसके उपरान्त दसों नामों को एक साथ लेकर 21 वाँ दूर्बादल समर्पित होता है। एक दूर्बानैवेद्य रूप में, दस ब्राह्मणों को तथा शेष दस स्वयं व्रती या उसका कुटुम्ब खाता है।

ध्यान के लिए गणेश का जो स्वरूप निर्धारित है वह यों है – 'उन सिद्धि-विनायक का ध्यान करना चाहिए जो एक दाँत वाले हैं, जिनके कर्ण सूप के समान हैं, जो नाग

का जनेऊ धारण करते हैं और जो हाथों में पाश एवं अंकुश धारण करते हैं।'

माध्यमिक एवं वर्तमान काल में एक ऐसी धारणा रही है कि यदि कोई इस गणेशचतुर्थी को चन्द्र देख लेता है तो उस पर चोरी आदि का झूठा अभियोग लग जाता है। यदि कोई त्रुटिवश चन्द्र का दर्शन कर लेता है तो उसे झूठ अभियोग के प्रतिफलों से छुटकारा पाने के लिए पौराणिक पद्य का पाठ करना चाहिए जो एक दाई द्वारा बच्चे से कहा गया था– 'एक सिंह ने प्रसेनजित को मारा, सिंह को जाम्बवंत ने मार डाला, मत रोओ, हे सुकुमारक, यह तुम्हारी स्यमन्तक मणि है।' सूर्य ने प्रसेन के भाई सत्राजित् को देदीप्यमान स्यमन्तक मणि दी जो प्रतिदिन 8 मार सोना उत्पन्न करती थी[81] कृष्ण ने इसे पाने का प्रयास किया, किन्तु नहीं पा सके। इस मणि से युक्त प्रसेन शिकार खेलने गया और सिंह द्वारा मार डाला गया, किन्तु भालुओं के नेता जाम्बवंत ने सिंह को मार डाला और स्यमन्तक ले ली और उसके साथ अपनी गुफा में चला गया। सत्राजित् एवं यादवों ने शंका की कि कृष्ण ने उस मणि को प्राप्त करने के लिए प्रसेन को मार डाला है। कृष्ण को यह अभियोग बहुत बुरा लगा और उन्होंने प्रसेन एवं सिंह के शवों को खोज निकाला और जब उन्होंने गुफा में दाई को उस प्रकार का सम्बोधन करते सुना तो उसमें प्रवेश किया। गुफा में कृष्ण एवं जाम्बवंत से मल्लयुद्ध हुआ। जब बहुत दिनों तक कृष्ण गुफा से बाहर नहीं निकले तो उनके अनुयायी यादव द्वारका चले आये और कृष्ण की मृत्यु का सन्देश घोषित कर दिया। 21 दिनों के उपरान्त जाम्बवंत ने हार स्वीकार कर ली (भागवत में 28 दिन उल्लिखित हैं) और कृष्ण से सन्धि कर ली तथा अपनी पुत्री जाम्बवती का विवाह कृष्ण से कर दिया तथा स्यमन्तक मणि दहेज में दे दी। द्वारका लौटने पर कृष्ण ने वह मणि प्रसेन के भाई सत्राजित को दे दी और इस प्रकार झूठे अभियोग से उन्हे छुटकारा मिला। वायु[82] एवं मत्स्य आदि पुराणों में आया है कि मिथ्यारोप से छुटकारा पाने वाले कृष्ण

---

81. भागवत 10/56/11

82. 96/58)

की यह गाथा जो सुनता है वह ऐसे मिथ्यारोप में नहीं फँसता। तिथितत्व में ऐसी व्यवस्था है कि भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को जो व्यक्ति असावधानी से चन्द्र देख लेता है उसे दाई वाली गाथा का श्लोक पानी के ऊपर पढ़कर उस पानी को पी लेना चाहिए और स्यमन्तक मणि की कहानी सुन लेनी चाहिए।

जब भाद्रपद शुक्ल पक्ष चतुर्थी को गणेश-पूजन होता है तो उसे शिवा तिथि कहा जाता है। जब गणेश का सम्मान माघ शुक्ल चतुर्थी को होता है तो उसे शान्ता तथा जब शुक्ल पक्ष की चतुर्थी मंगलवार को हो तो उसे सुखा कहा जाता है।

आजकल गणेश सबसे अधिक प्रचलित देव हैं और प्रत्येक महत्वपूर्ण कृत्य उनका आवाहन सर्वप्रथम होता है, वे ज्ञान के देव हैं, साहित्य के अधिष्ठाता देव हैं, सफलता दायक हैं और विघ्नविनाशक हैं।

मुस्लिम त्योहार

जहाँ प्रचीन सुलतानपुर हिन्दू धर्म का प्रमुख केन्द्र था वहीं मुस्लिम धर्म के अनुयायी भी सुलतानपुर में पर्याप्त संख्या में थे। शरियत के अनुसार विभिन्न मुस्लिम त्योहार भी इस क्षेत्र में हर्षोल्लास से मनाये जाते थे। यथा-

ईदुल फितर और ईदुल अज़्हा-

सुलतानपुर परिक्षेत्र में मनाया जाने वाला प्रमुख इस्लामी त्योहार था। इस्लामी त्यौहारों में ईदुल फितर और ईदुल अज़्हा को जिन्हें साधारण रूप में ईद एवं बकरीद कहा जाता है[83] को मुस्लिम काल में विशाल एवं विशिष्ट आयोजन के रूप में मनाया जाता था। ईद के चाँद की घोषणा हेतु बन्दूकें दागी जाती थीं एवं प्रसन्नता के वशीभूत होकर बिगुल एवं नक्कारे (ढोल) बजाये जाते थे। ईद के दिन अवध के

---

83. *नयादौर, अवध अंक, सम्पादक सैय्यद अमजद हुसैन, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 212-218*

शासक एक वैभवपूर्ण जुलूस के साथ ईद की नमाज पढ़ने ईदगाह जाया करते थे। इसी जुलूस में बहुमूल्य वस्त्र धारण करके उमरा (धनी सामन्त) घुड़सवार और पैदल फौजी एवं ऊँटों पर सवार बन्दूकची, तोपखाने और नज़ीबों के दस्ते होते थे और उनके पीछे कई हाथी गाड़ियों के मध्य चार हाथियों द्वारा खींची जाने वाली एक गाड़ी में अवध के सूबेदार की सवारी होती थी। नमाज के पश्चात इसी साज-सज्जा एवं वैभव से इस जुलूस की वापसी हुआ करती थी। ईदगाह से वापसी के पश्चात दरबार लगा करता था, जिसमे अमीर लोग सूबेदार/सुलतान/बादशाह को ईद की बधाई कविता के रूप में प्रस्तुत करते थे। मीर हसन ने अपनी मसनवी (उर्दू शायरी मे मसनवी एक विधा का नाम है जैसे- नज़्म, ग़ज़ल इत्यादि) तहनियते ईद में (जो उन्होंने फैजाबाद में कही थी जिसमें आसिफउद्दौला की माता बहू बेगम के नाज़िर जवाहर अली खाँ की प्रशंसा सम्मिलित है।) उस काल की एक ईद के वैभव व धूम की चर्चा है और ईद के दिन के उत्साह एवं उल्लास का वर्णन किया है। इस मसनवी के कुछ शेर निम्नलिखित है:-

कि है आज दिन ईद का मेरी जाँ
खुशी है हर तरफ है तरती में याँ
ये तैयारी-ए-ईद व हंगामें ईद
ये जाह और हशमत ये इकरामे ईद।

ईद के दिन जागीरदार, मनसबदार, विशिष्ट एवं सामान्य, हर वर्ग के लोग आपस में गले मिलते थे[84] और एक दूसरे के घर जाते थे, तथा सभी के घरों पर मेहमानों का सत्कार सेवईयों द्वारा होता था तथा उन्हें इत्र व पान प्रस्तुत किया जाता था, गले मिलने, बधाई देने लोगों के घरों पर जाने पर सेवाइयाँ खाने व अन्य प्रकार के सत्कार में लोग भी सम्मिलित होते थे। ईद के दिन की कई रीतियाँ हिन्दुओं के

---

84. *नयादौर, अवध अंक, सम्पादक सैय्यद अमजद हुसैन, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 212-218*

प्रभाव के कारण चलन में थीं। हिन्दू लोग श्रावणी व अनन्त चतुर्दशी को सेवइयाँ खाते हैं। दोनों ही त्यौहार खुशी एवं प्रसन्नता के हैं। ईद के दिन एक दूसरे के घर जाने एवं कुछ खाने-खिलाने की परम्परा भी कुछ शोधकर्ताओं की दृष्टि से हिन्दुओं द्वारा ही इस्लामी समाज में आया। यह दोनों ही परम्परा हिन्दुओं के त्यौहार होली में काफी पहले से मान्य थी और ईद में उनका चलन इसी के प्रभाव के कारण हुआ था। उस काम में बकरीद का समारोह भी उसी प्रकार होता था जिस प्रकार ईद का। इस दिन भी ईद की भांति अवध के शासक की सवारी वैभवपूर्ण जुलूस के साथ नमाज पढ़ने के लिए ईदगाह जाती थी एवं नमाज के पश्चात् ईदगाह में अवध के शासक ऊँट की कुरबानी करते थे और इसकी घोषणा तोप दागकर की जाती थी। ईदगाह से वापस आकर ईद ही की भांति दरबार लगता था तथा इस दरबार में भी भेंट दी जाती थी और वधाई के संदेश (बधाई की कविता) पढ़े जाते थे। इन दिन लोगों के घरों पर भी कुरबानी होती थी जिसका गोश्त भी बंटता था तथा इस गोश्त से पकाये गये स्वादिष्ट व्यञ्जन भी सम्बन्धियों एवं मित्रों के मध्य वितररित किये जाते थे तथा घर-घर दावतों का प्रबन्ध होता था। ईद ही की भांति आपस में गले मिलने, बाधाई देने और एक दूसरे के घर जाने का कार्यक्रम चलता था, जिसमें हिन्दू एवं मुसलमान सभी सम्मिलित होते थे।[85]

शबे-बरात-

सुलतानपुर परिक्षेत्र में मनाया जाने वाला प्रमुख इस्लामी त्योहार था। मुसलमानों का त्यौहार शबे-बारात भी अवध के सूबेदारों/बादशाहों के काल में अत्यधिक महत्वपूर्ण त्यौहार माना जाता था। यूँ तो यह एक ऐसा त्यौहार है जिसका सम्बन्ध मुस्लिम इतिहास की विभिन्न घटनाओं व विभिन्न इस्लामी सम्प्रदायों से जोड़ा जाता है। जैसे कुछ लोग उहद की लड़ाई में इस्लाम धर्म के प्रर्वतक मुहम्मद साहब

---

85. *नयादौर, अवध अंक, सम्पादक सैय्यद अमजद हुसैन, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 212-218*

के दानों के शहीद होने से कुछ व्यक्ति हज़रत अमीर हम्ज़ा की शहादत से जोड़ते हैं और कुछ लोग इसको इस मान्यता से जोड़ते हैं रात को फ़रिश्ते ईश्वर की आज्ञा से प्रत्येक व्यक्ति की रोजी एवं आयु का हिसाब लगाते हैं, और प्रत्येक व्यक्ति का आमालनामा (उसके द्वारा किये गये अच्छे और बुरे काम) खोला जाता है तथा उसकी किसमत का फैसला किया जाता है। किन्तु इस त्यौहार के भारत मे चलन के कारण में कुछ लोगों ने हिन्दू धर्म एवं हिन्दू संस्कृति के प्रभाव का भी उल्लेख किया है। उदाहरण स्वरूप यह कहा जाता है कि जब अकबर महान ने अपनी रानी जोधाबाई को अपने उन पूर्वजों को जो मर गये थे को भोजन देते हुए देखा तो वह इस रीति से बहुत प्रभावित हुआ और उसने यह आज्ञा दी की इस्लाम में भी इसी प्रकार की कोई रीति खोजी जाय। और इसी आधार पर किसी सलाहकार ने शबे-बारात की आधारशिला स्थापित की। जो सम्पूर्ण भारत के मुसलमानों में मान्यता पाई। सुलतानपुर शबे बारात का त्यौहार बहुत तैयारी और धूम के साथ मनाया जाता था। इस दिन लोग मीठी वस्तु (साधारणतया हलवा) पर अपने पूर्वजों के नाम पर (उनकी आत्मा की शान्ति हेतु) फातेहा दिलाते थे। हलवा बनाने एवं उस पर फातेहा दिलाने की रीति आम थी, यह हलवा मित्रों एवं सम्बन्धियों में उपहार के रूप में वितरित किया जाता था। हलवे की विभिन्न प्रकार की रोटियाँ मीठे चावल और दूसरे व्यंजन भी पकाने का भी चलन था, जिन पर मृतकों की आत्मा की शान्ति हेतु फातेहा होता था एवं निर्धनों, अनाथों इत्यादि मे खाना वितरित किया जाता था।[87] शबे बारात के उपलक्ष में पकाये जाने वाले खानों मे मांस किसी भी रूप में सम्मिलित नहीं होता था। इस त्यौहार के अवसर पर दिन के समय लोग फातेहा दिइलाने व हलवा इत्यादि को मित्रों, सम्बन्धियों एवं निर्धनों व अनाथों में वितरति करने में व्यस्त होते थे और संध्या के समय टोलियों में समूह-दर-समूह कब्रिस्तानों में अपने पूर्वजों एवं सम्बन्धियों की

87. *नयादौर, अवध अंक, सम्पादक सैय्यद अमजद हुसैन, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 212-218*

कब्रो पर जाकर प्रकाश करते एवं फातेहा पढ़ते थे, चूंकि शिया सम्प्रदाय (अस्ना अशरी) की मान्यता के अनुसार यह इमामें मेंहदी के जन्म का भी दिन है इस कारण से अवध में इसकी और अधिक धूम होती थी और इस त्यौहार की खुशीको एक समारोह का रूप मिल गया था। घर-घर में लोग दीपमालाएँ प्रकाशित करते थे एवं विभिन्न प्रकार की आतियबाजियाँ छुड़ाई जाती थीं।

शबे बरात में दीप जलाने एवं आतिशबाजी छुड़ाने की परम्परा हिन्दुओं के प्रभाव के कारण प्रचलित हुआ था। यह दोनों ही बातें हिन्दुओं के त्यौहार दीपावली के प्रभाव से मुसलमानों के इस पर्व में आयी थीं। इस दिन खाने-पीने, प्रकाश देखने, आतिशबाजी छोड़ने एवं उसकी सुन्दरता देखने में मुसलमानों के साथ-साथ हिन्दू भी सम्मिलित होते थे। शबे-बरात के साथ ही नीमे शाबान का समारोह भी आयोजित किया जाता था। इसमें लकड़ी की एक छोटी नाव बनायी जाती थी, उसे रंगीन मलमल या जरबफत (उस समय सोने-चाँदी के तार से यह कपड़ा तैयार किया जाता था) तरह रूपहले एवं सुनहरे कपड़ों से जिन की कोर पर ज़री के काम की कागज़ की गोट लगी होती थी उससे ढक दिया जाता था तथा इस नाव में मिट्टी के दिये जलाये जाते थे। इसे इतियास अलैहहिस्लाम की कश्ती कहा जाता था और इसको एक विशाल एवं भव्य जुलूस के साथ जिसमें हर वर्ग और हर स्तर के लोग सम्मिलित रहते थे, गाजे-बाजे के साथ गोमती नदी तक ले जाते थे, तथा जैसे-जैसे जुलूस नदी के निकट पहुंचता था इसमें लोगों की भीड़ बढ़ती जाती थी।[88] इस कश्ती को बड़ी ही धूमधाम से नदी में उतारा जाता था तथा इसके साथ लोग अपनी-अपनी मन्नत की अर्ज़ी भी डालते थे। नीमे शाबान के इस जुलूस एवं समारोह मे कई बातें जैसे मिट्टी के दिये जलाना एवं जुलूस में बाजे इत्यादि का होना हिन्दुओं का मुस्लिम समाज पर प्रभाव का कारण था इस समारोह में भी हिन्दू-मुसलमानों की ही तरह पूर्णरूप से सम्मिलित होते थे।

---

88. *नयादौर, अवध अंक, सम्पादक सैय्यद अमजद हुसैन, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 212-218*

मुहर्रम–

सुलतानपुर परिक्षेत्र में मनाया जाने वाला प्रमुख इस्लामी त्योहार था। सुलतानों की देखरेख में सबसे अधिक उत्साह उल्लास एवं सजधज के साथ जिसका आयोजन किया जाता था वह था इमामें हुसैन की शहादत की यादगार के रूप में मनाया जाने वाला मुहर्रम। वैसे तो सुलतानपुर में मुहर्रम अवध की सरकार की स्थापना से पहले भी मनाया जाता था किन्तु अवध में बुरहानुल मुल्क की सरकार की स्थापना के बाद मुहर्रम के आयोजन का जो विस्तार एवं प्रसार तथा इसके वैभव एवं उत्साह को बढ़ोत्तरी मिली वह इसके पूर्व नहीं थीं।[89] परवर्ती अवध के शासकगण चूंकि शिया सम्प्रदाय के अनुयायी थे और शियों में मुहर्रम को अत्यधिक महत्व प्राप्त है इसलिए इसके शासनकाल में मुहर्रम की धूम अपने चरम बिन्दु पर पहुँच गई। किन्तु सल्तनत काल एवं मुगलकाल में इसे मनाने वालों में केवल शिया सम्प्रदाय के लोग ही नहीं होते थे, बल्कि सुन्नी एवं हिन्दू भी इसको उतनी ही श्रद्धा एवं भक्ति तथा उत्साह से मनाते थे। जिस प्रकार हिन्दुओं के पर्व होली, बसन्त इत्यादि केवल हिन्दुओं तक ही सीमित नहीं रह गये थे और वह समाज के प्रत्येक वर्ग सम्प्रदाय के त्यौहार हो गये थे, उसी प्रकार मुसलमनों के पर्व भी हर धर्म और सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखने वालों का हो गया था। उस काल में इमामबाड़ों का निर्माण कार्य बड़े स्तर पर हुआ। विभिन्न शासकों ने भी काफी इमामबाड़े बनवाये तथा धनी वर्ग एवं विशिष्ट वर्ग के लोगों ने भी बहुत से इमामबाड़ों का निर्माण कराया। इन तमाम इमामबाड़ों में मोहर्रम का आयोजन एवं प्रबन्ध जिस उत्सासह एवं लगन से होता था इससे इसको अवध में अधिक मात्रा में लोकप्रियता प्राप्त हुई। उक्त काल में मुहर्रम की धूमधाम का क्रम मोहर्रम मास की पहली तारीख से शुरू हो जाता था और दसवीं तारीख को समाप्त होता था। मुहर्रम का चाँद देखने के पश्चात महिलाएँ अपनी चूड़ियाँ तोड़ देती थीं और अपने

---

89. *नयादौर, अवध अंक, सम्पादक सैय्यद अमजद हुसैन, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 212-218*

गहनें उतार दिया करती थीं लोक हरे एवं काले रंग के वस्त्र धारण कर लेते। स्थान-स्थान पर मजलिसों का आयोजन किया जाता था। प्रत्येक घर में ताजियादारी होती थी। विभिन्न प्रकार के जुलूस निकलते थे। मज़लिसों एवं जुलूसों में सम्मिलित होने और ताज़ियों का दर्शन करने के लिए मातमी वस्त्र धारण किये हुए लोगों की भीड़ हर ओर दिखायी पड़ती थी। हिन्दू और मुसलमान महिलाएँ एकत्र होकर शोकपूर्ण लय में दोहे गाती थीं (वह गीत जिसमें इमाम हुसैन एवं उनके अनुयायियों का शत्रुओं ने क़ितनी दिर्ययता के साथ शहीद किया इसका वर्णन अवधी भाषा में होता था) अजादारी और मातम करने वालों के लिए प्रत्येक सम्प्रदाय के लोग स्थान-स्थान पर सबीलें लगाते थे तथा शर्बत एवं संतरे का प्रबन्ध करते थे। मुहर्रम के दिनों में इमामबाड़ों में प्रकाश की विशेष व्यवस्था की जाती थी कन्दीले और लाल एवं हरी मोमबत्तियाँ जलाई जाती थीं। इस प्रकाश एवं कराचोबी के काम की चमक-दम सोने-चांदी के अलमों और पंजों की जगमगाहट और उनके पटकों की सजावट ज़रदोजी के काम पर गंगा-जुमनी किरण की झालर की सजावट तथा दरो दीवार की चमद-दमक से इमामबाड़े प्रकाश पुंज बन जाते थे।[90] विशेष कर शबे आशूर (दस मोहर्रम की रात्रि या कत्ल रात) को इमामबाड़ों की सजावट व रोशनी देखने वालों की आंखें चकाचौंध हो जाती थीं। मुहर्रम के समय में इमामबाड़ों में प्रतिदिन दो बार मजलिसें आयोजित की जाती थी। जिनमें तत्कालीन सुलतानपुर के अधिकारीगण भी शोकपूर्ण वस्त्र ध ारण करके एवं अपने सिर पर ताऊस (मोर) के पर का ताज धारण करके बैठते थे। अवध के सभी शासक मुहर्रम के लगभग सभी आयोजनों उत्साह एवं उल्लास के साथ भाग लेते थे। नवाब शुजाउद्दौला बड़ी भक्ति एवं सम्मान के साथ अजादारी किया करते थे। आसिफ़उद्दौला बड़ी धूमधाम से ताज़ियादारी किया करते थे और प्रायः ऐसा होता था कि वह स्वयं मातम करते करते खून में डूब जाते थे। वह कम से कम

---

90. *नयादौर, अवध अंक, सम्पादक सैय्यद अमजद हुसैन, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 212-218*

पांच रूपये और अधिक से अधिक एक हज़ार रूपये जब बाजार में ताजियों का दर्शन करते थे तो ताज़ियों पर भेंट चढ़ाते थे। वाजिद अली शाह मुहर्रम का चांद दिखने के पश्चात हरा वस्त्र धारण कर लिया करते थे तथा अजादारी के प्रत्येक कार्य को पूर्ण रूप से सम्पन्न करते थे। दस मुहर्रम की रात्रि में वह जन साधारण के घरों में जाकर ताजियों का दर्शन करते थे। प्रत्येक स्थान पर कुछ न कुछ चढ़ावा (भेंट) अवश्य चढ़ाते थे इसके अतिरिक्त मुहर्रम के जुलूस में वह स्वयं ताशा (एक बाजा) बजाया करते थे। वैसे तो उस काल में मुहर्रम के अवसर पर अजादारी (शोक मनाना) इस माह के प्रारम्भिक दस दिनों तक बराबर चलती रहती थी लेकिन पहली से लेकर दस तक की तिथियों में से कुछ तिथियां कुछ विशेष रीतियों एवं जुलूस के लिए सुरक्षित थी। जैसे 5 तारीख को बच्चों को इमाम हुसैन के नाम पर फकीर बनाया जाता था। यह रीति जनसाधारण में अत्यधिक प्रचलित एवं मान्य थी तथा बहुत से घरों मे इसको मनाया जाता थाा। मुहर्रम के अवसर पर इस रीति को मनाया जाना हिन्दुओं के प्रभाव के कारण हुआ था क्योंकि बच्चों को फकीर या जोगी बनाना मूलरूप में हिन्दुओं की प्रथा है। सातवीं मुहर्रम को हजरत कासिम की (मेंहदी) शादी का जुलूस निकलता था। जो मेंहदी का जुलूस कहलाता था। अवध के शासकों के समय में मेंहदी का जुलूस राजसी ठाठ एवं आन बान से निकलता था।[91] इसमें सबसे आगे हाथियों एवं ऊँटों की पंक्तियाँ रहती थीं। जिन्हें इमामबाड़े के बाहर ही रोक दिया जाता था। सिपाही जुलूस ढोनेवाले मजदूर तथा बाजे वाले इमामबाड़े के सदन में बांयी ओर उचित ढंग से इस प्रकार खड़े हो जाते थे कि बीच में रास्ता बन जाता था। सबसे पहले अन्दर प्रवेश पाने वाले सामान में चांदी की कश्तियों (ट्रे अथवा परात) में मिठाइयाँ, सूखे मेवे एवं फूलों के हार होते थे। इसके पश्चात चमकते झलझल करते वस्त्र धारण किये हुए सेवक सिरों पर मसहरी रखे तथा कुछ व्यक्ति हाथों में गुलदस्ते लिये हुए आते थे, इनके पीछे

---

91. *नयादौर, अवध अंक, सम्पादक सैय्यद अमजद हुसैन, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 212–218*

दुलहन की चांदी की पालकी होती थी। जिसके संग सुन्दर वर्दी धारण किये हुए मशालची कुमकुमों में प्रज्वलित मशालें लिये चलते थे तथा इनके साथ-साथ करना और नफ़ीरी (यह बाजे मुहर्रम के अवसर पर अभी भी अवध के क्षेत्र में बजाये जाते हैं) बजाने वालों की चौकियाँ हुआ करती थीं। दुल्हान की इस पालकी पर रूपये और चांदी के अन्य सिक्के न्योछावर किये जाते रहते थे। पीछे-पीछे मातमी दस्ते मातमी वस्त्र धारण किये हुये प्रवेश करते थे। तथा कुछ व्यक्ति मातम करते रहते थे। कुछ लोग हजरत कासिम का ताबूत कन्धों पर उठाये होते थे तथा कुछ व्यक्ति मातम करते जाते थे। इस ताबूत के संग ज़री के छत्र के नीचे घोड़ा होता था जिस पर हज़रत कासिम का अमामा (पगड़ी), खंजर, धनुष एवं वाणों से भरा हुआ तरकश रखा जाता था। जब यह घोड़ा उस समय में इमामबाड़े के सहन में प्रवेश करता था तो इस पर चांदी एवं सोने के फूल न्योछावर किये जाते थे जिनको निर्धन लोग लूट लिया करते थे। अंत में शोक की मजलिस आयोजित की जाती थी।[92] मुहर्रम में मेंहदी के जुलूस को उठाने की प्रथा भी हिन्दुओं एवं हिन्दुस्तान के प्रभाव के कारण थी। क्योंकि विवाह के सम्बन्ध में मेंहदी की प्रथा शुद्ध रूप से भारतीय थी। जिस प्रकार से मुहर्रम की सात तारीख़ हज़रत क़ासिम से सम्बद्ध कर दी गयी थी उसी प्रकार से मुहर्रम की आठ तारीख़ हज़तर अब्बा से जोड़ दी गयी थी। इस तारीख को हजरत अब्बास का अलम निकलता था। तथा इसमें विशेष बात यह होती थी कि सल्तनत के अमीर, रईस व जनसाधारण सभी के जुलूस में हज़रत अब्बास के अलम का पंजा तांबे का होता था दसवीं मुहर्रम को ताजिये उठते थे। ताजिया हिन्दुस्तानी वस्तु है। इसका अविष्कार भारत में हुआ था तथा इसी देश में इसको लोकप्रियता भी प्राप्त हुई। कहते हैं कि शहनशाह तैमूर लंग प्रतिवर्ष मुहर्रम के अवसर पर इमाम हुसैन के मजार पर श्रद्धावश दर्शन हेतु जाया करता था। जब उसने भारत पर आक्रमण किया तो युद्ध के काल में ही मुहर्रम का चांद

---

92. *नयादौर, अवध अंक, सम्पादक सैय्यद अमजद हुसैन, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 212-218*

दिखाई पड़ा और चूंकि उस समय उसके लिए कब्रे हुसैन पर पहुंचना असम्भव था इसलिए उसने अपने सलाहकारों की सलाह पर कार्य करते हुए इमाम हुसैन के रौजे की शबीह (प्रतिमूर्ति) बनवायी और उसके सम्मुख शोक प्रकट करके अपनी श्रद्धा और भक्ति को संतुष्ट किया। वही शबीह ताजिये की नींव (आधार) बनी। तैमून ने जो शबीह बनवाई थी वह इमाम हुसैन के रौजे की हू ब हू नक्ल रही होगी, लेकिन आगे चलकर ताजिये के आकार एवं प्रकार में बदलाव आया और इसकी बनावट में हिन्दू शैली स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होने लगी। लखनऊ में प्राचीन समय मे जो ताजिये प्रचलित थे उनका ऊपरी भाग अर्थात गुम्बद मन्दिर से मिलता-जुलता होता था तथा नीचे के खंड में तुरबत की तरह एक नमूना अलग से बनाकर रख दिया जाता था। ताज़िये की इस सूरत के जन्म के विषय में यह अनुमान है कि जब हिन्दुओं ने मुहर्रम मनाना प्रारम्भ किया होगा तो उन्होंने प्रारम्भ में इसी प्रकार का ताजिया बनाना होगा और फिर इसी का साध्णारणतया प्रचलन हो गया। अवध के शासकों के समय में साधारण रूप से इसी आकार के ताजियों का चलन था। इस काल में विभिन्न स्तर के लोग विभिन्न स्तर के और विभिन्नन वस्तुओं के ताजियों का निर्माण करवाते थे। दसवीं मुहर्रम यानी आशूरा के दिन सूर्योदय के साथ ही ताज़िये उठाने लगते थे। हर वर्ग के लोग ताजियादारी करते थे और ताजिया उठाते थे। चांदी से लेकर लकड़ी और कागज के ताजिये बनते थे। कुछ लोग हाथी दंता और चन्दन एवं सनोबर की लकड़ी लकड़ी के ताजिये भी बनवाते थे। हिन्दुओं के ताजिये भी बड़ी सख्या में उठते थे। वेश्याएँ भी ताज़िये का जुलूस निकालती थी। जिस में वह खुद मरसिये और नौहे पढ़ती थीं और इन्हीं के कारण लोग भारी संख्या में उनके जुलूस में सम्मिलित होते थे। ताजियों के सभी जुलूसों मे बड़ी अधिक भीड़ होती थी। शिया, सुन्नी, मुसलमान, हिन्दू, अमीर, गरीब, महिला, पुरुष, छोटे-बड़े सब ही ताजियों के जुलूसों को देखने एवं उसमें भाग लेने के लिए उमड़ पड़ते थे। सभी ताजियों को बड़ी धूमधाम के साथ ढोल, तोशे, झांझ के साथ कर्बला ले जाया जाता था। साधारण ताजियों को कर्बला में दफ़ना दिया जाता था और धनी वर्ग के बहुमूल्य ताजियों को वापस लाकर

इमामबाड़ों में सुरक्षित कर दिया जाता था। कर्बला में दफ़नाते समय तजहीज़ व तकफ़ीन (वक क्रिया जो इस्लाम में मय्यत को दफनाते समय की जाती है) कर्बला से लौटकर घर आकर ताजियादार बिना धार्मिक भेदभाव के निर्धनों एवं अनाथों में दान करते थे। उक्त समय में मुहर्रम के पर्व में भारतीय प्रभाव एवं हिन्दुओं के प्रभाव की छाप स्पष्ट रूप से पड़ी तथा इसकी तमाम परम्पराओं में धार्मिक-प्रथाओं पर हर धर्म व हर वर्ग तथा प्रत्येक सम्प्रदाय के लोगों की पूर्णरूप से सम्मिलित होने के आध ार पर इसका संयुक्त सांस्कृतिक रंगरूप एक चमकते हुए दिन की तरह स्पष्ट है।

अवध के शासकों के काल में हिन्दुओं और मुसलमानों के लगभग सभी महत्वपूर्ण त्यौहारों के मनाने का जो ढंग था उसने एक ओर तो खुद इन त्यौहारों के संयुक्त सांस्कृतिक रूप को निखारा तथा दूसरी ओर इससे अवध की संयुक्त संस्कृति को भी बड़ी शक्ति मिली।[93]

नौरोज

नौरोज नववर्ष के आगमन पर मनाया जाने वाला उत्सव था। इसे अकबर के शासन काल में मान्यता प्राप्त हुई। अकबर अत्यन्त धूमधाम से इस त्योहार को मनाता था। यह त्योहार पारसी धर्म से ग्रहण किया गया था। इसमें सूर्य की उपासना प्रभृति तथ्य सन्निहित थे। यह त्योहार काफी कुछ हिन्दू त्योहारों से मेल खाता था। अकबर से लेकर शाहजहाँ तक यह त्योहार प्रतिवर्ष मनाया जाता रहा परन्तु औरंगजेब ने इसमें बुतपरस्ती की बू जानकर बन्द करवा दिया। **सुलतानपुर परिक्षेत्र में अकबर** के आदेश से उसके स्थानीय सामन्त इसका आयोजन यहाँ भी करते थे। औरंगजेब के समय में यहाँ भी नौरोज का पर्व मनाया जाना बन्द हो गया।

---

93. *नयादौर, अवध अंक, सम्पादक सैय्यद अमजद हुसैन, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 212-218*

★★★

उपसंहार

उपसंहार

उपर्युक्त विवरणों के शोध परक अन्वेषण से ज्ञात होता है कि सुलतानपुर (वर्तमान) को तेहरहवीं शताब्दी ई० के पूर्व कुशभानुपुर, कुशभवनुपुर, कुशास्थली, कुशपुर आदि नामों से जाना जाता था। अलाउद्दीन खिलजी के द्वारा भर शासक नन्दकुमार को पराजित कर कुशभानुपुर को बदलकर सुलतानपुर कर दिया गया।

गोमती नदी के दोनों पार्श्वों मे अवस्थित, फैजाबाद से इलाहबाद एवं वाराणसी से लखनऊ मार्ग पर सुलतानपुर शहर बसा हुआ है। सुलतानपुर जनपद के उत्तर में फैजाबाद एवं अम्बेडकरनगर, दक्षिण मे प्रतापगढ़, पूरब में जौनपुर एवं आजमगढ़ तथा पश्चिम में रायबरेली की सीमा स्पर्श करती है। सुलतानपुर को जनपद के रूप में मान्यता 1869 ई. में मिली थी। 1869 ई. में सुलतानपुर जनपद में 12 परगने थे। जिन्हें इन्हौना, जगदीशपुर, सुवेहा, राखासराय, सेमरौता, गौराजामों, मोहनगंज, अमेठी, इसौली, थापा असल, सुलतानपुर एवं चाँदा नाम से जाना जाता था।

उपर्युक्त में से इन्हौना तहसील के अन्तर्गत इन्हौना, जगदीश एवं सुबेहा, मोहनगंज तहसील के अन्तर्गत राखा जायस, सेमरौता, गौराजामों एवं मोहनगंज, अमेठी तहसील के अन्तर्गत अमेठी, इसौली एवं थापाचाँदा के परगने आते थे। 1878 ई. तक सुलतानपुर से पाँच परगने निकाले जा चुके थे। इनमें से सुबेहा परगना बाराबंकी जिले में तथा इन्हौना, जायस, सेमरौता एवं मोहनगंज रायबरेली जिले में नियोजित किये गये। इस प्रकार 1878 ई. में सुलतानपुर में सात परगने थे।

सुलतानपुर जनपद भोगोलिक दृष्टि से 25°.59' से 26°40' उत्तरी अक्षांस एवं 81°32' तथा 81°41' पूर्वो देशान्तर के मध्य अवस्थित है। सुलतानपुर की अधिकतम लम्बाई पूर्व से पश्चिम 80 मील एवं अधिकतम चौड़ाई 38 मील है।

प्राचीन कुंशभवनपुर को वर्तमान सुलतानपुर से समीकृत किया गया है। वायुपुराण में वर्णित कुशस्थली का समीकरण कुशभवनपुर या सुलतानपुर से किया जा रहा है।

कुशभवनपुर या कुशस्थली, अयोध्या के राजा एवं जननायक मर्यादापुरुषोत्तम भगवान श्रीराम के ज्येष्ठ पुत्र कुश की राजधानी थी। कुशस्थली तीन तरफ से गोमती नदी से घिर हुयी थी।एक अन्य परम्परा के अनुसार – ''श्रीराम के दो पुत्र कुश और लव थे। लव को उत्तरी कोशल एवं कुश को दक्षिणी कोशल का राज्य मिला। कुश ने गोमती नदी के किनारे भौगोलिक रूप से सुरक्षित स्थल पर अपनी राजधानी का निर्माण किया। यही नगर कुशभवन पुर या कुशपुर कहलाया। यहाँ पर आज भी इस नगर के अवशेष विद्यमान हैं। डॉ. आर. सी. मजूमदार एवं पुसालकर का अभिमत है कि – ''महाभारत काल में भीम ने रघुवंशी राजा दीध र्जिय को इसी भूमि पर पराजित कर अपने आधिपत्य में कर लिया।

महात्माबुद्ध का समकालीन शासक प्रसेनजित कोशल का शासक था। कुशपुर या केसिपुत्र, कलाम क्षत्रियों के आधिपत्य में था। जनपद में बौद्धकालीन पुरासम्पदा कई स्थलों पर विद्यमान है। ह्वेगसांग ने इस नगर को क्रियाशोपोलों कहा है। वह इसी नगर से होकर साकेत गया था। कनिष्क के शासन में यह जनपद बौद्धों का प्रमुख केन्द्र था। कनिष्क के सिक्के 1907 ई. में ग्राम मुइली जिला–सुलतानपुर (सदर तहसील) से प्राप्त हुए थे।इसी जनपद की लम्भुआ तहसील का ग्राम भदैयां एवं बुध ापुर क्रमशः बुद्धयान तथा बुद्धापुर था। चन्द्रगुप्त ने अयोध्या के उद्धार के साथ यहाँ का भी उद्धार किया था। ह्वेगसांग ने केशिपुत्र के विहारों का उल्लेख किया है।

हर्ष के उपरान्त भरों का अधिपत्य इस भू–भाग पर हो गया। भर राजा **ईश** ने इसौली, **कूड़** ने कुड़ेभार तथा **अल्दे** ने अल्देमऊ को बसाया। ये सभी कन्नौज के गुर्जर प्रतिहारों के अधीनस्थ शासक थे। जयचन्द्र की पराजय के साथ ही भर शासक

स्वतन्त्र हो गये।

रामायण महाकाव्य में इस भू–भाग को अत्यन्त उपजाऊ भू–भाग कहा गया है। मुस्लिम आक्रमण के पूर्व यह भू–भाग "भरो" के आधिपत्य में था। महमूद गजनवी के आक्रमण के बाद उसके भाँजे ने भारत पर आक्रमण किया तथा अयोध्या तक आ धमका। यद्यपि मुस्लिम इतिहास में सैय्यद सालार मसूद (महमूद का भाँजा) का उल्लेख नहीं है, तथापि काबुल से कन्नौज–अयोध्या तक उसके आक्रमण के चिन्ह प्राप्त होते है। यह उल्लेखनीय है कि भरो का एवं वैसवाड़ा के राय विराड़ का राज्य इन भूभागों पर था। दोनों की सम्मिलित सेनाओं ने सैय्यद सालार मसूद को, बाराबंकी जिले के **सत्रिख** (सतरिख) नामक स्थान पर पराजित किया। मसूद इस युद्ध में मारा गया।

सैय्यद सालार मसूद एवं पाँचों पीरन की मजार सुलतानपुर से प्राप्त हुयी है उसका संभावित निर्माता मुहम्मद गोरी या कोई परवर्ती मुस्लिम रहा होगा, जिसने इन लोगों की मजार का निर्माण गोमती नदी के किनारे करवाया।

मुहम्मद गोरी के आक्रमण के पूर्व कुशभानपुर का क्षेत्र भरों के आधिपत्य में था। मुहम्मद गोरी की भारत विजय के साथ ही इस क्षेत्र पर मुस्लिम प्रभाव बढ़ा, अलाउद्दीन खिलजी ने भर राजा नंद कुंवर पर आक्रमण कर उन्हें पराजित किया, और इस स्थल का नाम कुशभानपुर से बदलकर सुलतानपुर कर दिया।

अवध, अयोध्या के अर्थ में भी यत्र–तत्र ग्राह्य है। जिसका शाब्दिक अर्थ प्रतिज्ञा है। अवध गजेटियर के अनुसार – "अयोध्या के राजा रामजी ने 14 वर्ष के वनवास के बाद अयोध्या लौट आने की प्रतिज्ञा की थीं जिसे उन्होंने पूरा किया तभी से यह क्षेत्र अवध कहलाता है। इसी तथ्य का प्रतिपादन मुस्लिम इतिहासकार "रसीद अहमद" के फैजाबाद लेख से होता है। महाकवि गोस्वामी तुलसीदास की

अमरकृति "रामचरितमानस" से भी अवध एवं अयोध्या में एका दर्शिता होती है। जहाँ अयोध्या को सरयू के दक्षिण अवस्थित बतलाया गया है।

अवध की सीमा समय-समय पर बदलती रही है। महाभारत युग तक अवध ा क्षेत्र को कोशल के नाम से जाना जाता था। ई. की प्रथम शताब्दी में अवध अत्यन्त उपजाऊ क्षेत्र था। गुप्तयुग में अयोध्या क्षेत्र समृद्ध था। गुप्तोत्तर काल में भी यही स्थिति थे। राजपूत युग में भारत पर मुस्लिम आक्रमण आरम्भ हो गया तथा कालान्तर में अवध क्षेत्र भी विजेताओं के हाथ में चला गया।

मुस्लिम आक्रमण के पूर्व अवध क्षेत्र भरो के अधीन था। मुहम्मद गोरी के शासन में इस क्षेत्र पर उसका अधिकार स्थापित हुआ। आइने अकबरी के अनुसार- "अकबर कालीन अवध सूबा वर्तमान अवध प्रदेश से बड़ा था। इसमें जहाँ एक तरफ गोरखपुर, वस्ती, देवरिया जनपद सम्मलित था वही दूसरी तरफ अवध प्रदेश के परगना अकबरपुर, मझौटा, टाण्डा का कुछ भाग विलहर सुरहुरपुर (फैजाबाद/ अम्बेडकरनगर), अल्देमऊ, चाँदा (सुल्तानपुर जनपद) सरकार जौनपुर सूबा इलाहाबाद में तथा अमेठी, गौराजामों एवं कयोत (सुल्तानपुर जनपद), सम्पूर्ण प्रतापगढ़ जनपद एवं परगना बछरावां, रायबरेली का पूर्वी भाग, सलौन, परसदेपुर, रोखा जायस, मोहनगंज सेमरौला का कुछ भाग (रायबरेली जनपद), परगना हैदरगढ़ (बाराबंकी जनपद) सरकार मानिकपुर सूबा इलाहाबाद में सम्मिलित था।

अर्थात् उपर्युक्त क्षेत्र परगनावार जनपद में तथा इलाहाबाद आदि सरकारों सहित गोरखपुर, देविरया, बस्ती जनपद मुगलकाल में अवध क्षेत्र का अंग था। सुलतानपुर सम्पूर्ण अवध में सम्मिलित था। स्वतन्त्र प्रान्त के रूप में अवध सूबा, सआदत अली खाँ के काल में अस्तित्व में आया।

1206 ई. में गोरी की मृत्यु के बाद कुतुबुद्दीन ऐबक गद्दी पर बैठा उसी ने भारत में तुर्की साम्राज्य की नींव डाली।

तराइन के युद्धों में कुतुबुद्दीन ऐबक मुहम्मद गोरी का प्रमुख सेनापति था। तराइन विजय के उपरान्त मुहम्मद गोरी ने ऐबक को तोमर राजकुमार पर नजर रखने के लिए एक सेना के साथ इन्द्रप्रस्थ में नियुक्त किया। तदन्तर मुहम्मद गोरी वापस गजनी चला गया।

जिस समय कुतुबुद्दीन ऐबक मध्य हिन्दुस्तान को जीतने में व्यस्त था। उसी समय उसके एक साधारण सेनापति इख्तियाऊद्दीन मुहम्मद विन बख्तियार खिलजी ने पूर्वी प्रान्तों को जीतने की योजना बनायी। यह अत्यन्त कुरूप एवं भद्दी आकृति वाला था। इसीलिए वह अपनी योग्यता एवं महत्वाकांक्षा के अनुरूप पद नहीं प्राप्त कर सका। उसकी वीभत्स आकृति के कारण ही गजनी और दिल्ली में नौकरी नहीं मिली। इस समय तक अवध प्रान्त ऐबक के अधिकार में आ चुका था। यहाँ पर

ऐबक का प्रतिनिधि गवर्नर/हाकिम के रूप में **मलिक–हिसामुद्दीन–अबुल–वक** शासन कर रहा था। बख्तियार खिलजी ने अबुल–वक के यहाँ नौकरी कर लिया। शीघ्र ही **बख्तियार** ने अयोध्या पर अधिकार कर लिया। परिणाम स्वरूप उसे भगवत और म्यूली के गाँव जागीर के रूप में मिलें। ये दोनों गाँव सुलतानपुर जनपद में ही आते है। ध्यातव्य है कि यह घटनाएँ 1202–03 ई. के मध्य घटित हुयी। इस समय ऐबक गोरी का प्रतिनिधि एवं दास था।

1206 ई. में कुतुबुद्दीन ऐबक सिंहासन पर बैठा, इसी समय अवध प्रान्त के साथ सुलतानपुर उसकी सल्तनत का अंग बन गया।

बैसवारा के राजा रतनसेन के कोई पुत्र नहीं था अतः उन्होंने अपना सम्पूर्ण राज्य अभयचन्द को दे दिया। इस प्रकार राजा रतनसेन की मृत्यु के बाद अभयचन्द राजा बने, जो आधुनिक बैसवारा के प्रवर्तक हुए। राज अभयचन्द के राज्य में भरों की आबादी अधिक थी। भरों ने अभयचन्द के राजा बनने का विरोध किया, किन्तु राजा ने उन्हें युद्ध में पराजित कर राज्य के बाहर भगा दिया। राजा ने अपने राज्य

की सीमा का विस्तारकिया और आजीवन स्वतंत्र राजा बने रहे। इनकी मृत्यु के पश्चात् राज्य के लिए भाईयों में युद्ध हुआ और एक भाई दिल्ली की सहायता से राजा बन गया। दूसरा भाई राज्य से बाहर चला गया, तभी से यह राज्य दिल्ली के आधीन हो गया। अभयचन्द का वंश बहुत बढ़ा और अब तक पूरे राज्य में फैल गया। आगे चलकर इसी वंश से निकलकर घाटमदेव बाराबंकी में जा बसे। ये 12 गांवों के जमींदार थे। यहां इनकी सन्तान गुदारा के वैस कहे जाते हैं। रायशान्ता के पुत्र राजा तिलोकचन्द इस वंश के प्रसिद्ध राजा हुए, जिनके नाम पर ही तिलोकचन्दी वैस विख्यात हुए। यह भी उल्लेखनीय है कि कुतुबुद्दीन ऐबक के शासनकाल में अमेठी पर बछगोती शासक राज हरीसिंह का अधिकार था।

मुहम्मद गोरी के शासनकाल में हिसामुद्दीन–अबुल–वक, ऐबक के द्वारा नियुक्त अवध/सुलतानपुर का प्रथम गर्वनर था। इसके बाद इस भू–भाग पर सूबेदारी व्यवस्था लागू की गयी। **इख्तियारूद्दीन बख्तियार खिलजी** (1190), **मलिक हमसुद्दीन** (1193–1197), **मुहम्मद बख्तियार खिलजी** (1197–1225) ऐबक युग में सुलतानपुर परिक्षेत्र के सूबेदार थे।

इल्तुतमिश का पूरा नाम शम्स–उद–दीन इल्तुतमिश था। वह इल्वारी तुर्क एवं गुलाम था। अपनी योग्यता के बल पर **"अमीरे शिकार"** के पद पर नियुक्त हुआ। बाद में ग्वालियर का किलेदार एवं बुलन्दशहर का शासक नियुक्त हुआ। कुतुबुद्दीन ने अपनी पुत्री का विवाह इससे कर दिया। बाद में वह बदायूँ का सूबेदार नियुक्त हुआ तथा 1212 ई. को दिल्ली का सुलतान नियुक्त हुआ।

इसी क्रम में इल्तुतमिश ने बहराइच को जीतने के लिए सेना भेजी। यहाँ पर भी इल्तुतमिश का अधिकार हो गया। कमजोर शासन सत्ता का लाभ उठाकर अवध भी स्वतन्त्र हो गया था। उसे पुनः जीतना आवश्यक था। भयंकर युद्ध के पश्चात यहाँ दिल्ली की सत्ता स्थापित हो सकी। परन्तु अवध क्षेत्र के नये सूबेदार **नासिरूद्दीन**

महमूद को स्थानींय जातियों का भयंकर प्रतिरोध सहना पड़ा।

1197 ई. से 1225 ई. तक **मुहम्मद खिलजी** यहाँ का सूबेदार था। जबकि डब्ल्यू हेग एवं मजूमदार तथा पुसालकर महोदय ने हसन मुहम्मद को सुलतानपुर का गर्वनर बतलाया है। इसके विपरीत आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव ने इल्तुतमिश के सबसे बड़े पुत्र नासिरूद्दीन महमूद को यहाँ का सूबेदार कहा है।

मूलतः डब्ल्यू हेग महोदय का कथन सत्य प्रतीत होता है हसन मुहम्मद सुल्तानपुर का गर्वनर था। इसको राज्य की सीमा का विस्तार करते हुए 1400 गाँवों को इसमें समाहित कर दिया तथा जौनपुर तक विस्तृत कर दिया। अमेठी राज्य इस समय भी राजा हरी सिंह के अधीन था। इस समय तक वे स्थानीय स्तर पर सबसे शसक्त शासके के रूप में अभ्युदित हो रहे थे तथा कादूनाले के आस-पास भर जाति के लोग शासन कर रहे थे। इसी समय अभयचन्द जो आधुनिक बैसवारा के राजा थे, उनकी जमींदारी भी कुछ भू-भागों पर थी।

इल्तुतमिश के उपरान्त रुकुनुद्दीन फिरोजशाह 1236 ई. में गद्दी पर बैठा।इसके शासनकाल में सम्पूर्ण सल्तनत में अव्यवस्था व्याप्त हो गयी। अधीनस्थ सूबेदारों ने स्वयं को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। स्वयं सुलतान के भाई ने (मालिक गियासुद्दीन) अवध क्षेत्र के सूबेदार के रूप में विद्रोह कर दिया।

रजिया ने अपने शासन को सुदृण करने के लिए सूबों में नये सूबेदारों को नियुक्त किया था। इसी क्रम में उसने अवध क्षेत्र का सूबेदार **नसिरूद्दीन तैयसी** (1237 ई. से 1240 ई.) को नियुक्त किया। दूसरी तरफ **कमरूद्दीन कुरान** (1240-45 ई.) को भी अवध के सूबेदार के रूप में वर्णित किया गया है। लाला सीताराम ने भी 1236-1242 ई. के मध्य अयोध्या के सूबेदार के रूप में **नसिरूद्दीन तबासी और कमरूद्दीन कैरान** को अयोध्या के सूबेदार के रूप में बतलाते हैं।

मुइजुद्दीन बहरामशाह (1240 से 1242 ई.) एवं नासिरूद्दीन महमूद (1242-1265 ई.) गद्दी पर बैठे इस अवधि में अधिकांश समय बादशाह निर्बल ही रहे। शासन की वास्तविक सत्ता **चालीस दल** के अगुवा बलबन में सीमित थी। इस समय **कमरूद्दीन कुशन** (1240-45 ई.), **तुगनखान** (1245-53 ई.), **कुतलुग खान** (1225-55 ई.) एवं **मलिक ताजुद्दीन** (1255 से 66) के मध्य अवध के सूबेदार के रूप में कार्य किया।

इस प्रकार अयोध्या/अवध/सुलतानपुर पर उपर्युक्त अवधि में कई हाकिम/सूबेदार नियुक्त हुए इनमें से सबसे योग्य इल्तुतमिश का पुत्र नासिरूद्दीन महमूद था। नासिरूद्दीन महमूद के शासन काल की एक घटना सुलतानपुर जनपद के सन्दर्भ में भी प्राप्त होती है। यथा - 1248 ई. में सुलतान नासिरूद्दीन के शासनकाल में बरियार सिंह (चौहान), जिसने सीधे चाहेर देव से अपना संबंध बतलाया, जो कि पृथ्वीराज चौहान का भाई था, अपने घर से भागकर पहले जमुआवाँ एवं बाद भदैयां में स्थापित हुआ।

बरियार सिंह अलाऊद्दीन मसूद की सेना में भरती हो गया। उसे भरो को खदेड़ने का काम मिला, जो सुलतानपुर पर स्थानीय शासक के रूप में शासन कर रहे थे। उपर्युक्त से यही स्पष्ट होता है कि - दिल्ली सल्तनत युग के प्रथम चरण में अवध, पूर्वी उत्तर प्रदेश का केन्द्र था तथा प्रत्येक क्षेत्र अवध के अधीन स्थानीय स्वशासन के आधार पर संचालित हो रहे थे। यह भी स्पष्ट होता है कि उस समय सुलतानपुर (जनपद) पर अभी भर शक्तिशाली स्थिति में थे। राजा हरी सिंह अभी भी अमेठी एवं आस-पास के भू-भाग पर शासन कर रहे थे।

बलबन का मूल नाम बहाऊद्दीन था। वह 1265 ई. पर सिंहासन पर बैठा तथा 1287 ई. तक शासन किया। दिल्ली की गद्दी पर बैठने के उपरान्त उसे यह अनुभव हुआ कि - अवध क्षेत्र पर उसकी पकड़ कमजोर हो रही है। खासकर

मुलतानपुर क्षेत्र में, अतः उसने इस क्षेत्र को सेना के हवाले कर दिया। सेना ने यहाँ पर एक बार पुनः दिल्ली की सत्ता को स्थापित किया।

यद्यपि सुलतान कठोर व्यक्ति था तथाकि न्यायप्रिय था। इसके लिए उसने अपने राज्याधिकारियों को भी नहीं बक्सा, यहाँ तक कि **हैवत खाँ** को जो यहाँ का रैयती था, उसे भी कठोर दंड दिया।

1280 ई. में **जेतगिन मुईद राज अमीरखान** अवध का सूबेदार नियुक्त हुआ। यद्यपि ईश्वरी प्रसाद ने इसके नियुक्ति की तिथि 1279 ई. स्वीकारी है। इसने बंगाल के विद्रोही तुगारिल खाँ को नियन्त्रित करने का प्रयास किया परन्तु असफल रहा। अतः सुलतान को स्वयं बंगाल अभियान करना पड़ा। वह सुलतानपुर होते हुए अवध से गुजरा तथा बंगाल पर पुनर्प्रभाव स्थापित किया।

बलबन के उपरान्त बलबन के पुत्र एवं पौत्र में संघर्ष तक की नौबत आ गयी। दोनों का आमना-सामना घाघरा के सन्निकट **अयोध्या** के समीप हुआ। भारत में खिलजी साम्राज्य की स्थापना जलालुदीन खिलजी ने किया। वह खलजी कबीले का तुर्क था। इसके पूर्वज आकर दिल्ली में बस गये तथा तुर्की सुलतानों के यहाँ नौकरी करने लगे। सामान्यतयः इन्हें अफगानी पठान समझा जाता था। इस वंश के आरम्भिक शासक योग्य थे तथा परवर्ती शासक निर्बल एवं अयोग्य। परन्तु इनके शासन काल में सामान्य तौर पर सुलतानपुर पर इनका अधिकार बरकरार रहा। अमेठी का शासन इस समय राजा देवनशाह के हाथ में था।

यह दिल्ली की गद्दी पर 1290 ई. को बैठा तथा 1294 ई. तक शासन किया। सुलतान बनने के पूर्व यह राज्य के समस्त महत्वपूर्ण पदों पर कार्य कर चुका था। इससे कट्टर तुर्की अमीर ईर्ष्या रखते थे। वे फिरोज को शून्य की स्थिति में लाना चाहते थे। अतः उसने कुछ विरोधियों का दमन करके, अल्पवयस्क बालक/शासक के संरक्षण का दायित्व ग्रहण किया। बाद में कैकुबाद एवं कयूमर्स की हत्याकर – दिल्ली

की गद्दी पर बैठा।

शासक बनने के बाद उसने मलिक छज्जू को कड़ा सूबेदार बना रहने दिया। शेष सभी को सामान्य तौर पर अपने पदों पर बना रहने दिया। शीघ्र ही मलिक छज्जू ने विद्रोह कर दिया। अवध का सूबेदार **हातिम खाँ** भी उसमें जा मिला। विद्रोह शीघ्र ही दबा दिया गया। छज्जू का माफ कर दिया गया। कड़ा–मनिक पुर की सूबेदारी सुलतान के भतीजे एवं दामाद अलाऊद्दीन को प्राप्त हुयी। शीघ्र **अलाऊद्दीन** को अवध की सूबेदारी भी प्राप्त हो गयी। परन्तु वह अयोध्या में निवास न करके इलाहाबाद के निकट कड़ा में निवास करता था। आते जाते वह सुलतानपुर पर भी निगाह रखता था।

अलाऊद्दीन उपर्युक्त शासकीय दुगुणों युक्त होने के बाद भी प्रजारंजक शासक प्रतीत होता है। उसने प्रसानिक सुधार किया, गुप्तचर व्यवस्था को पुनर्सगंठित किया, बाजार पर नियन्त्रण कर वस्तुओं का मूल्य निर्धारित किया। सट्टेबाजी एवं जमा खोरी पर अंकुश लगाया। अलाऊद्दीन उलेमा एवं अमीर वर्ग की पकड़ से बाहर था, उसने स्वयं घोषणा कर रखी थी कि – **"मैं नहीं जानता कि क्या कानून की दृष्टि से क्या उचित होता है, मैं जो चाहता हूँ, करता हूँ, उसी को करने की आज्ञा देता हूँ; अन्तिम न्याय के दिन मेरा क्या होगा मैं नहीं जानता।"** इससे यही स्पष्ट होता है कि – अलाऊद्दीन निरंकुश राजसत्ता का समर्थक था, उसे बाहय हस्तक्षेप स्वीकार नहीं था। अमेठी का शासन इस समय राजा देवनशाह के हाथ में था।

अपनी विजय एवं वर्चस्व की नीति का अनुकरण अलाऊद्दीन ने सुलतानपुर (कुशभानपुर) के सन्दर्भ में किया। यथा – अलाऊद्दीन के शासनकाल (1296 से 1316 ई.) में दो भाई (सैय्यद मुम्मद एवं सैय्यद अलाऊद्दीन) जो घोड़े के व्यापारी थे, पूर्वी अवध आये तथा भर शासक नंद कुंअर से (जो कुशभानपुर के राजा थे)

घोड़े बेचने की पेशकश किया। नंद कुंवर ने घोड़ों को छीन लिया तथा दोनों भाइयों की हत्या कर दिया। परिणाम स्वरूप भयंकर युद्ध के पश्चात् अलाउद्दीन के द्वारा राजा नंद कुंवर को पदच्युत कर दिया गया। विजयोत्सव पर वहाँ एक मस्जिद बनवायी गयी। कुशभानपुर का नाम बदल कर सुलतानपुर कर दिया गया।

नेविल महोदय के अनुसार– "भरों का प्रधान केन्द्र इसौली था। भरों का आधिपत्य समाप्त कराने के उद्देश्य से अलाऊद्दीन खिलजी ने बैस (ठाकुरों) को इकट्ठा किया, उन्हें **भाले सुलतानपुरी** की उपाधि प्रदान किया। सुरक्षा की दृष्टि से अलाऊद्दीन खिलजी ने गोमती से दक्षिण एक किले का निर्माण करवाया, इस स्थल का नाम मीरानपुर (कठोत) था। इसके अवशेष अभी भी देखे जा सकते है। वर्तमान में इस गाँव का नाम जूड़ा पट्टी है। कुशभानपुर (सुलतानपुर) पर नियन्त्रण रखने के लिए एक अन्य किला मुसाफिरखाना इसौली मार्ग पर बनवाया तथा यहाँ पर अफगान सैनिकों को नियुक्त किया। इसके अग्नावशेष अब भी विद्यमान हैं। किला चतुर्दिक चाहरदीवारी युक्त था। दिवाल में स्थान–स्थान पर सुराख बने हुए हैं। सम्भवतः इन सुराखों का उपयोग अन्दर से तीर चलाने एवं वाह्य गतिविधि पर नजर रखने के लिए किया जाता था। अलाऊद्दीन खिलजी ने एक अन्य किला कादीपुर (वर्तमान नाम) में स्थापित करवाया था। इस प्रकार यहाँ से कुल चार किलों का परिज्ञान होता है ।

राजा देवनशाह के नेतृत्व में इस समय अमेठी फल–फूल रहा था। सुलतानपुर अभियान के समय अमेठी राजवंश भी प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभावित हुआ, परन्तु नेतृत्वपरिवर्तन जैसी कोई भी ऐतिहासिक विषय वस्तु दृष्टिगत नहीं होती है।

अलाऊद्दीन खिलजी के उपरान्त खिलजी वंश के उत्तराधिकारी अयोग्य सिद्ध हुए। दिल्ली सल्तनत की सत्ता अब गियासुद्दीन तुगलक (1320–25 ई.) को प्राप्त हुयी। इसका पिता बलबन का एक तुर्की गुलाम तथा माँ पंजाब की जाट कन्या

थी। वह अलाऊद्दीन के वंशजों के अभाव में 1320 ई. को गियासुद्दीन तुगलकशाह ''गाजी'' के नाम से गद्दी पर बैठा।

अपने शासनकाल में इसने दक्षिण भारत के बारंगल पर विजय प्राप्त कर दिल्ली सल्तनत के सूबे के रूप में व्यवस्थित किया, उत्कल लूट किया बंगाल विद्रोह का दमन किया, अयोध्या सूबा (सुलतानपुर) पूर्ववत की भाँति दिल्ली सल्तनत का अंग बना रहा। राजा देवनशाह इस काल में भी कुछ समय तक के लिए 1334 ई० तक जीवित थे। सम्प्रति अमेठी पर अधिकार भी कर रखे थे।

गियासुद्दीन की मृत्यु के बाद मुहम्मद तुगलक 1325 ई. में गद्दी पर बैठा। मुहम्मद तुगलक के शासन काल में सम्पूर्ण सल्तनत में अनेक विद्रोह हुए परन्तु अवध सूबे का विद्रोह सबसे भयानक था। यहाँ के विद्रोह का नेतृत्व **आईन–उल–मुल्क** ने किया। यह सल्तनत के अमीरों एवं पदाधिकारियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थिति रखता था। 1340–41 ई. में राजधानी परिवर्तन के साथ ही उसे दौलताबाद परिवर्तित कर दिया गया। अईन–उल–मुल्क ने अपना अपमान समझा। इसलिए उसने विद्रोह कर दिया। विद्रोह के परिणाम स्परूप वह पराजित हुआ। **सल्तनत का अधिकार अवध पर कायम रहा।** 1351 ई. को मुहम्मद तुगलक का देहान्त हो गया। इसके उपरान्त फिरोजशाह शासक हुआ। सामान्य तौर पर अवध या सुलतानपुर से सम्बन्धित कोई भी साक्ष्य इसके काल में दृष्टिगत नहीं होते हैं। ध्यातव्य है कि राजा देवनशाह 1334 ई० तक जीवित रहे।

यह भी उल्लेखनीय है कि मुहम्मद तुगलक के शासन के अन्तिम दिनों तिलोकचन्द के पिता रायशन्ता को तुगलक की सेना से युद्ध करना पड़ा, रायशन्ता मारा गया। 1333 ई० में रायशन्ता की गर्भवती रानी ने तिलोकचन्द नामक बालक को जन्म दिया, आगे चलकर यह जौनपुर पर अधिकार करने में सक्षम हुआ। फलतः परोक्ष रूप से सुलतानपुर का लगभग सम्पूर्ण भू–भाग तिलोकचन्द के अधि

ाकार में आ गया।

फिरोजशाह के उपरान्त कई सुल्तान थोड़ी–थोड़ी अवधि के लिए सुल्तान हुए। ये सभी अयोग्य थे। इसी का लाभ उठा कर मलिक **सर्वर नामक हिजड़े** ने **सुल्तान–उल–सर्क** की उपाधि के साथ 1394 ई. में जौनपुर को केन्द्र बना कर सर्की राज्य की नींव डाली। 1394 ई० मे शर्की शासकों ने जौनपुर आदि पर कब्जा कर लिया। फलतः सुलतानपुर का भू–भाग स्वमेव उनके अधिकार में आ गया। इस अवधि में अमेठी पर राजा मान्धाता सिंह, राजा शूदी सिंह तथा राजा मुनीवर सिंह ने शासन किया।

मलिक सर्की की मृत्यु 1399 ई. को हुयी। इसके बाद इसका गोद लिया पुत्र "**मुबारक शाह गद्दी**" पर बैठा। इसका शासन अल्पकालीन रखा। तदन्तर 1402 ई. को "**इब्राहीम शाह शर्की**" गद्दी पर बैठा। यह कट्टर इस्लाम धर्मानुयायी था। इसने फर में छूट प्रदान करने की लालच देकर अनेक हिन्दुओं को धर्म परिवर्तन कराने में सफलता प्राप्त किया। धोपाप से प्राप्त शर्की शासन के सिक्के इसी के द्वारा परवर्तित कराये गये थे। ऐसा प्रतीत होता है कि यह सुलतानपुर कई बार आया था।

पिता की मृत्यु का समाचार पाकर वे बैसवारा वापस आये तो पृथ्वीचन्द राजा बन गये थे। विड़ारदेव गृह युद्ध शांत कर अपना राज्य का अधिकार त्याग कर लौटना चाहते थे, किन्तु आपस में सलाह करने के बाद यह तय पाया गया कि बैसवारा मे राजा की उपाधि समाप्त कर दी जाय। राजा के स्थान पर (1) राव (2) राना की उपाधि रहे। इसी के अनुसार विड़ारदेव राव हुए और पृथ्वीचन्द 'राना' बने। विड़ारदेव अपने पुत्र देवराय को छोड़कर जौनपुर लौट पड़े।

देवराय ने गंगा के किनारे देवरिया खेड़ा बसाया और वहीं रहने लगे।

जब विड़ारदेव जौनपुर लौट रहे थे तो गाजनपुर में कुछ दिनों तक रूक गये।

यहाँ पर उनके जागीर की राजधानी थी और एक मित्र गुन्नौर गांव में 27 गांव के जमींदार थे। यहां विड़ारदेव कई दिनों तक रूके रहे, यहीं पर सैर करने तथा शिकार करने की योजना भी बनी रायसाथन भी साथ-साथ रहता था।

एक दिन उनके पुत्र रायविड़ार गुन्नौर गये थे। दो भर सैनिक तथा कुछ सैनिक उनके साथ वहीं रह गये थे। उस दिन रायसाथन भी किले में ही था। रात्रि में उसके इशारे पर किले का फाटक खुल गया और भर सैनिक मार-काट करने लगे। राय बखण्ड अपने साथियों और रानी सहित मारे गये लेकिन रायबिड़ार गुन्नौर में सुरक्षित बचे गये।

रायबिड़ार गुन्नौर के जमींदार विजयसेन की सहायता से अपने सैनिकों के साथ जौनपुर पहुच गये। उस समय उनके पुरोहित राईमऊ और भाट रायधावा के अतिरिक्त दो भर सरदार और कुछ सैनिक थे। वहाँ पहुँचने पर उनका स्वागत हुआ और पंच हजारी मंसब और जागीर मिली।

राय विड़ार का जन्म सन् 1394 ई० में हुआ था। उस समय इनके पिता विड़ार देव पूरब विजय में लगे थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् रायबिड़ार जौनपुर पहुंच गये। और वहीं रहकर उन्होंने अपनी शिक्षा-दीक्षा पूरी की। सन् 1414 ई० में उन्होंने महमूद तुगलक के परामर्श पर अपनी जागीर पर अधिकार करने की योजना बनाई। कछवाहा राजकुमार, चौहान, विसेन और अन्य कई राजकुमार तथा राजाओं ने उन्हें सहायता का वचन दिय। रायबिड़ार ने अपनी निजी सेना भी जुटाई तथा दिल्ली राज्य सहायता और मंत्रणा से पूरब की तरफ चल पड़े। पहले कछवाहा राजकुमार के साथ मिलकर अमेठी पर अधिकार कर लिया। वहां एक लोनिया का राज्य था। अब दोनों सेनायें साविनी की तरफ चली। इसौली, तिलोहटी और गाजनपुर पर अधिकार करने के बाद नयी योजना बनाई गयी और रायसाथन के साथ सन्धि की बातचीत होने लगी। रायसाथन भी अचानक युद्ध के लिए तैयार

न था। वह चुपचाप सन्धि की बातचीत और युद्ध की तैयारी करने लगा। (राय बिड़ार के गुप्तचर) जासूस अपने कार्य में लगे थे। इधर सेना का संगठन होने लगा। जाड़े के अन्तिम दिनों में शिवरात्रि को अन्तिम युद्ध का समय निश्चित हुआ। शिवरात्रि के दिनभर लोग त्योहार मनाते थे तथा पूजा करते और मदिरा का पान करते थे।

राय बिड़ार ने केवल 20 वर्ष की आयु में ही अपनी जागीर पर अधिकार किया था। जौनपुर स्वतंत्र होते ही उन्होंने अपना राजतिलक किया और राजा बन गये। 1420 ई० में उनका प्रथम विवाह गुन्नौर के राजा विजय सेन गौतम की पुत्री से हुआ। विजय सेन को कोई पुत्र नहीं था इसलिए उन्होंने अपना राज्य भी रायबिड़ार को सौंप दिया और स्वयं उन्हीं के किले में; जो कादू नाले के दाहिने किनारे पर बना था; रहने लगे। 1430 ई० में उनका दूसरा विवाह मैनपुरी चौहान कुल से हुआ। ये चौहान बिड़ार देव के साथ जौनपुर विजय के समय आये थे और जब कौमावार इलाका जागीर के तौर पर बंटा था तब 14 कोस की जागीर इन्हें मिली थी तथा भरों को निकाल कर यहीं बस गये थे।

इब्राहीम शर्की के उपरान्त उसका पुत्र **मुहम्मद शाह शर्की** (1440-1457 ई) शर्की राज्य का उत्तराधिकारी रहा। मुहम्मद शाह शर्की का कत्ल करके **हुसैन शाह शर्की** राजा बना। इसने 1479 से तक शासन किया।1479 ई. में शर्की राज्य पर आक्रमण कर बहलोल लोदी ने दिल्ली सल्तनत का अंग बना लिया तथा अपने पुत्र **बारबक लोदी** को जौनपुर का गर्वनर नियुक्त किया।

इस प्रकार 1479 ई. में एक बार पुनः जौनपुर दिल्ली सल्तनत का अंग बन गया। जौनपुर के साथ ही सुलतानपुर जनपद भी दिल्ली सल्तनत का अंग बन गया। इसके बाद यहाँ लोदी शासकों ने 1526 ई० तक शासन किया। तद्न्तर मुगल सत्ता की स्थापना भारत पर हुई। इसी के साथ सुलतानपुर मुगल सम्राज्य का

अंग बन गया। बाबर ने अपने अयोध्या अभियान के साथ ही इस क्षेत्र को पदाक्रान्त किया तथा अयोध्या में अपना गर्वनर नियुक्त किया जो सुलतानपुर भू–भाग का भी अधिकारी होता था। हुमायूँ का शासन यहाँ अल्पकालिक रहा, बीच में कुछ दिन तक शेरशाह शूरी ने इस क्षेत्र पर शासन किया। 1556 ई० में सम्राट अकबर गद्दी पर बैठा। उसने अपनी सल्तनत को कई सूबों में विभक्त किया। अबकर के शासन काल में सुलतानपुर (वर्तमान) अवध एवं गोरखपुर सूबे का अंग था जो विभिन्न परगनों एवं महलों में विभाजित था। वर्तमान सुलतानपुर का पूर्वी भाग तथा अधिकाधिक दक्षिणी भाग तथा थोड़ा पश्चिमी भाग अवध का अंग नहीं था। इसमें से कुछ जौनपुर सरकार तथा कुछ मानिकपुर सरकार (इलाहाबाद सूबे) के अधीन था। शेष सुलतानपुर सरकार का भाग अवध में सम्मिलित था।

इस प्रकार प्राचीन सुलतानपुर वर्तमान सुलतानपुर से भिन्न स्वरूप रखता था। उक्त भूभाग अवध एवं इलाहाबाद सूबे का अंग था। तत्कालीन सुलतानपुर का महल वर्तमान मीरानपुर से समीकृत किया जा सकता है।

सुलतानपुर में एक किला था, जिसमें दो सौ पैदल सेना, 7 हजार घुड़सवार सेना और आठ हाथी थे। अकबर के शासन प्रबन्ध के पूर्व इस भूभाग एवं किले पर बछगोती राजपूतों के नियन्त्रण में थे।अबुल फजल ने आईन–ए–अकबरी में बेलहरी महल का उल्लेख किया है। इसका समीकरण वर्तमान बरौसा परगने से किया जा सकता है। बेलहरी में एक ईट निर्मित किला था। इसमें 50 घुड़सवार एवं 2000 पैदल सेना रहती थी। यह महल भी बछगोतियों के कब्जे में था। ऐसा प्रतीत होता है कि – बरौसा का एक बड़ा हिस्सा सुलतानपुर महल का अंग था। 1580–81 ई. में यहाँ का स्थानीय प्रशासन फरानखूडी के आधिपत्य में था। इसके बगावत के परिणाम 22 जनवरी 1581 ई. को मुगल कमाण्डर शाहबाज खाँ ने फरानखूडी को बरौसा में पराजित किया।

अकबर के ममय में जगदीशपुर (परगना) में किमनी एवं मुलतानपुर थे, जो 1750 ई. में अलग हुए। इसका नाम पुराने शहर किसनी एवं सत्थिन या सातनपुर पर आधारित था। यह गोमती नदी के दाहिने पार्श्व पर अवस्थित था। इन दोनों स्थानों पर ईट के किले बने थे। इस किले पर राजपूतों का कब्जा था। यहाँ 1500 घुड़सवार एवं तीन हाथी थे। सुलतानपुर किले में 300 पैदल, 4 हजार घुड़सवार सैनिक थे। इस पर वैश्य, बछगोती एवं जोशी का कब्जा था। अवध का एक परगना जो वर्तमान सुलतानपुर का अंग है, वह भाना भदाँवा था। यह आसल का यह छोटा सा क्षेत्र था। इस महल में 500 घुड़सवार थे। लखनऊ सरकार के दो महल अमेठी एवं इसौली वर्तमान सुलतानपुर के अंग थे। इसौली महल में सम्भवतः दो परगने थे। इसौनी में गोमती के किनारे एक किला था। इसमें 50 घुड़सवार एवं दो हजार पैदल सेना थी। इस महल पर बछगोती राजपूतों का कब्जा था। अमेठी या गढ़ अमेठी इसी संज्ञा से अस्तित्व में था। अमेठी महल के किले में 3 सौ घुड़सवार, 2 हजार पैदल सैनिक तथा 20 हाथी थे।

गौरा, जामों परगना (आधुनिक) पहले (अकबर के शासन काल में) अकबरी महल था, जो मानिकपुर सरकार (सरकार) का हिस्सा था। अकबर के समय जायस के कई छोटे-छोटे भाग कर दिये गये थे। मानिक पुर का एक हिस्सा (जो अब सुल्तानपुर जिले में है) कथोड़ का एक परगना था। यह मीरानपुर के दक्षिण में था। कथोड़ का कुछ भाग बछगोतियों के कब्जे में था। इस महल में सौ घुड़सवार, 2 हजार पैदल सैनिक थे। जौनपुर सरकार के शेष भाग चाँदा एवं अल्देमऊ (वर्तमान में सुलतानपुर में है) इलाहाबाद सूबे के मानिकापुर सरकार का अंग था चाँदा एवं अल्देमऊ के क्षेत्र बछगोतियों के कब्जे में थे। अल्देमऊ (महल) परगना में 50 घुड़मवार एवं 300 सैनिक थे। चाँदा में 200 घुड़सवार 300 पैदल सैनिक थे।

उपर्युक्त विवरणों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि – अकबर के शासनकाल

में वर्तमान सुलतानपुर जिला कई परगने (अकबर कालीन) एवं महल में विभक्त था। ध्यातव्य है कि उस समय सुलतानपुर सरकार या महल एक छोटा भूभाग था। वर्तमान सुलतानपुर, इलाहाबाद एवं अवध क्षेत्र का अंग था। मुख्य रूप से जौनपुर, मानिकपुर एवं एवं सुलतानपुर सरकार में सम्पूर्ण सुलतानपुर समायोजित था। अकबर के बाद एवं औरंगजेब तक कमोवेश अकबर की ही व्यवस्था से यह भू-भाग शासित होता रहा।

भारत में तुर्कों की सत्ता स्थापित होने के साथ ही मुस्लिम परम्परा ने भी भारत में प्रवेश किया। मुस्लिम शासकों ने स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए हिन्दुओं पर विभिन्न प्रकार के कर आरोपित किया। जजिया इस प्रकार प्रमुख कर था। जिससे हिन्दू सर्वाधिक घृणा करते थे। जजिया कर, अनवरत् अकबर के शासन के आरम्भिक दस वर्षों में अस्तित्व में रहा। बाद में अकबर में जजिया कर एवं ध र्मयात्रा कर हिन्दुओं पर से उठा लिया। औरंगजेब ने एक बार फिर से अपने शासनकाल में हिन्दुओं पर जजिया कर आरोपित किया।

विवेच्च काल में विविध प्रकार के हिन्दू-मुस्लिम रीति-रिवाज थे, जिन्हें तत्सम्बधी धर्मावलम्बि अपनाने के लिए स्वतंत्र थे। दोनों वर्गों में ऊँच-नीच का भेद विद्यमान था। हिन्दुओं एवं मुसलमानों के खान-पान एवं पहनावे में पर्याप्त अंतर था। परन्तु गरीब हिन्दू और मुसलमान दोनों लगभग एक ही समान जीवन यापन कर रहे थे। यह भी देखने के मिलता है कि उपर्युक्त अवधि में हिन्दुओं ने भारी संख्या में धर्म परिवर्तन किया जो सम्भवतः जजिया से बचने के लिए किया गया था।

1206 ई० से 1707 ई० के मध्य राज्य की तरफ़ से कृषि का एक निश्चित भाग कर के रूप में लिया जाता था। इसके अलावां जजिया, खम्स, जकात आदि वे विभिन्न कर थे जिन्हें तत्सम्बधी व्यक्तियों को अनिवार्य रूप से देना पड़ता था। अकबर के पूर्व सुलतानपुर से कितना राजस्व शासन को प्राप्त होता था। इसका

विवरण नहीं प्राप्त होता है। परन्तु अकबर के काल से प्राप्त राजस्व परगनावार शासन को मिलता था।

विवेच्च काल में कृषि कार्य सुलतानपुर की प्रमुख आर्थिक शक्ति थी। इसके अतिरिक्त कुछ स्थलों पर व्यवसायिक कार्य भी सम्पन्न किये जाते थे। सुलतानपुर वस्तु उद्योग, काष्ठ कर्म एवं चर्म उद्योग के लिए प्रसिद्ध था। यहाँ से गेहूँ, धान, मक्का, अरहर, चना आदि खाद्यान्न पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते थे। आम, महुआ, पीपल, शीशम आदि प्रमुख वनस्पतियाँ थीं। सुलतानपुर की प्रमुख नदी गोमती थी। इसके अलावां मझुई, कादूनाला आदि अन्य वे साधन थे जो सिंचाई के लिए जल एवं यातायात के लिए जलमार्ग के लिए उपयोगी थे। यहाँ की भूमि दोमट एवं ऊसर मिश्रित थी।

सुलतानपुर (विवेच्य कालीन) धर्म प्रधान केन्द्र था। यहाँ हिन्दू एवं मुस्लिम त्योहार अत्यन्त श्रद्धा एवं हर्षोल्लास से मनाये जाते थे। धोपाप, बिजेथुआ आदि प्रमुख तीर्थ स्थल थे। इसके अलावां अन्य कई स्थान थे जहाँ वार्षिक मेला सम्पन्न होता था। इस क्षेत्र में होली, दीपावली, दशहरा, रामनवमी, रक्षाबन्धन, नागपंचमी एवं अन्य त्योहारों के साथ ईद, बकरीद, मुहर्रम आदि अत्यन्त जोशोखरोश से मनाये जाते थे। स्थानीय स्तर पर हिन्दू एवं मुसलमान दोनों एक दूसरे के त्योहार में भागीदारी सुनिश्चित करते थे। अकबर के समय नौरोज का त्योहार भी शासक वर्ग में लोकप्रिय था। जो इस भू–भाग पर भी सूबेदार के द्वारा आयोजित किया जाता था। औरंगजेब ने इसे काफिरों की पूजा कहकर बन्द करवा दिया।

यह ध्यातव्य है कि सुलतानपुर क्षेत्र हिन्दू वाहुल्य क्षेत्र था। अतः यहाँ ब्राह्मण धर्म के विविध सम्प्रदाय उपास्य थे, जिनमें शैव, वैष्णव, शाक्त सम्प्रदाय विशेष रूप से आदरणीय थे। कतिपय अन्य सहचर देवी–देवता भी जन–मानस में प्रचलन में थें। रूद्र के प्रतिरूप हनुमान जी की उपासना सुलतानपुर क्षेत्र में अत्यन्त श्रद्धा

पूर्वक की जाती थी। ऐसी मान्यता है कि सुलतानपुर के पूर्वी भू–भाग सूरापुर के सन्निकट लक्ष्मण के उपचार हेतु संजीवनी लेने जाते समय हनुमान ने यहाँ पर कालनेमी नामक राक्षस का वध किया था।

इसके अतिरिक्त धोपाप वैष्णव धर्म से सम्बन्धित है, जहाँ पर राम ने ब्रह्म हत्या से मुक्ति हेतु स्नान किया था। सीताकुण्ड भी सुलतानपुर शहर में अवस्थिति है। यहाँ पर सीता जी ने वनवास जाते समय स्नान किया था। आदिकाल से लेकर अब तक यहाँ पवित्र स्नान होता है।

जहाँ एक तरफ सुलतानपुर हिन्दू धर्म का प्रमुख केन्द्र था, वहीं सूफी धर्म भी यहाँ विशेष रूप से पुष्पित–पल्लिवित हुआ। विवेच्च कालीन सुलतानपुर में मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी कृति पद्मावत की रचना की, ये इस क्षेत्र के प्रमुख सूफी सन्त थे। इनका देहावसान अमेठी में हुआ। जहाँ पर इनकी मजार आज भी देखने को मिलती है।

मानचित्र
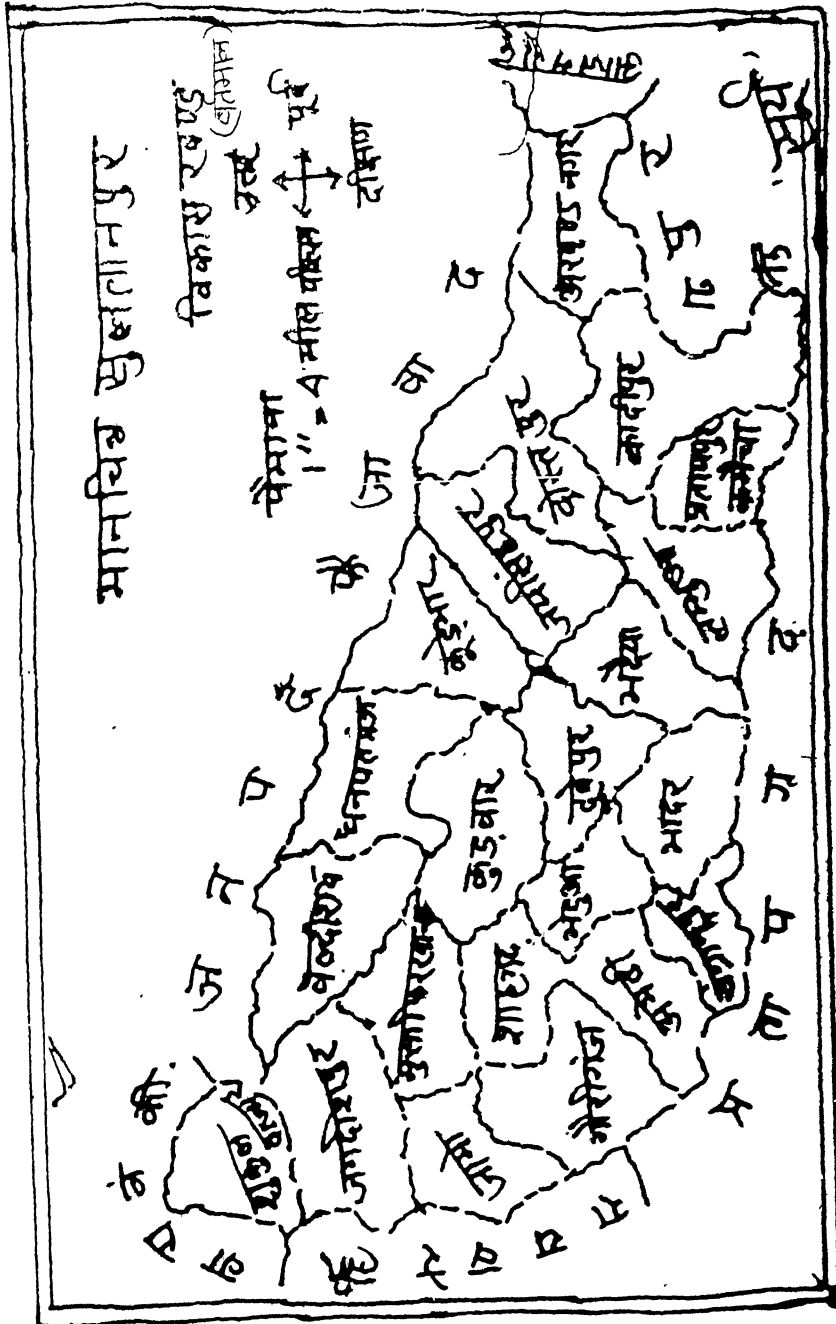
वर्तमान सुलतान पुर
प्राकृतिक

सुलतानपुर सल्तनत कालीन

अकबर कालीन

ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ सूची

अनंत राम चन्द्र कुलकर्णी : शिवा जी के समय का महाराष्ट्र, ग्रन्थ शिल्पी, दिल्ली, 2000

आर०सी० मजूमदार, एच०सी० चौधरी एण्ड कालीकिंकर दत्त, ऐन एडवांस हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, दिल्ली, 1973

आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, दिल्ली सल्तनत, आगरा, 1983, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, आगरा, 1982, दि फर्स्ट टू नवाब्स आफ अवध, आगरा, 1931

इरविन, दि गारडेन आफ इण्डिया, लन्दन, 1880

ईश्वरी प्रसाद : भारतीय मध्य युग का इतिहास, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, 1993, हिस्ट्री आफ मेडिवल इण्डिया, इलाहाबाद, 1925

इब्नबतूता, यात्रा विवरण, पेरिस, 1949, (अनुवाद-सैयद अतहर अब्बास रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1)

उमाशंकर मेहता : मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1967

एम०आर० गबिन्स, ऐन एकाउन्ट आफ दि म्यूटिनीज इन अवध एण्ड दि सीज आफ लखनऊ, लन्दन, 1958

एस०बी० चौधरी, थ्योरीज आफ इण्डियन, म्यूटिनी, कलकत्ता, 1965, सिविल रिविलियन इन इण्डियन म्यूटिनीज, कलकत्ता, 1957

एम० एन० दास : भारत का सामाजिक सांस्कृति और आर्थिक इतिहास, भाग-दो, नई दिल्ली, 1975

एडवर्ड एण्ड गैरटै टाम्पसन, नेचर एण्ड ओरिजिन आफ दि म्यूटिनी राइज एण्ड फुलफिलमेन्ट आफ ब्रिटिश रूल इन इण्डिया, लन्दन, 1935

एल०पी० शर्मा: आधुनिक भारतीय संस्कृति, लक्ष्मी नरायन अग्रवालल, आगरा, 2001, दिल्ली, सल्तनत, आगरा, 1937

यूसुफ हुसेन, मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति, दिल्ली, 1983
एम०पी० श्रीवास्तव तथा श्रीमती शारदा अग्रवाल, प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला और दर्शन, इलाहाबाद, 1977
के०एल० खुराना : मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, 2001,मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, लक्ष्मी नरायन अग्रवाल, आगरा, 2001
कनिंघम, आर्क्योलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया रिपोर्ट, 1951
के०एम० कपाड़िया, मैरिज एण्ड फेमिली इन इण्डिया, लन्दन, 1958
कृष्णा निगम और पी०सी० हैलन, व्यक्ति एवं समाज, वाराणसी, 1977
केशवकुमार ठाकुर, टाड लिखित राजस्थान का हिन्दी अनुवाद, इलहाबाद 1965
के०के० शर्मा : भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं चिन्तन, राष्ट्रीय पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1999
गया प्रसाद द्विवेदी "प्रसाद", नन्दिग्राम काव्य की भूमिका, इलाहाबाद, संवत् 2009
जगदीश सहाय, अवध में नवाबी शासन का इतिहास, फैजाबाद, 1982
जवाहर लाल नेहरू, डिस्कवरी आफ इण्डिया, कलकत्ता, 1956
जान दि राज पीम्बेल, दि इण्डियन म्यूटिनी एण्ड दि किंगडम ऑफ अवध, दिल्ली, 1977
गोस्वामी तुलसी दास, रामचरितमानस, गोरखपुर, 1985
गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, इलाहाबाद, 1966
जेरेट, आइन-ए-अकबरी, (भाग-2, अनुवाद) कलकत्ता, 1949
जी०के० अग्रवाल, मानव समाज, आगरा, 1988
जी०वी० मैल्लेसन, इण्डियन म्यूटिनी ऑफ अवध, 1957-58, लन्दन, 1884
टी०पी० चन्द, एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ अवध, वाराणसी, 1971

डब्ल्यू०एच० स्लीमैन, ए जर्नी थ्रो दि किंगडम ऑफ अवध (1844-1850), लन्दन, 1858

तारा चन्द्र, हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमेंट इन इण्डिया, (भाग-2), पब्लिकेशन डिवीजन, 1961,भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, खण्ड-1, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 1984

नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का वृहत्त इतिहास (षष्ठ भाग) वाराणसी, संवत, 2030

प्रताप सिंह : मुगल कालीन भारत, 1656-1761 रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1998, मध्यकालीन भारत (1200 से 1526 ई०) रिसर्च पब्लिकेशनन्स,जयपुर, 1999, मुगल कालीन भारत रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1999

पी०एन० ओझा, मुगलकालीन भारत का सामाजिक जीवन, दिल्ली, 1964

पी० एस० चोपड़ा : भारत का सामाजिक सांस्कृति और आर्थिक इतिहास, भाग-दो, नई दिल्ली, 1975

ब्रजकिशोर मिश्र, अवध के प्रमुख कवि, लखनऊ, 1960

बैजनाथ त्रिपाठी, अमेठी राज्य के हिन्दी कवि (अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध), आगरा विश्वविद्यालय, 1970

बी०एन० लूनिया : भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास, लक्ष्मी नरायन अग्रवाल, आगरा, 1988

बी०एन० पुरी : भारत का सामाजिक सांस्कृति और आर्थिक इतिहास, भाग-दो, नई दिल्ली, 1975

मधुकर खरे, ये मेरा बैसवारा, रायबरेली, 1986

मेजर रावर्टी, ए जनरल हिस्ट्री ऑफ दि गुलाम डायनेस्टी आफ एशिया इन्क्ल्यूडिंग हिन्दुस्तान (तबकाते-नासरी-मिनहाज उससिराज, अनुवाद) कलकत्ता, 1581

मुंशी कन्हैयालाल, तवारीख-ए-अमेठी (अप्रकाशित)

मोहम्मद अहमद तगी, वाजिद अली शाह, वाराणसी, 1964

योगेश प्रवीन : ताजदारे अवध, भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, 1998, बहारे अवध, दास ताने अवध, डूबता अवध, गुलिश्ताने अवध।

रामगोपाल पाण्डेय, शरद, जन्मभूमि का रक्त रंजित इतिहास, अयोध्या, संवत् 2023

राजा रणन्जय सिंह, (सम्पादक) कविता कंकोष, अमेठी, 1977

राम प्रसाद त्रिपाठी : मुगल साम्राज्य का उत्थान एवं पतन, सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1984

राधाकमल मुखर्जी, भारत की संस्कृति और कला, दिल्ली, 1959

रणवीर सिंह, मेरा स्पप्न, मेरठ, 1918

राधे शरण : मध्यकालीन भारत की सांस्कृतिक संरचना, मध्य प्रदेश, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1998

राधेश्याम तिवारी : गढ़ अमेठी का इतिहास, अमेठी, सम्वत् 2047

रूद्रांग्श मुखर्जी, अवध इन रिवोल्ट, दिल्ली, 1983

लईक अहमद : मुगलकालीन भारत, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद

लाला सीताराम, अवधवासी, अयोध्या का इतिहास, प्रयाग, 1939

लालमाधव सिंह 'छितिपाल', मनोज लतिका, (अप्रकाशित), 'छितिपाल' भजन प्रदीप, (अप्रकाशित)

वी०एस० भार्गो : मध्यकालीन भारतीय इतिहास, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर 1998

वी०एल० ग्रोवर और यशपाल : एस ० चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 1990

विनायक दामोदर सावरकर, दि इण्डियन वार आफ दि इनडिपेण्डेंस, बम्बई, 1947

सती प्रसाद, अमेठी राजवंशावली, (अप्रकाशित)

सरयू प्रसाद अग्रवाल, अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, लखनऊ, 1966

सत्यनारायण मिश्र, अमेठी राजवंश तथा उसके कवि (अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध) गोरखपुर विश्वविद्यालय, 1983

सुखनाथ सिंह, नवीन भूगोल, जिला सुलतानपुर, सुलतानपुर, 1964

संजय सिंह (सम्पादक), राजर्षि रणन्जय सिंह, व्यक्तित्व एवं कृतित्व, अवधी अकादमी, गौरीगंज, अमेठी, 1984

स्टेनले लेनपूल, औरंगजेब, दिल्ली, 1978

शिव नरायण सिंह : भारत भूमि का इतिहास, पिशाच मोचन, वाराणसी, 2001

सैय्यद अहमद हुसैन (सम्पादक): नया दौर, अवध अंक, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, उ०प्र०

सुमित सरकार, मार्डन इण्डिया, दिल्ली, 1983

हरफूल सिंह आर्य, मध्यकालीन समाज, धर्म, कला एवं वस्तुकला, दिल्ली,1987

हवलदार रन बहादुर सिंह : भाले सुल्तान का इतिहास एवं सजरा, प्रकाशक, बाबू ओम प्रकाश सिंह, उमरा, शक् सं० 1902

हरफूर सिंह आर्य, भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, जयपुर, 1987

हरिश्चन्द्र वर्मा : मध्यकालीन भारत, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, 1983

हेरम्ब चतुर्वेदी, द सोसायटी आफ दि इण्डिया इन 16 सेन्चुरी, एव डिपेक्टेड टू कन्टेम्प्रोरी हिन्दी, लिट्रेचर (शोध-प्रबन्ध) स्वीकृत।

गजेटियर, जर्नल, शब्दकोष, रिपोर्ट्स, पत्र-पत्रिकाएँ आदि

अवध प्रकाशन से सम्बन्धित कागजता, 1865

अवध विश्वविद्यालय शोध-पत्रिका, फैजाबाद 1982

अवध विश्वविद्यालय शोध-पत्रिका, फैजाबाद 1983

अवध विश्वविद्यालय शोध-पत्रिका, फैजाबाद, 1987

इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, खण्ड-23, 1908

गजेटियर आफ अवध, (भाग-1) दिल्ली, 1878

फैजाबाद डिस्ट्रिक गजेटियर, इलाहाबाद, 1905

वायुपुराण, काशी संवत् 1039

सुलतानपुर डिस्ट्रिक गजेटियर, इलाहाबाद, 1903

जर्नल आफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, खण्ड-1, 1935

जनपद सुलतानपुर, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, लखनऊ, 1983

दैनिक जनमोर्चा, राजेश्वर सिंह : सुलतानपुर विजय दशमी परिशिष्ट, सुलतानपुर इतिहास के आईने में, पृ० 7 15, अक्टूबर, 2002

दैनिक हिन्दुस्तान : 19 नवम्बर, 2002

दैनिक हिन्दुस्तान : 7 नवम्बर, 2002, पृ० 1